Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2395-0390**

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48402 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 5.21

Varanasi Management Review

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor in Chief
Dr. Alok Kumar
Associate Professor & Dean (R&D)
School of Management Sciences
Varanasi

Volume - XI **No. - 2** **(April - June) 2025**

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Varanasi Management Review - ***A Multidisciplinary Quarterly International Referred Research Journal****, Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, (U.P.)
Pin. - 221 010
Mobile No. :- 09336924396
Email- vnsmgrev@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Varanasi Management Review" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2395-0390

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** School of Plant Sciences, Haramaya University, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr. Saumya Singh,** Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Mrinalini Pandey,** Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Aditya Kumar Gupta,** Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Abhishek Sharma,** Assistant Professor, Department of Hindi, Ravenshaw University, Cuttack
- **Dr. A. Shanker Prakash,** Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Anil Pratap Giri,** Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Nagendra Kumar Singh,** Professor, Department of Journalism & Mass Communication, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi

- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

☙❧

EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Varanasi Management Review,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor

CONTENTS

"Varanasi Management Review"

➲	गति में सन्निहित प्रकृति : पंडित बिरजू महाराज जी की नृत्य रचनाओं में सौन्दर्य चेतना, दृश्य काव्य और रूप ***डॉ. सम्राट चौधरी***	01-03
➲	ग्रामीण विकास में सरकारी योजनाओं से सामाजिक एवं आर्थिक विकास में महिलाएं : एक विश्लेषण ***सुहाशनी कुमारी***	04-06
➲	भूमंडलीकरण के सांस्कृतिक आयाम ***खुशबू कुमारी***	07-09
➲	सामुदायिक विकास कार्यक्रम में शिक्षित महिलाओं की भूमिका ***गुंजा कुमारी***	10-12
➲	शिव मूर्ति की कहानियों में मानवीय संवेदना ***डॉ. धर्मशीला कुमारी***	13-18
➲	भारतीय ज्ञान परम्परा के संरक्षण में पुस्तकालय की भूमिका ***डॉ. अनिता कुमारी*** ***डॉ. शिव प्रकाश यादव***	19-23
➲	हिन्दी संत कवि और उनका दार्शनिक विचारधारा ***संजय मिंज***	24-29
➲	संचार की बढ़ती उपयोगिता का सामाजिक अध्ययन ***डॉ. विभा कुमारी***	30-35
➲	बुन्देलखण्ड के गाँव में पलायन के कारण शिक्षा से दूरी ***राजश्री अहिरवार*** ***डॉ. ओमप्रकाश यादव***	36-40
➲	वामनावतरणम् महाकाव्य और अलङ्कार सम्प्रदाय ***विपुल शिव सागर*** ***प्रो. उमा शर्मा***	41-47
➲	दलित जातियों में महिला उत्पीड़न : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन ***कामिनी***	48-54
➲	मुगल काल के शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक के स्वरुप एवं कार्य का अध्ययन ***कौशल किशोर*** ***डॉ. शत्रुघ्न कुमार पाण्डेय***	55-59
➲	वाराणसी के नगर सिक्के ***डॉ. स्वस्तिक सिंह***	60-64
➲	मिशन शक्ति योजना का वाराणसी महानगर के महिलाओं पर प्रभाव : एक अध्ययन ***डॉ. नागेन्द्र कुमार सिंह***	65-72

➲	प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता ***डॉ. अशोक कुमार मिश्रा***	73-75
➲	बाल विवाह के स्वास्थ्य परिणाम : एक व्यापक समीक्षा ***कुमारी शोभा***	76-77
➲	हिंदी आलोचना की विकास धारा : एक संक्षिप्त अध्ययन ***डॉ. जीतेन्द्र ठाकुर***	78-83
➲	ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की शारीरिक क्रियाओं पर सामाजिक–आर्थिक प्रभावः एक तुलनात्मक अध्ययन ***डॉ. अच्छे लाल यादव***	84-88
➲	आधुनिक भारत में हिंदी डिजिटल मीडिया और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद सहित राष्ट्रवाद का पुनर्जनन ***पवन कुमार मिश्रा*** ***डॉ. अभिषेक मिश्र***	89-93
➲	परसाई की लेखनी में सामाजिक विकृतियों का चित्रण ***ओनम साहू***	94-97
➲	पृथक बिहार के निर्माण में महेश नारायण की भूमिका ***आकाश दीप*** ***प्रो. (डॉ.) दीनेश प्रसाद कमल***	98-102
➲	डॉ. उदय नारायण गंगू का परिचय और आर्य समाज की पृष्ठभूमि ***डॉ. अमित कुमार गुप्ता***	103-107
➲	भारतीय लोकतंत्र एवं नौकरशाही ***डॉ. विजय प्रताप सिंह***	108-111
➲	गीता और कर्मवाद : एक अध्ययन ***डॉ. केएम सरस्वती***	112-114
➲	पोषक तत्वों की कमी से बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास पर पड़ने वाले प्रभाव ***डॉ. अन्नू कुमारी***	115-117
➲	राजपूताना का इतिहास तथा ''ख्यात साहित्य'' ***जितेन्द्र कुमार*** ***प्रो. डॉ. शहरयार अली***	118-120
➲	अज्ञेय के आत्मसंघर्ष की साहित्यिक प्रतिध्वनि ***अनिता कुमारी***	121-126
➲	नेताजी सुभाष चंद्र बोस की विदेश यात्रा और आजाद हिंद फौज की स्थापनाः एक शोध अध्ययन ***डॉ. प्रणव कुमार रत्नेश***	127-132
➲	महाविद्यालय पुस्तकालय की सेवाएँ और छात्र संतुष्टि : एक अध्ययन ***अजय कुमार यादव***	133-136

गति में सन्निहित प्रकृति : पंडित बिरजू महाराज जी की नृत्य रचनाओं में सौन्दर्य चेतना, दृश्य काव्य और रूप

डॉ. सम्राट चौधरी*

मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन में प्रकृति का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रभाव रहा है। चित्रकार, मूर्तिकार, साहित्यकार, नर्तक, गायक वे सभी ने प्रकृति को बहुत नजदीक से देखा, महसुस किया और यही अनुभूति उनके रचनात्मक एवं कलात्मक अभिव्यक्ति का आधार रहा है। प्रकृति के विभिन्न रूपों से प्रभावित होकर कलाकार के मन में विभिन्न भावों का संचार हुआ तथा प्रकृति के कण–कण में बसे लय, ताल, छंद, गति व अपार सौन्दर्य ने कलाकार को सदैव प्रेरित किया है। सौन्दर्यानुभूति के अतिरिक्त संवेदनाएं भी है। जिसकी अभिव्यक्ति मानव ह्रदय ने कला के विभिन्न विधा जैसे नृत्य, गीत, चित्र, काव्य आदि के माध्यम से किया। प्रकृति तो जीवन का मूल स्त्रोत हैं, दोनों एक दूसरे में आत्मसात है और नृत्य में इसके संयोजन को देखा जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है।

सन् 1938, 4 फरवरी बंसत पंचमी के दिन पं. बिरजू महाराज का अवतरण इस धरती पर हुआ था। ऐसा कहना महज एक अतिशयोक्ति हो सकता है। परंतु महाराज जी अवतार से कम नहीं थें, यह मेरा अनुभव है। मानों प्रकृति ने ही उनकी रचना की हैं। वे न केवल एक कलाकार व गुरू थे प्रकृति प्रेमी, सदैव प्रकृति के उपासक तथा नृत्य के पर्याय रहे है। महाराज जी ने प्रकृति को कितना नजदीक से देखा, गहन अध्ययन किया जिसका प्रमाण व फलस्वरूप उनकी रचनाओं का आनंद एवं रस का आस्वादन आज सम्पूर्ण कला जगत ले रहा है। आज भी मेरे कानों में महाराज जी की वो बाते गुंजती रहती है।– ''मुझे तो अब हर चीज में लय दिखती है। हवाएं नाचती है, समुन्दर की लहरें नाचता है। पेड़–पौधे, पत्तियां नाचती है, चिड़ियों की उड़ान में, यहां तक कि उड़ान में भी रिदम है, छंद है। मुझे तो दुनिया में हर कोई नाचता दिखाई देता है'' इन बातों से मुझे मेरी शोध कार्य में अधिक प्रेरणा मिली, मैं बहुत प्रभावित हुआ और प्रकृति को लेकर चिंतन, मनन का अवसर मिला और शोध कार्य को एक नई दिशा मिली, इन्ही विचारधाराओं को तथा मेरे शोध कार्य के कुछ महत्वपूर्ण अंश को इस शोध आलेख में प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ।

किसी भी शास्त्रीय नृत्य का नृत्तांग ताल व लय प्रधान होता है। यहां आंगिक संचालन प्रमुख होता है। अभिनय दर्पण के अनुसार –

''भावाभिनवहीनम् तु नृन्तमित्याभिधीयते,'' अर्थात जिस अभिनय में भावों का प्रदर्शन नहीं किया जाता है वह नृत्त है, नृत्त भावरहित होता है। कथक नृत्य का नृत्तपक्ष लय–ताल पर आधारित नृत्य का वह पक्ष है जहां लयकारी गणित के सिद्धांत के साथ ध्वन्यात्मक एवं सौन्दर्यात्मक भी है। परम्परागत रूप से कथक नृत्य का नृत्तांग ताल प्रधान और लय प्रधान है किन्तु इसे पूर्णतः भावविहीन नहीं कहा जा सकता है। और यही बात महाराज जी के रचनाओं में बन्दिशों में स्पष्ट रूप से देखा जाता है। कथक नृत्य की प्रस्तुति में यह विशेषता है कि मूर्त (Tangible) एवं अर्मूत (Intangible/Abstract) विषयों का चित्रण बहुत सुक्ष्म, संतुलित रूप से किया जाता है। नर्तक अपनी सृजनात्मक एवं कलात्मक योग्यता द्वारा अर्थहीन नृत्तपक्ष यानि जहां केवल तबले पखावज की बोलों का कुटाक्षरों का प्रयोग होता है, वहां एक अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति व वातावरण का सर्जन करता है। ऐसा प्रायः कहा जाता है कि कथक एक खुला नाच है, इस नृत्य में स्वतंत्रता है। समयानुसार कथक नृत्य में बदलाव भी हुये, नये–नये आयामों से कथक समृद्ध होता गया, नर्तक या रचनाकार अपनी–अपनी कल्पना एवं चिंतन से विभिन्न विषयों को प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से समृद्ध किया है, यह नर्तक की अपनी मौलिकता होती है, विशेषकर प्राकृतिक विषियों की कल्पना, प्रत्येक अंगों की निकास या आंगिक अभिव्यक्ति में अंतर्तिहित सुक्ष्म अर्थ जो कि कलाकार की अपनी विचारधारा तथा कलात्मक दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। ऐसी सर्जना पं. बिरजू महाराज जी की रचनाओं में अधिक देखा जाता है। जो कथक के नृत्तपक्ष को ही नही अपितु सम्पूर्ण नृत्य को एक नई दिशा दी है। नृत्त पक्ष में महाराज जी का यह दृष्टिकोण, प्रकृति चित्रण एक भावात्मक, प्रयोगात्मक तथा सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यक्ति है। यहां लय–ताल का

*एम.ए., पी एच.डी (कथक), इं.क.सं.वि.खैरागढ़ (छ.ग.)
Email - joy24samrat@gmail.com, Phone No.- 9862780357

कठिन स्वरूप व विभिन्न बन्दिशों में क्लिष्ट बोलों को सहज सरल रूप देकर दृश्य कविता के रूप में सामान्य जन समुदाय तक पहुचाने का सम्पूर्ण श्रेय महाराज जी को जाता है। यह उनका बहुत बड़ा योगदान है कथक जगत को। ''परम्परा की कस्तूरी को अपनी नाभि में रख, नये शिखरों की तलाश बिरजू महाराज ने सदा की है। यह एक कलाकाराना बेचैनी थी कि उन्होने कथक के बीते कल को आज प्रासंगिक बनाया। सृजन सदा मौलिक और परम्परा के मेल से उपजता है।'' (1) (p-30 कुल श्रेष्ठ मनीषा, बिरजू लय, नयी किताब प्रकाशन, दिल्ली –110032)

जैसा कि पूर्व में भी कहा गया कि कथक नृत्य का नृत्त पक्ष लय–ताल पर आधारित वह पक्ष है जहां तेजी तैयारी अंग–पद संचालन मुख्य है। महाराज जी ने नृत्य के इस पक्ष को एक नया आयाम दिया है। महाराज जी ने हर एक बन्दिश के पीछे कुछ न कुछ चिंतन किया, हमेशा महाराज जी बन्दिशों के साथ कुछ – कुछ कथाएं जोड़कर समझाते थे जिसमें प्राकतिक तत्वों का उदाहरण और उसकी सुन्दरता का वर्णन तो सर्वविदित है। गिनती (Counting of 12345...) का प्रयोग कर उन्होने कथक को एक नए आयाम से जोड़ा, गिनती मे अलग–अलग जीव–जन्तुओं की गति को दर्शाया। प्रकृति में प्रत्येक जीव की अपनी एक अलग विशेषता है, उसके चाल–चलन व गति में भी एक ताल है, छंद है–इन सभी विषयों को महाराज जी ने बहुत बारिकियों से देखा, उसका अवलोकन किया और फिर कथक की भाषा में प्रयोग में लाया है। प्रकृति के कण–कण में बसे सौन्दर्य को महाराज जी ने अनुभव किया एवं अलग–अलग पक्षी, चिड़ियाँ, हिरण, सांप, मयूर, गाय, सिंह आदि जीवों के चलन गति का अवलोकन करके विशेष कर गिनती के तिहाईयों में इन सबके गतियों का चित्रण किया हैं जैसे उनके द्वारा रचित बहुत प्रसिद्ध एक तिहाई है जिसमे केवल 12345678 की गिनती हैं, बड़ते क्रम से गिनती को 1 से लेकर 8 तक सजाया गया हैं जिसमें घोसले में चूजे (चिड़ियो के बच्चे) दाना के लिए चहचहाहट करते रहते है, मादा चिड़िया उड़कर जाती है और कहीं से दाना लेकर आती है और अपनी चूजों को खिलाती है–यह जो चूजों का पुकारना, चिड़िया का घोसलों से उड़कर जाना–आना इन विषयों को, गति को, आने–जाने का समय को महराज जी ने इस तिहाई के माध्यम से एक लयात्मक, छंदात्मक, दृश्यात्मक कविता का रूप दिये है। और महाराज जी इस तिहाई की प्रस्तुति भी इस प्रकार देते थे मानों आंखों के सामने वो विषय छवि की तरह दिखता था।

नृत्त पक्ष में परन एक ऐसी रचना है जहाँ ताण्डव एवं लास्य का सुन्दर समावेश होता है। परनों में भी प्रकृति चित्रण के कई उदाहरण महाराज जी ने दर्शाया। पखावज, तबला या अन्य वाद्यों से निकली अलग–अलग ध्वनि के साथ विभिन्न जीवों का स्वरूप, चलन, वायु का प्रवाह, समुद्र की लहरे, घोड़े के चलने से जो ध्वनि निकलती है, वर्षा में बादल का गरजना, बिजली, चमकना, बूंदों की ध्वनि आदि सभी विषयों की कल्पना और यथोचित प्रयोग नृत्त की बन्दिशों में महाराज जी ने किया है। जैसे एक बन्दिश में धाऽन–धाऽन/तोऽन, ताऽन–में बादलों का समूह को बताया गया है। बही ''नादिन्दिनना'' को वर्षा की बूंदों के साथ सामंजस्य स्थापित कर वर्षा ऋतु की कल्पना नृत्त के इस पक्ष में प्रयोग में लाया है।

एक प्रस्तुति क दौरान विदुषी शाश्वती सेन जी ने बताया है कि लय की जो गहराई है, कठिन स्वरूप है उससे आम जनता, साधारण लोग कम जुड़ पाते थे, महाराज जी ने इस विषय को बड़ी गहराई से समझा और इस पर विचार किया, उनका यह मानना था कि लय का आनंद हर किसी को लेना चाहिए तबसे महाराज जी ने ऐसी रचनाएं रची, ऐसे कठिन विषयों को सहज सुन्दर दृश्य कविता बना दिया। यहा यह बात स्पष्ट है कि कथक का नृत्त पक्ष जहां एक समय केवल तेजी तैयारी पर केन्द्रित था वहां से इस नृत्य शौली को जन साधारण तक एक कथा (कथक का मूल) के रूप में प्रचार–प्रसार करने का सम्पूर्ण श्रेय महाराज जी को जाता है। उदाहरण स्वरूप एक रचना यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

धिं	ऽतकिट	ताऽ	ऽतकिट।
X			
धिं	ऽतकिट	ताऽ	ऽतकिट।
2			
ताथेईत	कतकिट	धाऽ	धिं।
0			
ऽतकिट	ताऽ	ऽतकिट	धिं।
3			
ऽतकिट	धाऽ	ऽतकिट	ताथेईत।

x			
कतकिट	धाऽ	धिं	ऽतकिट।
2			
ताऽ	ऽतकिट	धिं	ऽतकिट।
0			
ताऽ	ऽतकिट	ताथेईत	कतकिट।
3			
धाऽ			
x			

महाराज जी ने इस रचना में हाथी का सुन्दर चलन को बताया है। बंदिश का पढ़ंत भी कुछ इस प्रकार है जैसे हाथी का झुमके चलना, बड़े–बड़े कानों का झुमना आदि। हाथी का स्वभाव, गति यहां मुख्य है। नृत्तपक्ष तो सम्पूर्ण और मूल रूप से ताल पर आधारित होता है। ताल यहां मुख्य है। महाराज जी ने तो तालों के स्वरूप को भी प्रकृति में स्थित अलग–अलग जीवों के साथ तुलना की है। प्रत्येक ताल की अलग चलन, विशेषता विभाग व छंद भी अलग–अलग होता हैं। पर उन्होने इन तालों की गति प्रकृति को जीव–जन्तुओं की गति प्रकृति व स्वभाव प्रवृत्ति के साथ सामंजस्य स्थापित किया है जैसे – झपताल (10 मात्रा)–ऊंट (Camel) का चलन, चौताल (12 मात्रा)– हाथी (Elephant) की गंभीर प्रकृति भारी–भरकम चाल, धमार (14 मात्रा)–शेर (Lion) का चाल, गति आदि। ऐसे कई उदाहरण है जो केवल इस एक शोध आलेख में प्रस्तुत करना संभव नहीं है। यह विषय तो अपने आप में एक बहुत बड़ा शोध का विषय बन सकता है। नृत्त पक्ष पहले इतना मनोहारी नहीं था इस पक्ष को महाराज जी ने तराशा है, सौन्दर्यात्मक दृष्टिकोण से उभारा है।

महाराज जी द्वारा यह नवाचार कथक नृत्य को अनेक समृद्ध किया है। प्रकृति का अवलोकन, गहन अध्ययन करते हुए, समसामयिक गतिविधि को ध्यान में रखते हुए परंपरा के पैरामीटर (दायरा) के अतंर्गत किस प्रकार कार्यान्वित किया जाना है, उपयोग में लाया जाना है– इन विषयों पर महाराज जी ने जैसे एक मार्गदर्शन देके गये है। महाराज जी द्वारा रचनाओं को ध्यान से देखा जाए तो उनकी सृजनात्मकता प्रकृति को लेकर चिंतन, अध्ययन, अवलोकन, अनुकरण तथा प्रयोग इन सबके अतिरिक्त सबसे अधिक महत्वपूर्ण विषय है कि उनका जीवन दर्शन, कला के प्रति समर्पण और संवेदनशील सहज सरल जीवन शैली ही उसके नृत्य को विश्वदरबार में प्रसिद्धि की ओर ले गया।

ऐसे महान विद्वान व गुरू तो महाकाश में गतिमान सबसे उज्वल नक्षत्र के समान प्रकाशमान है जो अनंतकाल तक इस धरती को अपने प्रकाश से प्रकाशित करते रहेंगे।

सन्दर्भ सूची

1. कुलश्रेष्ठ, मनीषा, बिरजू लय, नयी किताब प्रकाशन, दिल्ली –110032
2. महाराज, पं.बिरजू, छंद काव्य - vol-II/VOL-V/2003, Audio CD
3. आनंद, डॉ.मधुकर, कथक का लखनऊ घराना और पं. बिरजू महाराज दिल्लीः कनिष्क पब्लिशर, 2013
4. मेघ, रमेश कुन्तल, अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा, नई दिल्लीः दी मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, 1977
5. पं. बिरजू महाराज जी के सान्निध्य से प्राप्त अनुभव।
6. पं. बिरजू महाराज जी के विभिन्न प्रस्तुतियों से प्राप्त दत्त पर आधारित।

ग्रामीण विकास में सरकारी योजनाओं से सामाजिक एवं आर्थिक विकास में महिलाएं : एक विश्लेषण

सुहाशनी कुमारी*

शोध सार –

प्रस्तुत अध्ययन ''ग्रामीण विकास में सरकारी योजनाओं से सामाजिक एवं आर्थिक विकास में महिलाओं की सहभागिता'' का अध्ययन है।

यह शोध लेख का अध्ययन ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का उद्देश्य गरीबी दूर करना है। इसके लिए कोष को अधिक से अधिक बढ़ाना ही पर्याप्त नहीं है। बेहतर परिणामों के लिए बुनियादी स्तर पर कुछ परिवर्तन लाना आवश्यक है। इस पूरी प्रक्रिया में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है उन लोगों की पहचान करना जिन्हें इन कार्यक्रमों से लाभ पहुँचाया जाना है। साथ ही बैकिंग प्रणाली को देश के अंदर तक प्रसारित करने के लिए ग्रामीणों को आसान और सरल किश्तों पर ऋण की सुविधाएं उपलब्ध करवाई जा रही है। इससे कृषि और ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन मिला है। इससे हरित क्रांति को भी बढ़ावा मिला है । कृषि उत्पादों में वृद्धि होने से राष्ट्र के विकास को सहयोग प्राप्त हुआ है। कृषि उत्पादन में अवरोध से औद्योगिक विकास को हानि पहुँचती है, जबकि कृषि उत्पादन में विकास से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है ।

विशिष्ट शब्द : ग्रामीण विकास**,** सरकारी योजना, आर्थिक तथा समामाजिक विकास, संरचनात्मक परिवर्तन, इत्यादि ।

विस्तार : भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ कि लगभग 65 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, ग्रामीण भारत की आर्थिक सुदृढ़ता कृषि उत्पादन पर निर्भर नहीं करती, बल्कि लघु उद्योग कुटीर व्यवसाय पशुपालन, मत्सय पालन और स्वरोजगार जैसे, गतिविधियाँ भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, देश के समग्र विकास के एिल ग्रामीण क्षेत्रों का आर्थिक उत्थान आवश्यक है और इसी उद्देश्य से सरकार समय समय पर विभिन्न योजनाएँ लागु करती है, इन योजनाओं का उद्देश्य किसानों लघु उद्यमियों स्वय सहयता समूहों (SHGS) और कमजोर वर्गों की आर्थिक रूप से सशक्त बनाना है।[1]

बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे के विकास को लेकर कई महत्वपूर्ण विकास की कार्य हो रही हैं। इन सरकारी योजनाओं में सड़क विस्तार, पुलों का निर्माण, भूमिगत बिजली तारों की व्यवस्था, जल निकासी सुधार आदि का विकास कार्य शामिल है। इन परियोजनाओं से न केवल बिहार की यातायात और बुनियादी सुविधाओं में सुधार होगा, बल्कि आम जनता को भी बड़ी राहत मिल रही है।[2] ग्रामीण विकास शब्द का मतलब है गाँव के लोगों का आर्थिक सुधार और बड़ा समाजिक बदलाव लाना। और ये सब गाँव की पंचायत के मुखिया, सरपंच, जीविका समूह आदि के पास होते है। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में लोगों का बढ़ी हुई भागीदारी, योजनाओं का विकेन्द्रीकरण, भूमि सुधारों को बेहतर तरीके से लागू करना और ऋण की आसान उपलब्धि करवाकर लोगों के जीवन को बेहतर बनाने का लक्ष्य होता है। ऐसा नहीं है कि विकास कार्यक्रमों में कोई प्रगति नहीं हुई है लेकिन उनकी गति और उपलब्धियाँ वाँछित स्तर की नहीं है। ग्रामीण विकास को हमेशा कृषि विकास के साथ जोड़ा गया और यह मान लिया गया कि कृषि उत्पादन में वृद्धि के साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में समृद्धि आई है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के एक दशक बाद वैचारिक परिवर्तन हुआ। 'अधिक अन्न उपजाओ' जाँच समिति ने केवल कृषि या कृषि से जुड़ी अन्य गतिविधियों जैसे पशुपालन आदि को ही नहीं अपितु इसके साथ–साथ ग्रामीणों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य सामाजिक–आर्थिक जरूरतों के समन्वित कार्यक्रम को भी बढ़ावा दिया।[3]

ग्रामीण विकास की आवश्यकता : भारत आज भी अनेक समस्याओं से जूझ रहा है देश की एक तिहाई से अधिक आबादी गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करती है। वर्तमान मे देश में करोड़ो शिक्षित बेरोजगार है। योजना गत विकास में राष्ट्रीय आय तो बड़ी है लेकिन इस वृद्धि का लाभ लोगों को समान रूप से प्राप्त नहीं

* शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

हुआ है।[4] इसलिए नई आर्थिक नीतियों पर अमल के बाद उन वस्तुओं का ही उत्पादन तेजी से बढ़ रहा है जो धनी लोगों के काम आती है। दरअसल हमारी अर्थव्यवस्था ऐसी है जो मूलतः कृषि पर ही निर्भर है। इसलिए यह कहना अनुचित नहीं होगा कि निरंतर ग्रामीण विकास के बिना हमारा राष्ट्रीय विकास अधूरा एवं निरर्थक ही साबित होगा। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि ग्रामीण उत्थान राष्ट्र के जीवन का मूल आधार है।

ग्रामीण विकास कार्यक्रम :

यहाँ हम निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा आपको ग्रामीण विकास कार्यक्रमों (Rural development projects list) से अवगत कराने वाले है, जिन्हें हमारे देशभर में ग्रामीण लोगों के हित के लिए चलाया जा रहा है...

- रोजगार देने के लिए महात्मा गाँधी नेशनल रूरल एम्प्लॉयमेंट गारंटी एक्ट (मनरेगा)
- स्व रोजगार और कौशल विकास के लिए नेशनल रूरल लाइवलीहूडस मिशन (एनआरएलएम)
- गरीबी रेखा से नीचे वाले परिवारों को आवास देने के लिए इंदिरा आवास योजना (आईएवाई)
- अच्छी सड़कें बनाने के लिए प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (पीएमजीएसवाई)
- सामाजिक पेंशन के लिए नेशनल सोशल असिस्टेंस प्रोग्राम (एनएसएपी)
- आदर्श ग्रामों के लिए सांसद आदर्श ग्राम योजना (एसएजीवाई)

ग्रामीण विकास योजनाओं में बैंकों की भूमिका :

ग्रामीण क्षत्रों के विकास के लिए NABARD एक ऐसा बैंक है जो प्राथमिक तौर पर देश के ग्रामीण क्षेत्रों पर ध्यान देता है।[5] NABARD यानि National Bank for Agriculture and Rural Development की स्थापना 12 जुलाई 1982 को हुई थी। इसका मुख्यालय मुंबई, महाराष्ट्र में है। यह एक शीर्ष संस्था है जिसके पास ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि और अन्य आर्थिक गतिविधियों के लिए ऋण देने के साथ साथ नीति से संबंधित सभी मामलों से निपटने की योजना बना करने की शक्ति है, जो एक शीर्ष संस्था है।

नाबार्ड छोटे उद्योगों, कुटीर उद्योगों और इस तरह के किसी भी अन्य गांव या ग्रामीण परियोजनाओं के विकास के लिए जिम्मेदार है। इस प्रकार हम समझ सकते है की NABARD ग्रामीण आबादी को ऐसे अवसर प्रदान करके धन के विकास में मदद करता है।[6]

उद्देश्य

1. बैंकों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय समावेश को बढ़ावा देने की प्रक्रिया का विश्लेषण करना ।
2. ग्रामीण विकास में सरकारी योजनाओं से सामाजिक एवं आर्थिक विकास को समझना ।
3. रोजगार और आय सृजन गतिविधियों के क्षेत्र में गरीबों तथा हाशिए पर पड़े लोगों की कार्यात्मक क्षमता का निर्माण करना।
4. महिला कल्याणकारी कार्यक्रम के द्वारा उन्हें सामाजिक–आर्थिक बाधाओं को दूर करने और संपूर्ण सशक्तिकरण प्राप्त करने में सक्षम बनाया है इसे ज्ञात करना ।
5. गरीब लोग अपनी बचत जमा कर उसे बैंकों में जमा करते हैं। बदले में उन्हें अपनी सूक्ष्म इकाई उद्यम शुरू करने हेतु कम ब्याज दर के साथ ऋण तक आसान पहुँच प्राप्त होती है।

निष्कर्ष : अतः कह सकते हैं ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक सेवा बचत में वृद्धि के लिए उपयोगी है, उस बचत का प्रयोग उत्पादकीय कार्यो में किया जा सकता है। वर्तमान समय में गांवों में बहुत कम बचत होती है, और उसे भी दबाकर रखने या सोना खरीदने में लगा दिया जाता है। कुछ व्यक्ति उसका व्यय सामाजिक रीति–रिवाजों के पालन में कर देते हैं। ग्रामीण बैंकों को छोटी–छोटी बचतों को जमा करने की सुविधा प्रदान करनी चाहिए। इस बात का प्रबंध भी किया जाना चाहिए ताकि किसान ऋण का भुगतान कृषि उत्पादों के रूप में कर सकें । बैंकों को प्राकृतिक आपदाओं के दौरान ग्रामीणों को सहायतार्थ ऋण की सुविधाएं देनी चाहिए।

संदर्भ सूची

1. गुप्ता आर0 एवं वर्मा पी0 (2017) ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय समावेशन के लिए राष्ट्रीयकृत बैंकों का योगदान भारतीय आर्थिक शोध पत्रिका खंड, 45 (2) पृष्ठ 112, 130
2. अग्रवाल, एम0 (2018) ग्रामीण बैंकिंग और वित्तीय समवेशन भारतीय संदर्भ में एक अध्ययन नई दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवसिटी प्रेस पृ0–120,135
3. मिश्रा, एस0 एवं सेन, आर0 (2019), ग्रामीण अर्थव्यवस्था और वित्तीय समावेशन नीतिगत दृष्टिकोण नई दिल्ली सेज पब्लिकेशन पृ0–120,135

4. कुमार ए0, (2020) भारत में ग्रामीण बैंकिंग और वित्तीय समावेशन एक अध्ययन नई दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0–85,102
5. सिन्हा, आर0 (2021), ग्रामीण विकास और बैंकिंग प्रणाली, एक समकालीन अध्ययन नई दिल्ली सेज पब्लिकेशस, पृ0–112,130
6. चौधरी ए0 एवं सिंह बी0, (2022) भारत में ग्रामीण बैंकिंग और आर्थिक विकास नई दिल्ली सजीव पब्लिकेशन, पृ0–95,110

भूमंडलीकरण के सांस्कृतिक आयाम

खुशबू कुमारी*

शोध–सार :–

*वैश्वीकरण एक प्रक्रिया है इसमें दुनिया भर विभिन्न देश और संस्थाओं के बीच आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और तकनीकी संबंधों में समन्वय बढ़ाने तथा उनके मध्य समय और दूरी को कम करती है। **रवि प्रकाश पाण्डेय (2005)** के अनुसार वैश्वीकरण के प्रक्रिया समय और दूरी का राष्ट्र राज्य से आगे संकुचन उत्पन्न करती है। यह बहुआयामी प्रक्रिया है जो आधुनिक विश्व व्यवस्था में पिछले दो दशकों से बाजार केंद्रीय लोकतंत्र के चारों ओर आकार ग्रहण कर रही है। इसके आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक तत्व है जो विश्व के विभिन्न भागों में और सामान रूपों से विकसित हुए है।*

विशिष्ट शब्द :– आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, तकनीकी, बहुआयामी इत्यादि

वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है, जिसमें एक देश की अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत किया जाता है, ताकि सम्पूर्ण विश्व एक ही अर्थव्यवस्था और एक ही बाजार के रूप में कार्य कर सकें और जिसमें सीमाविहीन अन्तर्राष्ट्रीयकरण व्यवहारों के लिए व्यक्तियों, पूँजी, तकनीकी माल, सूचना तथा ज्ञान का पारस्परिक विनियम सुलभ हो सके। वैश्वीकरण ने भारतीय जीवन, व्यापार, शिक्षा, संस्कृति, संस्था, बाजार व्यवस्था, तकनीकी हर क्षेत्र में अपना प्रभाव डाला है।[1] आज हम एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के रहन सहन कार्यप्रणाली एवं सोच को देख कर यह समझ पाते है कि पहले जहां जीवन में बड़े स्तर पर परिवर्तन आने में सदियों बीत जाती थी वही आज कल वैश्वीकरण ने परिवर्तन का समय बहुत कर दिया है।

Globalisation के सांस्कृतिक आयामों पर दृष्टि डालें तो इसके कुछ सकारात्मक प्रभाव भी देखने को मिलते हैं और कुछ नकारात्मक प्रभाव भी। चलिए इसके बारे में समझते हैं।

1. सांस्कृतिक हस्तक्षेत्र :–

वैश्वीकरण की वजह से सांस्कृतिक हस्तक्षेप में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। इसकी वजह से सांस्कृतिक गतिवाद बढ़ा है और इसमें नित नए परिवर्तन भी आ रहे हैं। जहां व्यापार का लेन देन प्रचुर मात्रा में होता है वहां गतिवाद अपने चरम सीमा पर होता है। सांस्कृतिक हस्तक्षेप वस्तु विनियम के माध्यम से आज इतना व्यापक है कि मौलिक और आयातित गुणों के बीच भेद करना असम्भव नही तो कम से कम मुश्किल अवश्य हो गया है।[2]

कुछ ही दिन पहले खबर आई कि अब आप गंगा आरती और भारत की अन्य महत्वपूर्ण और भगवान दर्शन ऑनलाइन कर सकते हैं। इससे आप समझ सकते हैं कि भारतीय संस्कृति में भूमंडलीकरण का कितना हस्तक्षेप बढ़ गया है और सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह है कि किसी को अजीब या गलत भी नहीं लगता।

2. संस्कृति का वैश्वीकरण :–

वैश्वीकरण का एक नकारात्मक पहलू यह देखने को मिला कि इसने संयुक्त परिवारों को तोड़ा, खराब खान पान की प्रवृतियों को बढ़ावा दिया, दवाओं के उपयोग को बढ़ावा मिला, पाश्चात्य पहनावों को भी बढ़ावा मिला जिसने कहीं नह कहीं संस्कृति का नुकसान ही किया है तो वहीं इसकी वजह से संस्कृति का दुनियाभर में प्रसार भी हुआ।[3] दुनिया के कई देशों में हिन्दी भाषा, भारतीय संस्कृति और खान पान धीरे धीरे प्रचलित हो रहा है।

भारत में पहले वृद्धि बच्चों और नाती पोतियों को कहानियां सुनाते थे, शाम को सभी इकट्ठा होकर विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम किया करते थे, बच्चे बड़े पारंपरिक और सांस्कृतिक खेलों में हिस्सा लेते थे लेकिन वैश्वीकरण ने सबकुछ बर्बाद कर दिया। अब सभी आधुनिक तकनीकों मे व्यस्त रहते हैं और एक दूसरे से बोलने का लोगों के पास समय तक नहीं है। वैश्वीकरण ने सामूहिक की भावना को खत्म किया और व्यक्तिगत भावना को प्रबल किया है।

* समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

भारत भी वैश्वीकरण की प्रक्रिया का हिस्सा है और इसके सक्रिय प्रशंसक और सहयोगी देशों में से एक है। भारत ने विशेष रूप से 1990 के दशक में आर्थिक नीतियों में बदलाव करके वैश्वीकरण को गति दी। इसके परिणामस्वरूप, भारत ने विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए आर्थिक नीतियों में सुधार किए, विदेशी प्रतिबंधों को कम कर के आर्थिक संबंधों में विश्वस्तरीय समन्वय को प्रोत्साहित किया और भारत ने विदेशी कंपनियों को अपने विभिन्न क्षेत्रों में निवेश करने की सुविधा प्रदान की।[4] विदेशी सीमाओं को कम करने और आर्थिक नीतियों को सुधारने के परिणामस्वरूप, विदेशी निवेश भारतीय उद्योगों, वित्तीय सेवाओं, सूचना प्रौद्योगिकी, पर्यटन, आधुनिक बाजारों, सांस्कृतिक व्यवहारों और अन्य क्षेत्रों में वृद्धि हेतु महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है।

वैश्वीकरण के फायदे :–

वैश्वीकरण के कई फायदे है।

- कम कीमतों पर बेहतर उत्पाद
- पूंजी का बढ़ा हुआ प्रवाह
- घरेलू आय में वृद्धि
- लेगों के जीवन स्तर में परिवर्तन
- सीमा पार निवेश में वृद्धि
- बुनियादी ढांचे का विकास

वैश्वीकरण के नुकसान :–

जहां वैश्वीकरण के कुछ फायदे हैं तो इसके कई नुकसान भी देखने को मिलते हैं। वैश्वीकरण के नुकसान इस प्रकार हैं[5] :

- आयात कर को समाप्त करने से राष्ट्रीय आय में कमी आई है
- बेरोजगारी का कारण बन सकता है
- बुनियादी मूल्यों का पतन
- छोटे पैमाने के उद्योगों को नुकसान
- अमीर और गरीब के बीच असमानता
- आर्थिक शक्ति का पुनर्वितरण

वैश्वीकरण का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा?

वैश्वीकरण का भारत के हर क्षेत्र में प्रभाव पड़ा है और यह साफ साफ दिखलाई भी पड़ता है। चलिए एक एक करके हम समझते हैं कि इसका क्या प्रभाव पड़ा है।

1. उपभोक्ताओं के लिए अधिक विकल्प वैश्वीकरण ने उपभोक्ता उत्पादों के बाजार में तेजी ला दी वैश्वीकरण ने उपभोक्ता के बाजारों में तेजी ला दी है। हमारे पास उस समय के विपरीत सामानों का चयन करने के लिए कई विकल्प हैं जहाँ केवल कुछ निर्माता थे।

2. नौकरियों की अधिक संख्या :–

विदेशी कंपनियों के आगमन और अर्थव्यवस्था में वृद्धि से रोजगार सृजन हुआ है। हालांकि, ये नौकरियां सेवा क्षेत्र में अधिक केंद्रित हैं और इससे सेवा क्षेत्र का तेजी से विकास हुआ है जिससे निम्न स्तर की शिक्षा वाले व्यक्तियों के लिए समस्याएं पैदा हो रही हैं। पिछला दशक अपनी बेरोजगारी वृद्धि के लिए जाना जाने लगा क्योंकि रोजगार सृजन आर्थिक विकास के स्तर के अनुपात में नहीं था।[6]

3. कृषि क्षेत्र में विकास :–

भारत एक बड़े पैमाने पर कृषि प्रधान समाज हुआ करता था, जिसमें देश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपनी आजीविका के लिए इस क्षेत्र पर निर्भर था। वैश्वीकरण की वजह से किसानों की तकनीकी क्षमताओं में वृद्धि हुई है – चाय, कॉफी और चीनी जैसे भारतीय उत्पादों के वैश्विक निर्यात को चलाने में काफी मदद मिली।[7]

4. मुआवजे में वृद्धि :–

वैश्वीकरण के बाद, विदेशी कंपनी द्वारा प्रदान किए जाने वाले कौशल और ज्ञान के कारण घरेलू कंपनियों की तुलना में मुआवजे के स्तर में वृद्धि हुई है। यह अवसर प्रबंधन संरचना के परिवर्तन के रूप में भी उभरा। बाजारों का विस्तार करने और उपलब्ध संसाधनों का एक समझदार उपयोग करने के लिए व्यवसाय को सक्षम करने के लिए वैश्वीकरण महत्वपूर्ण है। यह एक व्यक्ति और राष्ट्र के विभिन्न मुद्दों को भी हल

करता है, जिससे उन्हें चुनने और उनकी जरूरतों को पूरा करने के लिए कई विकल्प मिलते हैं।[8] हमें आशा है कि आपको पूरी तरह समझ आ चुका होगा।

अध्ययन का निष्कर्ष :–

वैश्वीकरण दो धारी तलवार कि तरह है, जहां एक ओर आधुनिकता, अर्थव्यवस्था, राज्य राष्ट्र से आगे के सम्बन्ध, परम्पराओं एवं रूढ़ियों से मुक्ति इत्यादि के क्षेत्र में परिवर्तन किये है, तो वहीं स्थानीय पहचान सम्बंधित संस्कृति, मूल्य, प्रतिमान तथा वैवाहिक परम्पराओं, पारिवारिक एकता, सामूहिकता को कम भी किया है। वैश्विकरण ने भारतीय समाज को गहरे से प्रभावित किया है, परिणामस्वरूप सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में धार्मिक क्रियाकलाप, पहनावा एवं उनके खान–पान, इ मार्केट सिस्टम, ऑनलाइन, पेमेंट या लेन–देन, और परिवार में महिलाओं कि निर्णय लेने कि प्रस्थिति बढ़ी है तथा विवाह के सन्दर्भ में वैवाहिक कर्मकांड इत्यादि व्यवहारों में परिवर्तन देखा जा रहा है।

वैश्वीकरण का हमारे रहन सहन, संस्कृति और परंपराओं पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है। वैश्वीकरण की झलक हमारे जीवन के हर एक हिस्से, हर एक सेकंड में देखी जा सकती है। हमारा पहनावा, खान पान, रहन सहन आदि सबकुछ उससे प्रभावित है। हम भावनात्मक रूप से अपनी मातृभाषा से जुड़े होते हैं लेकिन भूमंडलीकरण ने हमारी भाषा में भी हस्तक्षेत्र और मिलावट करने का प्रयास किया है।

संदर्भ सूची :–

1. राम आहुजा, सामाजिक समस्याएं, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली–2008
2. डॉ0 रविन्द्र नाथ मुखर्जी – भारत में सामाजिक परिवर्तन विवेक प्रकाशन, दिल्ली –2009
3. राव राम मेहर सिंह, विकास का समाजशास्त्र – अर्जुन पब्लिशिंग हाउस दिल्ली –2009
4. राव, सी0 एच0 हनुमंथा (2004) एग्रीकल्चर, पॉलिसी एण्ड परफॉरमेंस, इन विमल जालान, द इंडियन इकॉनोमी प्रोब्लम्स एण्ड प्रोपेक्टस, पेंगुइन, दिल्ली।
5. पाण्डेय, रवि प्रकाश (2005) : वैश्वीकरण एवं समाज, शेख्र प्रकाशन, इलाहाबाद। (पृ0–52)
6. गुडे एवं हॉट (1952) : मेथड इन सोशल, रिसर्च, मैकग्राहिल। पृ0–87
7. गिडेन्स, एन्थोनी (1990) : दी कन्सिक्वेंस ऑफ मॉडर्निटी, स्तेंनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, यू0एस0ए0।
8. कल्होत्रा, सुभाष (2011) : वैश्वीकरण और भारतीय अर्थव्यवस्था, रितु पब्लिकेशन्स, जयपुर।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम में शिक्षित महिलाओं की भूमिका

गुंजा कुमारी*

शोध सार–

प्रस्तुत अध्ययन ''सामुदायिक विकास कार्यक्रम में शिक्षित महिलाओं की भूमिका'' का अध्ययन है। महिलाओं के विकास का महत्व सर्वोपरि है और इसी से समग्र विकास की धारा बहती है। 30 जनवरी, 2006 को महिलाओं के मामलों में शासन की गतिविधियों में कमी को पूरा करने और अंतर मंत्रालयी व अंतर क्षेत्रीय समग्रता को संवर्द्धित करने की दृष्टि से एक पृथक् महिला एवं बाल विकास मंत्रालय का गठन किया गया ताकि जा सके। महिलाओं के अधिकारों और चिंताओं पर काम करना और उनकी उत्तरजीविता, सुरक्षा, विकास और भागीदारी सुनिश्चित करना मंत्रालय के प्राथमिक कर्तव्य हैं।

सशक्त महिलाएं जो सम्मान सहित जीएं और हिंसा व भेदभाव से मुक्त वातावरण में प्रगति में बराबर योगदान दें। साथ ही, सुपोषित बालक जिन्हें सुरक्षित और देखभाल भरे माहौल में पनपने और विकसित होने के पूरे अवसर उपलब्ध हों। सुस्पष्ट नीतियों और कार्यक्रम, मुख्यधारा लैंगिक धारणाओं, और उनके अधिकारों के बारे में जागरूकता बढ़ाने के जरिए महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण को बढ़ावा देना, उनमें अपने मानवाधिकारों की प्राप्ति और अपनी पूरी क्षमता तक विकसित होने की सक्षमतापैदा करने हेतु संस्थानिक और विधायी सहयोग उपलब्ध कराना है। विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित नीतियों एवं कार्यक्रमों के माध्यम से बालकों के विकास, देख–रेख और सुरक्षा को सुनिश्चित करना, उनके अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ाना, शिक्षा, पोषण, संस्थानिक एवं विधायी सहायता तक पहुंच बनवाना ताकि वे अपनी पूरी क्षमता तक विकसित हो सकें।

विशिष्ट शब्दः सामुदायिक विकास, संरचनात्मक परिवर्तन सामाजिक, शिक्षित महिला, इत्यादि ।

विस्तार : देश का सर्वांगीण विकास सामुदायिक विकास से ही संभव है। शिक्षा को विकसित हुए बिना विकसित भारत की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। महिलाओं के विकास स्वतत्रंता के बाद देश के लिए चूनौतीपूर्ण रहा है। योजनाओं का सुदृढ क्रियान्वयन सुनिश्चित करने के लिए भी बहुत प्रयास किये गये हैं। नारी के विकास के इन तथ्यों को अनिवार्य रूप से स्वीकार किया गया है कि व्यापक सचेतन व सक्रिय जनसहभागिता ही सामुदायिक विकास द्वारा योजनाओं की सफलता का आधार बन सकती है। आजादी के बाद से लगातार अनुभव किया गया कि महिला विकास की प्रक्रिया में जनसहभागिता को सुनिश्चित करने का सबल संस्थागत माध्यम सिद्ध हो सकती हैं, किन्तु विभिन्न समितियों द्वारा किये गये आकलनों ने यह स्पष्ट किया कि पंचायतीराज संस्थाएँ इस उद्देश्य की प्राप्ति में वास्तविक सीमा तक सफल नहीं हो सकी। इसलिए संविधान का 73वाँ संविधान संषोधन अधिनियम से पंचायती राज संस्थाओं के संदर्भ में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। विकास योजनाओं में जनसहभागिता के नये स्वरूप देखने को मिले। विकास की प्रक्रिया में जनसहभागिता को वास्तविक व मूर्त बनाने में नवीन पंचायती राज संस्थाएँ किस सीमा तक सफल रही हैं? यह अनुभवमूलक आकलन का विषय है। प्रस्तुत अध्ययन इस दिषा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है। प्रस्तुत अध्ययन में जनसहभागिता का सीकर जिले की नीमकाथाना व श्रीमाधा पुर पंचायत समिति की विशिष्ट योजनाओं के संदर्भ में आकलन करने का प्रयास किया गया है।

सामुदायिक विकास आधुनिक सदी की एक बहुत ही लोकप्रिय और महत्वपूर्ण अवधारणा है। आज सामुदायिक विकास को विशेष रूप से अविकसित देशों में अपनाया गया है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम को लोगों के समन्वित विकास के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा और आर्थिक विकास जैसे कृषि, पशुपालन, ग्रामोद्योग और संचार उपकरण और समाज कल्याण कार्यक्रमों से संबंधित गतिविधियों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

सामुदायिक विकास की अवधारणाः– एक विचारधारा के रूप में, यह एक ऐसा कार्यक्रम है जो व्यक्तियों को उनकी जिम्मेदारियों का एहसास कराता है और एक संरचना के रूप में यह विभिन्न क्षेत्रों के आपसी संबंधों

* शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

और उनके पारस्परिक प्रभावों को स्पष्ट करता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भारतीय सन्दर्भ में सामुदायिक विकास एक ऐसी पद्धति को कहते हैं जिसके द्वारा ग्रामीण समाज की संरचना, आर्थिक साधनों, नेतृत्व की प्रकृति और लोगों की भागीदारी में सामंजस्य बिठाकर समाज को विकसित करने का प्रयास किया जाता है।

सामुदायिक विकास का अर्थ :– समुदाय के विकास या प्रगति से है। सामुदायिक विकास को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा लोगों के प्रयासों को सरकारी अधिकारियों के प्रयासों के साथ जोड़ा जा सकता है ताकि समुदायों की आर्थिक और सांस्कृतिक स्थितियों में सुधार हो सके और इन समुदायों को राष्ट्रीय जीवन में समन्वयित किया जा सके ताकि वे योगदान दे सकें।

सामुदायिक विकास सक्रिय और टिकाऊ समुदायों को विकसित करने की प्रक्रिया है जो सामाजिक न्याय और आपसी सम्मान पर आधारित हैं। यह उन बाधाओं को दूर करने के लिए शक्ति संरचनाओं को प्रभावित करता है जो लोगों को उनके जीवन को प्रभावित करने वाले मुद्दों में भाग लेने से रोकते हैं। सामुदायिक कार्यकर्ता इस प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी को सुगम बनाते हैं। वे समुदायों के बीच और व्यापक नीतियों और कार्यक्रमों के साथ संबंधों को सक्षम बनाते हैं। विकास निष्पक्षता, समानता, जवाबदेही, अवसर, चयन, भागीदारी, पारस्परिक आदान–प्रदान और सतत शिक्षा को दर्शाता है।

सामुदायिक विकास की परिभाषा :– सामुदायिक विकास को और भी स्पष्ट करने के लिए कुछ प्रमुख परिभाषाओं का उल्लेख कर सकते हैं, "सामुदायिक विकास किसी समुदाय को अपने आप काम करने के लिए प्रोत्साहित करने और भौतिक तथा आध्यात्मिक रूप से सामुदायिक जीवन को समुद्ध बनाने के लिए कदम उठाने को प्रोत्साहित करता है।

सामुदायिक विकास के मूल्य– सामुदायिक विकास में सहज मूल्य होते हैं। इनका उल्लेख स्थायी रूप से निम्नानुसार किया जा सकता है

सामाजिक न्याय :– लोगों को मानव अधिकारों की मांग करने, उनकी जरूरतों को पूरा करने और लोगों के जीवन को प्रभावित करने वाली निर्णय लेने की प्रक्रियाओं को नियंत्रित करने में सक्षम बनाना।

सहभागिता :– पूर्ण नागरिकता, स्वायत्तता और साझा शक्ति (सत्ता), कौशल, ज्ञान और अनुभव के आधार पर उनके जीवन को प्रभावित करने वाले मुद्दों में लोगों की भागीदारी को सुगम बनाना।

समानता :– व्यक्तियों के दृष्टिकोण और संस्थाओं और समाज के व्यवहार को चुनौती देना जो लोगों के साथ भेदभाव करते हैं और उन्हें अलग–थलग करते हैं।

सामुदायिक विकास के उद्देश्य :– अन्य विकास योजनाओं की भाँति सामुदायिक विकास कार्य के भी कुछ प्रमुख उद्देश्य होते हैं, जिनके लिए समय–समय पर जरूरतमंद समुदायों में विकास कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। मूल रूप से सामुदायिक विकास योजनाओं का मुख्य उद्देश्य सरकारी सहायता और जन सहयोग से ग्रामीण जीवन का विकास करना है। इसके अलावा, सामुदायिक विकास के कुछ प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं। कृषि उत्पादन और ग्रामीण उद्योगों को बढ़ाकर पारिवारिक आय को बढ़ावा देना। जन–कल्याण कार्यों जैसे सड़क निर्माण, विद्यालय भवन निर्माण आदि को जनसहयोग से बढ़ावा देना।

समुदायिक विकास लक्ष्य : हमारे देश में सभी व्यक्ति के लिए शिक्षा का अधिकार दशकों से एक अंतरराष्ट्रीय लक्ष्य रहा है, लेकिन 1990 के दशक से, महिला शिक्षा और सशक्तिकरण तेजी से फोकस में आ गया है। 1994 में काहिरा में आयोजित जनसंख्या और विकास पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन और 1995 में बीजिंग में महिलाओं पर चौथे विश्व सम्मेलन सहित कई ऐतिहासिक सम्मेलनों ने इन मुद्दों को विकास प्रयासों के केंद्र में रखा।

सहस्राब्दी विकास लक्ष्य – 2000 में संयुक्त राष्ट्र सहस्राब्दी शिखर सम्मेलन में विश्व नेताओं द्वारा सहमत – सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा और माध्यमिक और उच्च शिक्षा में लिंग अंतर को कम करने का आह्वान करते हैं। इन उच्च–स्तरीय समझौतों ने लड़कियों के स्कूल नामांकन को बढ़ाने के लिए दुनिया भर में पहल को जन्म दिया। विकासशील देशों में जिन बाधाओं को दूर करना था, उन्हें देखते हुए 1990 के बाद से परिवर्तन उल्लेखनीय रहे हैं।

उद्देश्य

1. सामुदायिक विकास योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण जीवन का सर्वांगीण विकास करना। ग्रामीण समुदाय की प्रगति एवं श्रेष्ठतर जीवन–स्तर के लिए पथ प्रदर्शन करना है।

2. सामुदायिक विकास कार्यक्रम के उद्देश्य इतने व्यापक है कि इनकी कोई निश्चित सूची बना सकना एक कठिन कार्य है।
3. देश का कृषि उत्पादक उचित मात्रा में बढ़ाने का प्रयत्न करना, संचार की सुविधाओं में वृद्धि करना, शिक्षा का प्रसार करना तथा ग्रामीण स्वास्थ्य और सफाई की दशा में सुधार करना।
4. गाँवों में सामाजिक तथा आर्थिक जीवन को बदलने के लिए सुव्यवस्थित रूप से सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया का आरम्भ करना।

निष्कर्ष : उपर्युक्त विवरण द्वारा स्पष्ट है कि महिलाओं के अधिकारों और चिंताओं पर काम करना और उनकी उत्तरजीविता, सुरक्षा, विकास और भागीदारी सुनिश्चित करना मंत्रालय के प्राथमिक कर्तव्य हैं। सशक्त महिलाएं जो सम्मान सहित जीएं और हिंसा व भेदभाव से मुक्त वातावरण में प्रगति में बराबर योगदान दें। साथ ही, सुपोषित बालक जिन्हें सुरक्षित और देखभाल भरे माहौल में पनपने और विकसित होने के पूरे अवसर उपलब्ध हों। सुस्पष्ट नीतियों और कार्यक्रम, मुख्यधारा लैगिंक धारणाओं, और उनके अधिकारों के बारे में जागरूकता बढ़ाने के जरिए महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण को बढ़ावा देना, उनमें अपने मानवाधिकारों की प्राप्ति और अपनी पूरी क्षमता तक विकसित होने की सक्षमतापैदा करने हेतु संस्थानिक और विधायी सहयोग उपलब्ध कराना है।

संदर्भ सूची

1. शिवगामी, 'रूरल डेवलपमेंट प्रोग्राम फॉर द वीमेन एम्पावरमेंट– एन एसेसमेंट', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी एजुकेशनल रिसर्च (वॉल्यूम 6), जुलाई 2017, पेज नंबर 157–158
2. अनिल के शमा।, 'एन इवैल्यूएशन ऑफ इंडियाज बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ स्कीम', नेशनल काउंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च, अगस्त 2020, पेज नंबर 1
3. एन अहमद, 'प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना (पीएमयूवाई) स्टेप टुवर्ड्स सोशल इंक्लूजन इन इंडिया', इंटरनेशनल जनरल आफ ट्रेंड इन रिसर्च एंड डेवलपमेंट, वॉल्यूम 5, फरवरी 2018, पेज नंबर 28–29
4. एल. सी. डे. 'इंपैक्ट ऑफ स्वच्छ भारत अभियान', विज्ञान वार्ता एन इंटरनेशनल ई–मैगजीन फॉर साइंस ऐंथूसियास्ट्स, अगस्त 2022 पेज नंबर 25–35
5. मीनाक्षी व्यास : मिडिल एंड लोअर क्लास वर्किंग वूमेन, सौम्या पब्लिकेशन, मुंबई, 2002, पृ0 38
6. विधि चौधरी, 'एनडीए गवर्नमेंट स्प्लरगस ऑन स्वच्छ भारत और कैंपेन', नवंबर 2014,
7. अक्षय कुमार लॉचेस एड कैंपेन फॉर स्वच्छ भारत प्रेस इनफॉरमेशन ब्यूरो गवर्नमेंट ऑफ इंडिया मिनिस्ट्री ऑफ ड्रिंकिंग वॉटर एंड सैनिटाइजेशन मई 2018, पृ0 16
8. गुप्ता, एस0पी0 तथा अल्का गुप्ता 2007–भारतीय शिक्षा का ताना–बाना, इलाहाबादः शारदा पुस्तक भवन, पृ0 71

शिव मूर्ति की कहानियों में मानवीय संवेदना

डा. धर्मशीला कुमारी*

मानवीय संवेदना का अर्थ है दूसरों के दुःख और तकलीफ को अनुभव करने की शक्ति , उनके दर्द को अपना बनाने की भावना। यह एक इस तरह का भाव है जो हमें दूसरों के प्रति दया , सहानुभूति और प्रेम का अनुभव करता है। मानवीय संवेदना हमें समाज में रहने के लिए प्रोत्साहित करती है।

कहानियाँ न सिर्फ साहित्य का बल्कि मानव जीवन का अभिन्न अंग है। प्रारम्भिक काल से ही कहानियों ने मानव-मन को लुभाने, मनोरंजन देने के साथ-साथ जीने की कला भी सिखाई है। जब ये बोली और घुनी जाती थी तब भी उतनी ही महत्वपूर्ण थी; जितनी आज लिखी और पढ़ी जाने पर। आज के कथाकारों ने अपनी लेखनी द्वारा मानवीय भावनाओं को समेटकर अपनी संवेदना को प्रकट करने का प्रयास किया है। आज हमारा समाज कई प्रकार के नकारात्मक आचरण व्यवहार अनैतिक भावना एवं नियमों के दौर से गुजर रहा है। ऐसे में समाज वर्ग-विभेद के चक्र में फ़ँस गया है, परिणामतः समाज में कुछ लोगों के प्रति नकारात्मक व्यवहार कर उनकी भावनाओं और आत्मा को ठेस पहुँचाया जा रहा है। ऐसे उपेक्षित वर्ग की श्रेणी में हम स्त्री, वृद्ध, किसान , दिव्यांग ,किन्नर , आदिवासी; दलित आदि की चर्चा करते हैं। हिन्दी साहित्य के कई लेखकों ने अपनी कहानियों द्वारा इन उपेक्षितों के प्रति ना सिर्फ़ अपनी सहानुभूति प्रकट की है, बल्कि उन्होनें इनकी स्थिति में खुधार के सुझाव भी दिये हैं। इस दृष्टिकोण से इस शोधपत्र द्वारा कथाकार शिव मूर्ति की कहानियों के माध्यम से स्त्री; वृद्ध, दलित; आदिवासी एवं किसानों की स्थिति पर विचार प्रकट किया गया है। उनकी कहानियों में इन वर्गों के लिए एक गहरी संवेदना व्यक्त की गई है। उनकी कहानियों में इन वर्गों के जीवन की कठिनाइयां और संघर्षों को बारीकी से अध्ययन करती हैं, और साथ ही उनकी शक्ति और प्रतिरोध को भी।

...बोलचाल की भाषा से ही साहित्य का विस्तार होता है। शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में ऐसी ही भाषा का उपयोग किया है। यह भाषा उस परिवेश का अटूट हिस्सा है, जहां से कहानी के पात्रों को उठाया गया है। उनकी कहानियों के पात्र, परिवेश, भाषा और समाज परस्पर घुले-मिले हैं। ये पात्र, भाषा और परिवेश शिवमूर्ति के अनुभव से निःसृत एवं सम्बद्ध हैं। उन्होंने जीवन को कलात्मक ढंग से अपनी कहानियों में उतारकर रख दिया है। यही कहानी कला का उत्कर्ष भी माना जाता है। उनके लेखन में मनुष्य के प्रति आत्मीयता की एक अविरल धारा बहती है। शिवमूर्ति ने कुल आठ कहानियां लिखी हैं। इन्हीं के बल पर उन्हें कहानीकार के रूप में विशिष्ट पहचान प्राप्त हुई है। परिमाण में कम, लेकिन प्रभाव में अप्रत्याशित विस्तार लिए शिवमूर्ति की ये कहानियां ग्रामीण समाज के विभिन्न पक्षों का निरूपण करती हैं। लोक और जन उनकी कहानियों के प्राणतत्व हैं। उनकी वर्णन-शैली रोचक है। स्त्री और दलित जीवन की दशा और दिशा उनकी कहानियों का प्रमुख उपजीव्य है। स्त्री की यातना को उन्होंने संवेदनशीलता के जिस धरातल पर वर्णित किया है, उससे उनकी कहानियां अधिक ग्राह्य, मार्मिक और प्रभावशाली बन गयी हैं।

शिवमूर्ति की कहानियां हमें पाठ के बीच-बीच में रोककर सोचने और भीगने के लिए विवश करती हैं। उन्हें पढ़कर स्त्री की यातना एवं विवशता पर क्षोभ उत्पन्न होता है। इन कहानियों से गुजरकर हम वही नहीं रह जाते, जैसा हम पहले होते हैं। इनमें ग्रामीण समाज का पूरा ठाठ व्यक्त हुआ है, जहां विकृतियों, विषमताओं और विडम्बनाओं से हमारा सामना होता है। शिवमूमूर्ति परिवर्तन की प्रक्रिया को अपनी आंखों से ओझल नहीं होने देते। उनकी कहानी 'कसाईबाड़ा' की शुरूआत शनिचरी के अनशन से हुई है, जो ग्रामीण समाज के लिए एक नयी परिघटना है। यह एक राजनीतिक प्रतिकार है, जो सामन्तवादी व्यवस्था में सम्भव नहीं होता। हालांकि भारतीय लोकतन्त्र दलितों-वंचितों के प्रति अपेक्षा के अनुरूप संवेदनशील नहीं है। फिर भी इसमें प्रतिरोध के लिए गुंजाइश जरूर है। शनिचरी इसी गुंजाइश का इस्तेमाल करती है। यह आवश्यक नहीं कि हाशिये के लोगों का प्रतिरोध सार्थक परिणाम को प्राप्त ही कर ले, किन्तु राजनीतिक चेतना के प्रसार के साथ इसमें अपने अधिकारों के प्रति सजगता तथा प्रतिरोध की चेतना का विकास हो रहा है। इस कहानी के लीडर और परधान दोनों शनिचरी के साथ छल करते हैं। परधान खिरोधर सिंह आदर्श विवाह की आड़ में निर्धन परिवार की लड़कियों को बेचता है, जिसकी परिणति होती है देह-व्यापार में। लोकतन्त्र की प्राथमिक इकाई के मुखिया का यह आचरण जनसाधारण के मन में व्यवस्था के प्रति विश्वास कैसे जगा पाएगा ? इस कहानी के लीडर की सक्रियता

* हिंदी विभाग, एस. एन. सिन्हा कॉलेज जहानाबाद मगध यूनिवर्सिटी बोधगया

विशुद्ध स्वार्थ से प्रेरित है। 'आतंकित करने की हद तक स्पष्टभाषी' अधरंगी परधान और लीडर को 'राहु और केतु' कहता है' समूचे गांव में एक वही है, जो खुलेआम शनिचरी के पक्ष में खड़ा है, लेकिन हर प्रकार से विवश। यह आजादी के बाद का ग्रामीण यथार्थ है। कहानी सहज गति से आगे बढ़ती हुई ग्रामजीवन के परिवेश के प्रति चेतना को सूक्ष्मता, किन्तु संवेदनशीलता के साथ उद्घाटित करती है। ' कसाईबाड़ा ' ग्राम समाज का भयावह प्रतीक है। शिवमूर्ति की दृष्टि में समूची व्यवस्था भ्रष्ट और संवेदनहीन हो चुकी है। कहानी को अधिक तीखा बनाने के लिए दरोगा के चरित्र को निर्मित किया गया है, जो शनिचरी की वेदना को सुनने और उसे न्याय दिलाने के स्थान पर उलटे उसे ही अपमानित-प्रताड़ित करता है। वह रामबुझावन उर्फ लीडर पर रोब दिखाना चाहता है, जबकि लीडर सोचता है कि -''आखिर इतने दिनों से प्राइमरी स्कूल में बुद्धि खर्च करने से बचाते आए हैं तो किस दिन के लिए?''[1] शिक्षक के कर्तव्य से विमुख लीडर देश के अधिसंख्य अध्यापकों का प्रतिनिधि चरित्र है। परधान और लीडर दोनों संवेदनहीन, कुटिल और घोर स्वार्थी हैं। जो लीडर अपनी पत्नी को यह कह सकता है कि 'अरे गांव की साली, परधान तेरे भतार को बनना है कि गांववालियों के?' वह शनिचरी को न्याय दिलाने के लिए कैसे चिन्तित हो सकता है। अधरंगी गांव वालों को बार-बार हिजड़ा कहता है, क्योंकि वे अपनी आंखों से देखकर भी अन्याय का विरोध नहीं कर पाते। अधरंगी की चेतना में कोई उलझाव नहीं है, लेकिन अकेले अन्याय से टकराने का सामर्थ्य नहीं है। हमारे गांव आज भी अन्याय के विरूद्ध सामूहिक प्रतिरोध की चेतना से दूर हैं। परिवेश सामन्ती मूल्यों-मान्यताओं से अब भी प्रभावित हैं।

शिवमूर्ति ने ग्रामीण समाज में गहरे तक धंसे विचार, व्यवहार, संस्कृति, रीति-रिवाज एवं धारणाओं को प्रश्नांकित किया है। यहां भेदभाव के अनेक स्तर हैं। जाति, लिंग और आर्थिक सामर्थ्य के स्तर पर इसमें भिन्नता है। स्त्री के सन्दर्भ में देखें तो शनिचरी, परधानिन और लीडराइन में जाति के अलावा कोई ज्यादा फर्क नहीं है। परधान और लीडर दोनों ही पुरूष पात्र अपनी-अपनी पत्नियों को मूर्ख, असभ्य और नालायक समझकर उनका बार-बार अपमान करते हैं। शिवमूर्ति इस दृष्टि का विखण्डन करते हैं। वे दिखाते हैं कि ग्रामीण समाज में स्त्री जातिगत एवं लिंगगत दोनों विषमताओं की शिकार है। इस मामले में वह निपट अकेली है। पुरूष निहित स्वार्थ के लिए उसका इस्तेमाल जरूर करते हैं। परधानिन सपने में बड़बड़ाती हैं- ''ई गांव लंका है। इहां लंका दहन होवेगा। रावन तू ही हो। लीडर बना है भिभीखन। तोहरे दूनों के चलते गांव का सत्यानाश होवेगा। होइ रहा है। बहिन-बिटिया बेचो। हमहूं का बेचि लेव। रुपया बटोरो।''[2] परधान इसी परधानिन के हाथ से शनिचरी को जहर मिला दूध पिलवाकर अनशन का ही नहीं, उसके जीवन का भी अन्त कर देता है। यही नहीं, वह अपनी पत्नी के बारे में सोचता है कि - ''अब कुछ कहेगी साली तो डरा दूंगा कि दूध तो तूने ही पिलाया था। तूने ही मिलाया होगा जो कुछ भी मिलाया होगा दूध में।''[3] एक पति की अपनी ही पत्नी के बारे में ऐसी सोच किस मनोवृत्ति की परिचायक है, बताने की आवश्यकता नहीं। परधान का अपनी पत्नी के साथ छल एवं विश्वासघात पुरूष की चित्तवृत्ति का ही नहीं, एक बडे मानवीय संकट का द्योतक है।

परधान और लीडर दोनों ही शनिचरी के जीवन-मृत्यु के लाभार्थी हैं। दोनों ही अपने-अपने ढंग से उसे प्रताडित और शोषित करते हैं। गांव में रहने वाली निचली जातियों के साथ होने वाले इस प्रकार के अन्याय-अत्याचार भारतीय राजनीति में विक्षोभ नहीं पैदा करते, न ही साहित्यिक लेखन में इन्हें प्राथमिकता मिलती है। शिवमूर्ति के लेखन में आये जीवन-यर्थाथ के ये टुकडे हिन्दी कथा साहित्य में आवश्यक एवं सार्थक हस्तेक्षेप हैं। शिवमूर्ति की सभी कहानियां ग्रामीण जीवन की संवेदना पर ही आधारित हैं। अन्तर केवल काल एवं आयाम का है। ऊँची जातियों का तरीका बदला है, सोच नहीं। आचरण में अधिक जटिलता आ गयी है। यही कारण है कि शनिचरी परधान और लीडर के मन्तव्य को समझ नहीं पाती। सामूहिक विवाह के नाम पर परधान उसकी बेटी रूपमती को बेच देता है, जबकि लीडर न्याय दिलाने का झांसा देकर उसके खेत अपने नाम करवा लेता है। मन्त्री बनने की महत्वाकांक्षा पाले लीडर का व्यक्तिव परधान से अधिक जटिल है। उसमें दायित्वहीन शिक्षक, अहंकारी पुरुष, संवेदनहीन पति और भ्रष्ट राजनेता की छवियां परस्पर घुल-मिलकर झिलमिलाती हैं। अगर उसकी दृष्टि में लिडराइन मूर्ख, अनपढ़, फूहड़ और भेदस ही नहीं, अपमान एवं उपेक्षा के लायक है; तो इससे स्पष्ट होता है कि स्त्री के प्रति समाज के सामूहिक दृष्टिकोण में आज भी सकारात्मक बदलाव नहीं आया है। शनिचरी को निचली जाति का होने के कारण कठिन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। परधानिन और लिडराइन को पुरुष के दम्भपूर्ण आचरण से बात-बात पर अपमानित होना पड़ता है। ये दोनों स्त्रियां अपने-अपने पतियों के छद्म एवं स्त्री-विरोधी सोच का समर्थन नहीं करतीं। वे क्षुब्ध हैं, किन्तु कुछ कर नहीं पातीं। 'अकालदण्ड' की सुरजी के पास 'प्रकृति से मिला गोरा रंग, पानीदार आंखें, बरबस खींच लेने वाला बोलता चेहरा' है, जिस पर 'भैंसे जैसा बडे-बडे काले बालों वाले उघड़ा शरीर, लम्बी सफेद दाढ़ी-मूंछ और 'बन बिलार' जैसी खीस वाले सिकरेटरी की नजर है।

अकाल से त्रस्त गरीबों के लिए सिकरेटरी 'अन्नदाता का अवतार' है। वह भ्रष्ट राजकीय व्यवस्था तथा आवारा पूंजी का मिला-जुला प्रतीक है, जो किसी भी नियन्त्रण से परे है। चारों तरफ से ऐसे ही गीधों से घिरी सुरजी की झोपड़ी की कुल सम्पत्ति है 'पाव-डेढ़ पाव सत्तू'। 'सिकरेटरी की जलती आंखें और लार टपकाती खीस' लगातार उसका पीछा करती हैं। बिडम्बना यह है कि मनुष्यता के सीमान्त पर अवस्थित सिकरेटरी सुरजी को पुण्य का पाठ पढ़ाने में संकोच नहीं करता- ''दूसरे का दुःख-दर्द दूर करने से बढ़कर कोई पुन्न नहीं है सूरजकली।''[4] यह दुःख सूरजकली के शरीर को भोगकर ही दूर हो सकता है क्या? सूरजकली को पुण्य नहीं, पेट भरने के लिए अनाज और मानवोचित गरिमा की दरकार है, जिसे कोई भी उपलब्ध कराने के लिए तैयार नहीं दिखता। शिवमूर्ति की कहानियों को पढ़कर लगता है कि उनके अधिकांश पुरुष पात्र स्त्रियों का आखेट करने के लिए व्यक्तिगत अथवा सामूहिक स्तर पर सन्नद्ध हैं। स्त्री पात्रों के बरअक्स उनका चरित्र स्वार्थ, कामुकता, कर्तव्यविमुखता, अवसरवादिता एवं अविश्वसनीयता से कूट-कूटकर भरा है। कोई स्त्री इनके चंगुल से निकल जाए तो यह उसका 'भाग्य' है। ऐसा भी नहीं कि शिवमूर्ति के स्त्री पात्र प्रतिवाद और संघर्ष नहीं करते, लेकिन कुछ दूर आगे बढ़ने पर उन्हें चारों तरफ से घेर लिया जाता है। शिवमूर्ति पुरुष जाति की आदिम बनावट और जड़तायुक्त सोच पर भारी चोट करते हैं। 'अकेले बाहर नहीं निकलना। जंगल-सिवार नहीं जाना। अकेले कमाकर खिलाऊंगा उमर भर।' ऐसी सलाह और भरोसा देने वाला 'अकाल दण्ड' की सुरजी का- ''मरद साल भर पहले गांव छोड़कर निकला है, इस बूढ़ी को उसके गले में बांधकर और उसे छोड़ गया है यहां गीधों से देह नोचवाने के लिए।''[5] सुरजी में मुक्ति की चाहत है, लेकिन वह आत्मीय सम्बन्धों के सूत्र को तोड़ नहीं पाती। कहीं एक झिझक और दायित्वबोध है, जिससे उसके पांव बंधे हैं। ''इस गोरी चमड़ी और दप-दप जलती रूप-राशि का क्या करे वह? दुर्दिन की मार भी जिसका तेज मन्द नहीं कर पा रही है। उसे अपने परदेशी पति की याद आ रही है।''[6] इस 'रूपराशि' को पाकर सुरजी को प्रसन्नता नहीं, सन्त्रास की अनुभूति होती है। निम्न जाति में पैदा होना भी इसका एक कारण है। भूलें नहीं कि 'अकालदण्ड' को भोग रही सुरजी ग्रामवासिनी है, जहां का परिवेश आज भी अपने स्त्री-विरोधी सोच के साथ ठस, जड़ तथा दलित-विरोधी है। ऐसे में यदि सुरजी ने अपनी परिस्थितयों से समझौता कर लिया, तो इसमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं है। पेट के लिए समझौता करने वाली यह सुरजी अपनी देह से समझौता नहीं करती। इस स्थिति में भी वह कामातुर सिकरेटरी को झिड़कते हुए कहती है, ''मुंह झौंसि देब दहिजार के पूत।''[7] सुरजी में धिक्कार का साहस है, वह शिवमूर्ति के स्त्री पात्रों का वास्तविक चरित्र और पहचान है। शिवमूर्ति के स्त्री पात्र पुरुषों के लिए 'गीध' और गांव के लिए 'कसाईबाड़ा' जैसी संज्ञाओं का प्रयोग करते हैं तो वे अपने परिवेश की उस भयावहता की अनुभूति करा रहे होते हैं, जिसमें स्त्री जाति को पुरुषसत्ता की यातना, शोषण, बर्बरता और जीवन के अभावों से जूझना पड़ता है।

इस कहानी में शिवमूर्ति ने मिथक का आश्रय लेकर सिकरेटरी के चरित्र की शल्यक्रिया करते हुए लिखा है, ''उनके पसीने में इतनी ताकत आ गयी है कि मकरध्वज जैसा पुत्र पैदा हो जाए। कहां नहीं हैं उनके पसीने के मकरध्वज?''[8] वेदानन्द के बरअक्स सिकरेटरी को खड़ा करके उसके चरित्र के विद्रूप को गहरे रंगों से उभारा गया है। सुरजी के साथ यौन-सम्बन्ध बनाने के प्रथम प्रयास में विफल सिकरेटरी सोचता है कि- ''उमर रीत गयी इस राह चलते, कभी ऐसी आन-बान वाली जनाना से पाला नहीं पड़ा। जितना रूप, उतना ही नखरा। प्राण से प्यारी दाढ़ी का आधा बाल बीन लिया है साली ने। बिल्ली की तरह सारा शरीर नोच डाला है।''[9] वह अपनी कामान्धता में सुरजी के प्रतिरोध को आंकता है। व्यवस्था का अंग होने का दर्प उसकी कामान्धता को पुनर्बलित करता है। सत्ता और पूंजी के गठजोड़ ने ऐसा चरित्र ग्रहण कर लिया है, जिसमें निहित स्वार्थ, संवेदनहीनता एवं अवसरवाद के प्रचण्ड आवेग के साथ ऐसा छल-प्रपंच और आकर्षण समाहित हो गया है, जिसको पहचानना मुश्किल है। शिवमूर्ति ने बिना किसी शब्दाडम्बर के मौजूदा समय के क्रूर यथार्थ को अंकित करने में सफलता पायी है। सुरजी को पाने के लिए सिकरेटरी सामन्ती अवशेष रंगी सिंह को जिम्मा सौंपते हुए कहता है- ''बेइज्जत होने का बदला बेइज्जत करके ही निकालने की मेरी आदत है।''[10] सवाल यह है कि रंगी सिंह की बेटी माला को अपने तम्बू में बुलाकर सिकरेटरी ने उससे किस अपमान का बदला लिया है? जिस रंगी ने सुरजी के बारे में कहा 'नीच जाति है तो दूध की धोयी होने का सवाल ही नहीं पैदा होता। ये तो पेट से छल-छंद लेकर उपजती हैं। उसी की बेटी माला सिकरेटरी के तम्बू में जाकर किस चरित्र का परिचय देती है? शिवमूर्ति ने निचली जातियों के प्रति रंगी के पूर्वग्रह का रचनात्मक प्रतिकार करते हुए जो दृष्य उपस्थित किया है, वह रंगी के अहं एवं सामन्ती श्रेष्ठताबोध को क्षण भर में ही मिट्टी में मिला देता है। शिवमूर्ति के स्त्री पात्र ऊंची-नीची जाति के नहीं, सिर्फ स्त्री हैं, जिनके प्रति पुरुषों का रवैया एक जैसा है। सिकरेटरी के लिए माला और सुरजी में कोई फर्क नहीं है।' ये दोनों ही उसके लिए सिर्फ देह हैं। शिवमूर्ति पुरुष के इस देहबोध पर कड़ी चोट करते हैं।

इस कहानी में रंगी सिंह को उस सामन्ती ध्वंसावशेष का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया गया है, जो स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् सता और पूंजी का दलाल बनकर अपने अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्ष कर रहा है। उसके पास प्रतिरोध की शक्ति नहीं बची है। आत्मग्लानि में डूबे रंगी का धूमिल तेज और ठण्डा खून एक अदृश्य भय का परिणाम है। कामान्ध सिकरेटरी सुरजी ही नहीं, रंगी के लिए भी उतना ही भयावह है। कहानी के आखिरी हिस्से में शिवमूर्ति ने सुरजी के माध्यम से बदलाव की उस चेतना को स्वर दिया है, जो परिवेश की समस्त भयावहता के बावजूद अस्मिता एवं सम्मान के लिए साहस के साथ प्रतिकार करती स्त्री को स्वायत्त पहचान देने में सहयोग कर रही है। कहानी का वाचक कहता है- ''अन्दर का दृश्य बड़ा भयानक है। सिकरेटरी बाबू पलंग पर नंग-धड़ंग पडे छटपटा रहे हैं। सुरजी ने हंसिये से उनकी देह का नाजुक हिस्सा अलग कर दिया है और पिछवाडे के रास्ते भागकर अंधेरे में गुम हो गयी है।''[11] सुरजी का यह अप्रत्याशित शहरी-शिक्षित स्त्रियों के नारीवाद एवं उनके यान्त्रिक कर्मकाण्डों से सर्वथा भिन्न है। इसमें एक अनपढ़ ग्रामीण स्त्री की यातना, छटपटाहट, विवशता और संघर्ष के साथ-साथ उसकी अदम्य जिजीविषा, प्रतिरोध की चेतना एवं अपराजेय साहस को जिस कोण से प्रस्तुत किया गया है, वह कहानी को मार्मिक तथा मूल्यवान बना देता है। सुरजी अपने 'अकाल-दण्ड' को स्वीकार करते हुए मुक्ति के एक नये रास्ते पर निकल पड़ती है। यह रास्ता उसका अपना है, स्व अन्वेषित। तम्बू में जनेऊ से पीठ खुजलाते सिकरेटरी के सामने सुरजी की उपस्थिति कथित श्रेष्ठता के छद्म को अनावृत करने वाली जलती अग्निशिखा जैसी है।

'सिरी उपमा जोग' कहानी में 'लालू की माई की चिट्ठी' का आरम्भ होता है- ''सरब सिरी उपमा जोग, खत लिखा लालू की माई की तरफ से, लालू के बप्पा को पांव छूना पहुंचे...।''[12] पारम्परिक ग्रामीण शैली में लिखा यह पत्र उस स्त्री का है, जिसका पति प्रशासनिक अधिकारी बनने के बाद दूसरा विवाह करके पहली पत्नी और बच्चों को भूलकर अपने पारिवारिक कर्तव्य से मुंह मोड़ लेता है।

गरीबी के दिनों में गहने बेचकर और ताजी रोटियां खिलाकर पति को अफसर बनाने में सहयोग करने वाली लालू की माई का साहस, जिजीविषा, संघर्ष, त्याग, तपस्या और आस्था का चित्र बनाकर शिवमूर्ति ने इस कहानी में उसे अप्रत्याशित ऊंचाई पर खड़ा कर दिया है। लालू की माई की छठी इन्द्रिय को कौन-सा भान होता है कि वह अपने पति से कह बैठती है-''अब मैं आपके 'जोग' नहीं रह गयी हूं, कोई शहराती 'मेम' ढूंढिए अपने लिए।''[13] यह स्त्री के त्याग एवं निस्पृहता की पराकाष्ठा है। यह गांव की स्त्री है। अनपढ़ लालू की माई परम्परा से अनभिज्ञ नहीं है। स्वयं को सीता का प्रतीक मानकर अपने भवितव्य से समझौता करने वाली लालू की माई बुद्धिहीन नहीं, भावुक और संवेदशील है। वह अपने पति को आगे बढ़ाकर स्वयं को बहुत पीछे छोड़ देती है। शिवमूर्ति ने इस कहानी की रगों में जो वेदना, यातना और पीड़ा भरी है, उसे आज के संवेदनहीन समय में महसूस करना आसान नहीं है। अपनी शहराती बीवी के रोब से दबे लालू के बाप की निरीहता एवं असम्पृक्तता पर पाठक को गुस्सा आता है, क्योंकि उसके छद्म ने लालू और उसकी मां को उपेक्षा एवं यातना के दलदल में हमेशा के लिए धकेल दिया है। लालू का बाप पाठक की दृष्टि में इस कहानी का सबसे उपेक्षित पात्र है, जिसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है। वह मशीन का एक पुर्जा भर नजर आता है। इस कहानी में एक ओर है लालू की माई का त्याग, सन्तोष और क्षमाशीलता तो दूसरी ओर है लालू के बाबू की संवेदनहीनता जिसमें स्वार्थ एवं छद्म की कालिमा घुली-मिली है। इतने ऊंचे पद पर होते हुए कोई इतना निरीह कैसे हो सकता है कि वह अपनी पहली पत्नी के बारे में दूसरी पत्नी के अपमानजनक शब्दों को चुपचाप पी पाए? पहली और दूसरी पत्नियों को एक-दूसरे के बरअक्स रखकर देखें तो गांव-शहर और अनपढ़-शिक्षित का फर्क मालूम हो जाएगा। एक में निस्पृहता, त्याग, शालीनता एवं आत्मीयता है, तो दूसरी में एकाधिकार, अपरिचय, कर्कशता और सर्वग्रासी मनोवृत्ति। दूसरी पत्नी ममता को विद्वज्जन भले ही अधिकार चेतना-सम्पन्न सजग स्त्री के रूप में व्याख्यायित करें, किन्तु लालू की माई के बारे में उसकी टिप्पणी को तो अनावश्यक, अशालीन, संवेदनहीन और स्त्री-विरोधी ही कहा जाएगा। उसे नहीं मालूम कि वह अपने पति की जिस पद-प्रतिष्ठा एवं धन का उपभोग कर रही है, उस पर पहला अधिकार लालू की माई का ही है। उस अधिकार-चेतना का क्या मतलब, जो स्त्री को इतना स्वार्थी, अशिष्ट और हिंसक बना दे? जो दूसरी स्त्रियों के प्रति इतनी निर्मम हो, वह स्त्री कैसी? क्या यही स्त्री का बहनापा है, जिसे नारी आन्दोलन प्रतिष्ठित करना चाहता है? शिवमूर्ति की कहानियों में उन्हीं स्त्री पात्रों को सहानुभूति मिली है, जिनकी सोच में सकारात्मकता, जीवन में सक्रियता और न्याय के लिए संघर्षशीलता है। आखिर वह कौन-सा 'राज-पाट' है, जिसे पाकर लालू की माई सुख-सम्पन्नता का जीवन व्यतीत कर रही है लालू को अपने ही बाप की चौखट पर आकर 'बदमाश' होने की सजा भुगतनी पड़ती है? ममता की बेटी की चोट से लालू का माथा कट जाना और चपरासियों के लड़कों द्वारा उसकी पिटाई का दृश्य प्रस्तुत करके शिवमूर्ति ने मानवीय सम्बन्धों से जुड़े कुछ बडे सवाल उठाये

हैं। इनका विश्लेषण यान्त्रिक ढंग से नहीं, गहरी संवेदनशीलता के साथ ही किया जा सकता है। कहानीकार ने लालू का एक चित्र खिंचा है- ''जैसे मरुभूमि में खड़ा हुआ अवशेष जिजीविषा वाला बबूल का कोई शिशुक्षाड़, जिसे कोई झंझावात डिगा नहीं सकता, कोई तपिस सुखा नहीं सकती।''[14] पिता की उपेक्षा के बावजूद लालू की सहनशीलता उस अधिकार-चेतना से सर्वथा भिन्न है, जिसे हम अपने चतुर्दिक परिवेश में निरन्तर उच्च स्वर में सुनते रहते हैं। 'चबूतरे पर गांव की अनुपस्थिति से लालू के बाप को चैन मिलने की बात का उल्लेख करके शिवमूर्ति ने गांव और शहर के बीच बढ़ती दूरी का संकेत कर दिया है। कहानी पाठक के मन में लालू की माई के प्रति सहानुभूति ही नहीं, करुणा उत्पन्न करती है। इस कहानी में लालू की माई अपनी उपेक्षा को लेकर कोई विरोध नहीं करती, लेकिन दयनीयता क्षुब्ध करने वाली है। कष्ट और वेदना को चुपचाप सहन कर लेना उसे अप्रत्याशित ऊंचाई देता है, जिसे ममता जैसी स्त्री सपने में भी नहीं छू सकती। लालू की माई की वेदना इतनी सघन है कि कहानी में उसका प्रभाव कई गुना बढ़ जाता है। आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि उन्होंने अपने पति को शिक्षित-शहरी स्त्री से विवाह करने की सलाह दी।' वे ऐसा न करतीं तो भी उनका अधिकारी पति वही करता, जो उसने किया। लालू का बाप आज के कठोर हृदय, संवेदनहीन एवं पाखण्डी पुरुष का प्रतिनिधित्व करता है।

'भरतनाट्यम' की पहली पंक्ति में एक कर्कश ध्वनि सुनाई पड़ती है- ''अभी तुझे भिनसार नहीं हुआ है क्या रे?...साला, शोहदों की तरह!... अगर चौथी बार मूस भी पैदा हो गया तो बिना खेती-बारी में हिस्सा दिए अलग कर दूंगा।''[15] यह एक बाप का 'क्रोध ' और घृणा से चिलचिलाता हुआ स्वर है, जो कहानी के नायक ज्ञान को निरन्तर सन्त्रस्त करता रहता है। ज्ञान बेरोजगार है, उसके तीन बेटियां हैं और यही बाप की नजर उसका सबसे बड़ा अपराध है। बाप की नजर में बेटा-बहू दोनों ही अपराधी और परिवार के लिए निरर्थक एवं अनुपयोगी हैं। शिवमूर्ति ने यहां बदलाव की आंधी के बरअक्स ग्राम समाज की स्त्री–विरोधी सामूहिक चेतना को अभिव्यक्त किया है, जहां ढेरों पूर्वग्रह एवं मिथ्या धारणाएं समूची भयावहता के साथ मौजूद हैं। यह चेतना पीढ़ी दर पीढ़ी संक्रमित होती रहती है। बाप की चेतना मां तथा भौजाई को भी आक्रान्त किए हुए है, ''सांड़ बनाना चाहती है भतार को। तीन-तीन बेटियां बियाने के बाद भी गर्मी कम नहीं हुई है, पलटन तैयार करने की कसम खाकर आयी है। मायके से। इस हरजाई की कोख में लड़का फल सकता है भला ! परिवार ज्ञान और उसकी पत्नी के लिए क्रमश: 'शोहदा' एवं 'हरजाई' जैसे शब्दों का प्रयोग करता है। यहां भी लैंगिक भेदभाव है। हरजाई में चरित्रहीनता का जैसा घनत्व है, वैसा शोहदा में नहीं है। समाज में स्त्री का चरित्रहीन होना सर्वस्वीकृत है। लड़का पैदा न होने के लिए भी स्त्री ही उत्तरदायी है। यह धारणा स्वयं में अवैज्ञानिक एवं निराधार है, किन्तु पितृसत्तात्मक समाज को इससे कोई मतलब नहीं है। शिवमूर्ति हमारे समकाल में गहराई तक धंसी इस विडम्बनापूर्ण स्थिति को बड़ी बारीकी से देखते हैं और परिवार की गतिकी को उसके भिन्न-भिन्न आयामों के साथ उद्घाटित करते हैं। उनका कथाकार मन रेणु की तरह गांव की रंगीनी पर मुग्ध नहीं होता, उसकी विकृतियों को उभारता है, प्रत्याख्यान करता है। 'भरतनाट्यम' में कई नाटकीय मोड़ आये हैं। इनसे कहानी की संरचना संश्लिष्ट, किन्तु रोचक एवं विस्तृत हुई है। पक्षपात एवं उपेक्षा के कारण नायक को बेटियों के व्यवहार में प्रकट होने वाली दीनता एवं असमय प्रौढ़ता कचोटती है। जीवन-स्थिति का ऐसा दबाव कि वह बेटियों पर कभी अपना प्यार भी प्रकट नहीं कर पाता। कभी उसके मन में आता है- ''मंड़हे में पूजा कर रहे बाप का शंख-घडियाल उठाकर गड़ही में फेंक दूं।' सगुन के सारे प्रयास निष्फल हो जाते हैं। न ज्ञान को लड़का पैदा होता, न ही नौकरी मिलती है। इनमें पहले का सम्बन्ध जैविकता से है तो दूसरे का व्यवस्था से, लेकिन ज्ञान के पिता की दृष्टि में इन दोनों 'अवगुणों' के लिए वही उत्तरदायी है। अधिकारी को हस्ताक्षर के बदले पैसा चाहिए, क्योंकि ''साहब निरबंसिया तो हैं नहीं। अभी दो बहनों की शादी करनी है...।''[16]

भ्रष्ट व्यवस्था का कृपापात्र बनने के लिए चापलूसी और पैसा दोनों जरूरी है। ज्ञान एक आदर्शवादी पात्र है। वह परिवार और व्यवस्था में कहीं भी ठीक नहीं बैठता। ज्ञान की पत्नी भी उसे अयोग्य समझती है। उसके मन में बेटा पैदा करने की इतनी तीव्र कामना है कि यौन-संसर्ग के लिए वह अपने जेठ को बुला लाती है। ज्ञान अपनी आंखों के सामने पत्नी की कोठरी से उसे बाहर निकलते देखता है, लेकिन चुप रह जाता है। हताशा और एकाकीपन की मनोदशा में ज्ञान की संवेदना मृतप्राय हो गयी है। आदर्श और यथार्थ के बीच फंसा ज्ञान जिस पत्नी को अपना अन्तिम आलम्ब समझकर उसके लिए कपड़े और प्रसाधन सामग्री लाता है, वह खलील दर्जी के साथ कलकत्ता भाग जाती है। रास्ते भर वह अपने जिस आदर्श को छोड़कर व्यावहारिक बनने का सपना बुनता है, वह घर पहुंचते ही चकनाचूर हो जाता है। यह हमारे बदलते आत्मीय सम्बन्धों की एक बानगी है, जिसमें एकनिष्ठता के लिए स्थान सिकुड़ गया है। जैसे-जैसे चेतना बदल रही है, इच्छा-आकांक्षाएं बलवती हो रही हैं; उसी अनुपात में पुरानी मान्यताएं टूट रहीं हैं। शिवमूर्ति ने ज्ञान के इस प्रश्न से कि 'नाक है आपके पास?' उसके पिता के सोच का प्रत्याख्यान किया है। कहानी के भीतर से यह

प्रश्न भी उठता है कि कौन-सी नैतिकता है, जो पुत्र-प्राप्ति और घर की सीमा में बहू को बांधे रखने के लिए ससुर को उसके पुरुषत्व का बोध कराती है? क्या इसे निर्लज्जता नहीं कहेंगे? ग्रामीण समाज अपनी जिस सहजता, नैतिकता, मर्यादा और आदर्शवादिता के लिए 'कुख्यात' रहा है, उसे शिवमूर्ति ने प्रश्नांकित किया है। कहानी के अन्त में ज्ञान का भरतनाट्यम करना प्रथमदृष्टया नाटकीय, अटपटा अथवा स्थिति के प्रतिकूल लग सकता है, किन्तु बारीकी से देखें तो समूची कहानी में ज्ञान कहीं भी एक सहज-स्वाभाविक पात्र नहीं बन पाता। यह कहानी कार्य-कारण सम्बन्ध को दृष्टिपथ में रखते हुए नैतिकता, आदर्श एवं आत्मीय सम्बन्धों में आई विकृति को उभारती है। ज्ञान की निराशा और हताश मन:स्थिति का चित्र प्रस्तुत करने के बजाय कहानीकार ने उसे एक ऐसे 'व्यक्ति' के रूप में रचा है, जो अपने परिवार तथा चतुर्दिक परिवेश चेतना से त्रस्त होकर संवेदनशून्य हो गया है। वह कोई प्रतिवाद नहीं करता। पत्नी के घर छोड़कर भाग जाने पर भी यही सोचता है कि 'चली गयी, चलो, जहां भी रहे, सुखी रहे... लेकिन भागना ही था तो एक दिन पहले भाग जाती। मैं टूटने से बच जाता...घूस देन से...पथभ्रष्ट होने से...।' यह स्वाभाविक मन:स्थिति का चित्र नहीं है। शिवमूर्ति ने ज्ञान की विविशता को कारुणिक अन्त में पर्यवसित किया है। सन् 1980 में प्रकाशित कहानी 'कसाईबाड़ा' से लेकर 2013 में 'ख्वाजा, ओ मेरे पीर' तक की रचनात्मक यात्रा में शिवमूर्ति ने ग्रामीण समाज के विविध पक्षों का जो चित्रण किया है, उसमें विकास एवं गतिशीलता है। अनुभव एवं संवेदना की सक्रिय भूमिका है। इन कहानियों में स्त्रियों, दलितों एवं किसानों की यातनाओं और चुनौतियों को सहृदयता के साथ उभारने वाले शिवमूर्ति की पक्षधरता स्पष्ट है।

संदर्भ - ग्रंथ :-

1. कसाईबाड़ा .शिव मूर्ति . पृ.21
2. वही
3. वही . पृ.23
4. अकालदंड.शिवमूर्ति . पृ.11
5. वही
6. वही . पृ.13
7. वही . पृ.15
8. वही . पृ.16
9. वही. पृ.17
10. वही. पृ.18
11. वही . पृ.19
12. सिरी उपमा जोग.शिवमूर्ति . पृ.21
13. वही
14. वही . पृ.23
15. भरत नाट्यम .आचार्य भरत मुनि . पृ.59
16. वही . पृ.60

भारतीय ज्ञान परम्परा के संरक्षण में पुस्तकालय की भूमिका

डॉ. अनिता कुमारी*
डॉ. शिव प्रकाश यादव**

मनुष्य ने जब से लिखने की कला का आविष्कार किया है तब से उसे संजोकर रखने का प्रयत्न करते आया है। विश्व में लेखन का पहला प्रयास लगभग 3200 ईसा पूर्व में सुमेर/ मेसोपोटामिया में हुआ । यही पर विश्व के सबसे प्राचीनतम पुस्तकालय के सन्दर्भ भी प्राप्त होते है। असीरिया की राजधानी निनवै में एक प्रसिद्ध पुस्तकालय था। वहां का राजा असुरबनिपाल एक साहित्यप्रेमी शासक था। उस समय चिकनी मिट्टी की गीली पट्टियों पर खोद कर लिखा जाता था। जिसे कीलाकर लिपि कहते थे। ऐसी बहुत सी पट्टियां उस पुस्तकालय में रखी गई थी जो आज उनके इतिहास लेखन की महत्वपूर्ण स्रोत बन चुकी है।

मिस्र के अलेकजेंड्रिया में अवस्थित पुस्तकालय को टॉलेमी शासकों के अधीन सबसे विशाल पुस्तकालय होने का गौरव प्राप्त है। रोम और यूनान की संस्कृतियों में भी पुस्तकालयों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। भारत में तक्षशिला एवम् नालंदा विश्वविद्यालय के अंतर्गत अत्यंत समृद्ध पुस्तकालय थे। तक्षशिला पुस्तकालय में वेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, ज्योतिष, चित्रकला,कृषिविज्ञान एवम् पशुपालन इत्यादि से सम्बन्धित ग्रन्थों को संग्रहीत किया गया था। वही गुप्त शासक कुमारगुप्त द्वारा स्थापित नालन्दा विश्वविद्यालय में एक विशाल एवम् भव्य पुस्तकालय था जिसका नाम धर्मगंज था।[1] यह पुस्तकालय तीन भवनो से मिलकर बना था जिनके नाम निम्नलिखित है -

1. रत्नोनिधि
2. रत्नसागर
3. रत्नरंजम

धर्मगंज पुस्तकालय में तत्कालीन समय के सभी महत्वपूर्ण ग्रंथ उपलब्ध थे जिनके अध्ययन एवम् अनुशीलन के लिए देश विदेश से विद्यार्थी और जिज्ञासु आते थे इन्ही सब में एक चीनी यात्री हुएनसांग था जो सातवीं शताब्दी में राजा हर्षवर्धन (606-647 ईस्वी) के शासन काल में नालंदा विश्वविद्यालय गया था। उसने नालंदा विश्वविद्यालय, उसके पुस्तकालय, अध्यापक, विद्यार्थी, पाठ्यक्रम और प्रबन्धन का बृहद वर्णन किया है। हुएनसांग के विवरण से नालंदा विश्वविद्यालय दुनिया के महानतम विश्वविद्यालयों में से एक दिखाई पड़ता है। जहां पर धर्म दर्शन के साथ साथ तर्क, ज्योतिष, गणित और आयुर्वेद का अध्ययन-अध्यापन होता था। जो 13 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशक में तुर्क आक्रमणकारी बख्तियार खिलजी के कोपभाजन का शिकार हो गया। किसी विश्वविद्यालय और उसके पुस्तकालय के पतन होने का सीधा अर्थ होता है अतीत के एक बड़े हिस्से का समाप्त हो जाना। आक्रमणकारियों की एक प्रवृत्ति होती है वे जहां भी आक्रमण करते है वहां की संस्कृति और सभ्यता के प्रतीकों को रौद कर अपनी सभ्यता और संस्कृति के प्रतीकों को स्थापित करते है है। ऐसा ही मध्यकाल में तुर्क और मुगल शासकों ने किया। मध्यकाल में शिक्षा के केन्द्र और पाठ्यक्रम में बदलाव हो गया अब शिक्षा का केंद्र मदरसा और पाठ्यक्रम इस्मालिक धर्म, दर्शन और शरीयत हो गया फिर भी व्यक्तिगत रूप से अन्य शिक्षा व्यवस्था भी चलती रही ।गुलाम वंशीय सुल्तान इल्तुतमिश ने अपने बेटे नसीरुद्दीन और मुहम्मद गोरी की स्मृति में दिल्ली में मदरसों की स्थापना की थी। मध्यकाल में 'कुतुबखाना' नाम से

* सहायक आचार्य सह विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, राम जयपाल महाविद्यालय, छपरा
** सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, राम जयपाल महाविद्यालय, छपरा

पुस्तकालयों की स्थापना हुई थी, जिसमें अरबी, फारसी भाषाओं की पुस्तकों को संरक्षित किया गया था जिसमें समय समय पर संस्कृत भाषा के ग्रंथों का फारसी भाषा में अनुवाद करवाकर उनको पुस्तकालयों में संकलित भी किया गया था । इसी तरह भारत में मुगल वंश के संस्थापक बादशाह बाबर अपने साथ सदैव एक पुस्तकालय लेकर चलता था क्योंकि वह पढ़ने एवम् लिखने का काफी शौकीन था। इसी की ही भांति उसका उत्तराधिकारी हुमायूं था जिसकी मृत्यु भी अपने पुस्तकालय की सीढ़ियों से लुढ़ककर गिरने से हुई थी । भले ही शासकों ने पुस्तकालयों को स्थापित किया हो या पुस्तकों का अनुवाद करवाया हो फिर भी शिक्षा और पुस्तकालय साधारण लोगों के लिए नही होते थे मध्यकाल तक।

भारत में प्राचीन काल से ही शिक्षा आज की भांति सब के लिए सर्वसुलभ नही थी बल्कि यह कुछ विशिष्ट व्यक्तियों (उच्च वर्ण के पुरुषों) के लिए एक प्रकार का सुरक्षित विशेषाधिकार था। ऐसी परिस्थिति में पुस्तकालयों तक पहुंच भी उन्ही विशिष्ट व्यक्तियों को प्राप्त था। मध्यकाल में भी अधिकांश पुस्तकालय सुल्तानो/राजाओं द्वारा अपने निजी उपयोग अथवा विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के लिए स्थापित किए जाते थे। सही मायने में मध्यकाल तक भारत में शिक्षा और धर्म उच्च वर्गीय पुरुषों का विषय था जिसके कारण भारत में साक्षरता की दर काफी धीमी और बौद्धिक विकास काफी चुनौतीपूर्ण रहा।

अंग्रेजों के शासन काल में भी पुस्तकालयों का विकास शिक्षा के विकास की भांति काफी धीमा रहा। 1836 ईस्वी में कलकत्ता पब्लिक लाइब्रेरी की स्थापना हुई जो आधुनिक शैली का भारत में स्थापित पहला सार्वजनिक पुस्तकालय माना जाता है। जिसमें 1903 ईस्वी में इंपीरियल लाइब्रेरी को मिला दिया गया । जिसका नाम 1948 ईस्वी में परिवर्तित करके 'राष्ट्रीय पुस्तकालय' कर दिया गया और इसको एक राष्ट्रीय महत्व के संस्थान के रूप में मान्यता प्रदान कर दिया गया। इस पुस्तकालय में भारत में प्रकाशित होने वाली सभी पुस्तकों, पत्रिकाओं और समाचार पत्रों की एक प्रति को अनिवार्य रूप से संग्रहीत एवम् संरक्षित किया जाता है। 'पुस्तकों और समाचार पत्रों के डिलीवरी (सार्वजनिक पुस्तकालय) अधिनियम 1954' के प्रावधानों के अन्तर्गत भारत में प्रकाशित सभी प्रकाशन की एक प्रति यहां रखना होता है जिससे भारत में प्रकाशित होने वाले सभी प्रकार के प्रकाशन राष्ट्रीय पुस्तकालय, कोलकाता में प्राप्त हो जाते है। राष्ट्रीय पुस्तकालय में उपलब्ध पुस्तकों एवम् सामग्रियों का डिजिटलीकरण हो रहा है वर्तमान में यहां की लगभग 25000 अति महत्वपूर्ण एवम् दुर्लभ ग्रंथों का डिजिटलीकृत किया जा चुका है। जो संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार के वेब पोर्टल https://indianculture.gov.in पर उपलब्ध है।[2]

पुस्तकालय कई प्रकार के होते है जिनमे सबसे महत्वपूर्ण होता है अकादमिक पुस्तकालय । भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान ईस्ट इंडिया कम्पनी और ईसाई मिशनरियों के द्वारा कई तरह के शैक्षणिक संस्थानों और पुस्तकालयों की स्थापना की गई थी। जैसे कलकत्ता मदरसा (1781 ईस्वी), एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल (1784 ईस्वी), बनारस संस्कृत कॉलेज (1791 ईस्वी), फोर्ट विलियम कॉलेज (1800 ईस्वी) । इसी प्रकार ईस्ट इंडिया कम्पनी ने वुड डिस्पैच के सलाहानुसार लंदन विश्वविद्यालय के तर्ज पर तीनों प्रेसिडेंसियों कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में एक-एक विश्विद्यालय की स्थापना 1857 ईस्वी की गई थी। आगे इन सभी विश्विद्यालयों में पुस्तकालय स्थापित किए गए । वर्तमान में भारत के विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों, शैक्षिणक एवम् अकादमिक संस्थानों में पुस्तकालय है जिनमें कुछ अत्यंत समृद्ध भी है फिर भी विद्यार्थी एवम् शोधार्थी उन पुस्तकालयों का उतना लाभ नही ले पाते है जितना उनसे अपेक्षित है। कोई पुस्तकालय जितना अकादमिक जीवन के लिए लाभकारी होता है उतना ही सामुदायिक जीवन के लिए भी क्योंकि पुस्तकालय एक ऐसा स्थल होता है जहां पर विविध वैचारिक के लोगों और विविध प्रकार की पुस्तकों से गुफ्तगू करने का अवसर और स्थल प्रदान करता है।

अतीत एवम् वर्तमान में पुस्तक लेखन का मूल उद्देश्य उपलब्ध सूचना, ज्ञान और संदेश को अगली पीढ़ी तक पहुंचना होता था। पुस्तकों को अध्ययन के उद्देश्य से संगृहीत किए जाने वाले स्थल को पुस्तकालय कहा जाता है, पुस्तकालय वह स्थल होता है जो पुस्तकों और अन्य अध्ययन सामग्री को सुरक्षित रखते हुए पाठकों को उपलब्ध करवाने का काम करता है। पुस्तकालय उन तमाम पुस्तकों को भी पाठकों को सुगमता से उपलब्ध करवाता है जो अब बाजार में अनुपलब्ध है या उनकी कीमत बहुत अधिक है। सार्वजनिक पुस्तकालय को समाज के विकास का दर्पण माना जाता है। जहां लोग एक-दूसरे से मिलते जुलते है

शैक्षणिक पुस्तकालय किसी शैक्षणिक संस्थानों यथा महाविद्यालय एवम् विश्वविद्यालय से सम्बन्धित होते है। जिसका लाभ ज्यादातर उसी संस्थान से सम्बन्धित विद्यार्थी और अध्यापक लेते है, जबकि सार्वजनिक पुस्तकालय में सभी तरह के लोग जाकर लाभ प्राप्त करते है।

पुस्तकालय अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग प्रकार की प्रभाव डालता है । जैसे एक छोटे बच्चे की मां उसके जीवन की पहली कहानी पढ़ने को ले जा सकती हैं या वह आगे वहां बैठकर पढ़ सकता है। पुस्तकालय वह स्थल है जहां पुस्तकों के माध्यम से अतीत का वर्तमान से संगम होता है और भविष्य की राह तैयार की जाती है क्योंकि पुस्तकालय किसी के अध्ययन और शोध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।[3] सही मायने में पुस्तकालयों के अभाव में अपने अतीत और संस्कृति के विषय में समझना और जानना एक जटिल और असम्भव कार्य बन जायेगा।

पुस्तकालयों के महत्त्व को इस तथ्य से भी समझा जा सकता है कि मध्यकाल के आक्रमणकारियों ने ज्ञान के इन स्त्रोतों को पूरी तरह विनष्ट कर दिया। जैसे नालंदा विश्वविद्यालय पर बख्तियार खिलजी का आक्रमण और पूरी तरह से विश्वविद्याल का तहस - नहस कर देना । उसी प्रकार 1857 की क्रांति के पश्चात यूरोपीय समुदाय एवम् सरकार द्वारा कलकत्ता पब्लिक लाइब्रेरी को दिए जाने वाले अनुदान को समाप्त कर दिया जाना । जिसके चलते 1859 ईस्वी कलकत्ता नगर पालिका ने उक्त पुस्तकालय के रख- रखाव एवम् प्रबंधन की जिम्मेदारी स्वयं अपने हाथो में ले लिया। जो स्वतंत्रता के पश्चात भारत सरकार के संरक्षण में चली गई।

यूनेस्को और भारत सरकार के संयुक्त प्रयास से 1951 ईस्वी में दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी की स्थापना हुई। इसमें लगभग चार लाख पुस्तकें उपलब्ध है जिसमें नवीनतम विश्वकोश, गजटियर, शब्दकोश और सन्दर्भ साहित्य इत्यादि सम्बन्धित पुस्तके शामिल है।

भारत में शोध पुस्तकालयों की शुरुआत 1784 ईस्वी में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना के साथ हुई थी। जिसके लगभग बीस वर्ष पश्चात 1804 ईस्वी में एशियाटिक सोसायटी ऑफ बॉम्बे की भी स्थापना हुई। दोनों स्थानों पर भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित साहित्य,अभिलेख, सिक्के, पांडुलिपि एवम् पुरावशेष संरक्षित है। जो भारतीय इतिहास, संस्कृति और समाज पर लेखन के लिए महत्वपूर्ण साक्ष्य उपलब्ध करवाते है। अंग्रेजों की ही भांति भारतीय देशीय रियासतों के शासकों ने अपने रियासतों में भी पुस्तकालय स्थापित करवाए। ऐसा पहला प्रयास बड़ौदा के शासक सयाजीराव गायकवाड़ ने किया था । इन सभी पुस्तकालयों का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से गहरा नाता रहा है जिस प्रकार यूरोपीय पुनर्जागरण में पुस्तकालयों का योगदान था उसी प्रकार भारतीय सामाज के पुनर्जागरण में पुस्तकालयों का योगदान अहम रहा है क्योंकि कई पुस्तकें हमारे मस्तिष्क को उद्वेलित करके बौद्धिक उत्तेजना से भर देने का कार्य करती है।

17 वीं शताब्दी में तंजौर के राजा ने 'सरस्वती महल' नाम से एक पुस्तकालय की स्थापना की थी जो आज भी कार्यरत है। फिर भी भारत में पुस्तकालयों का विकास जनसंख्या के सापेक्ष नही हो पाया। वर्तमान में जहां पुस्तकालयों को डिजिटलीकरण और ऑनलाइन किया जा रहा है वही मूर्त पुस्तकालयों की स्थिति बदहाल होती जा रही है जिसका हमारे सामाजिक एवम् सामुदायिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। एक

अध्ययन के अनुसार भारत में 220 विश्वविद्यालय स्तर, 7000 महाविद्यालय स्तर एवम् एक लाख विद्यालय स्तर के पुस्तकालय है। आंकड़ों की दृष्टि से भारत में विद्यालय स्तर के पुस्तकालयों की स्थिति बहुत ही दयनीय है क्योंकि लगभग छः लाख विद्यालयों में से लगभग 41 % विद्यालयों के पास ही पुस्तकालय की सुविधा उपलब्ध है उनमें से भी लगभग 17% विद्यालयों के पुस्तकालयों में 100 से भी कम पुस्तके उपलब्ध है।[4]

भारत में पुस्तकालय और उससे सम्बन्धित विद्या पर सबसे महत्वपूर्ण कार्य एस आर रंगनाथन ने किया है। उन्हें भारतीय पुस्तकालय विज्ञान का पिता कहा जाता है उनके सम्मान में ही 12 अगस्त को राष्ट्रीय पुस्तकालय दिवस मनाया जाता है। रंगनाथन जी जब मद्रास विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष थे तब उन्होंने पुस्तकालय सम्बन्धीय अपने पांच सूत्रीय विचार दिए जिसके अनुसार पुस्तकालय में पुस्तकों का वर्गीकरण, सूचीकरण, अनुक्रमणीकरण एवम् प्रबन्धन इत्यादि पर जोर दिया गया। इन्ही के प्रयासों से 1928 ईस्वी में मद्रास लाइब्रेरी एसोसिएन की स्थापना हुई। इसी तरह 1948 ईस्वी मद्रास लाइब्रेरी अधिनियम बना।

पुस्तकालयों की स्थापना एवम् उनके रख रखाव के लिए कानूनों की आवश्यकता को डॉ. रंगनाथन जी ने सर्वप्रथम समझा और उसके लिए प्रयास किया। उन्होंने 1930 ईस्वी में हुए आल एशिया एजुकेशनल कांफ्रेंस में पुस्तकालय अधिनियम सम्बन्धित प्रारूप पेश किया था जिसे कालांतर में तमाम राज्यों द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

पुस्तकालयों का पुरातात्विक महत्व:

भारत के कई पुस्तकालय अत्यन्त खूबसूरत एवम् भव्य भवनों में संचालित है जिनका अपना ऐतिहासिक एवम् पुरातात्विक महत्व है। जैसे वर्तमान में राष्ट्रीय पुस्तकालय कोलकाता जिस भवन में संचालित होता है वह कभी ब्रिटिश गवर्नर जनरलों का आवास हुआ करता था। इसी प्रकार नेहरू स्मृति संग्रहालय एवम् पुस्तकालय जो अब प्रधानमंत्री संग्रहालय के नाम से जाना जाता है वह कभी आजाद भारत के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु का आवास हुआ करता था। इस संग्रहालय में गांधी जी, नेहरू जी और उनके समकालीन तमाम नेताओं के पत्रों, पुस्तकों और अभिलेखों को संकलित एवम् संरक्षित किया गया है। इसी प्रकार रजा लाइब्रेरी, सरस्वती महल, कोननेमारा पब्लिक लाइब्रेरी, त्रिवेंद्रम पब्लिक लाइब्रेरी, डेविड ससून पब्लिक लाइब्रेरी, बम्बई, खुदा बख्श लाइब्रेरी, पटना इत्यादि के भवनों का भी अपना ऐतिहासिक एवम् पुरातात्विक महत्व है। इनमें से अधिकांश में हस्तलिखित पांडुलिपियां, सिक्के एवम् अन्य ऐतिहासिक महत्व की सामग्रियां संकलित है।

बिहार के प्रमुख पुस्तकालय :

खुदाबख्श ओरियंटल पब्लिक लाइब्रेरी, पटना : इसकी स्थापना 1891 ईस्वी में हुई थी। यहां लगभग 21000 पांडुलिपि और 2 लाख मुद्रित पुस्तकें। यहां अरबी, फारसी, तुर्की भाषा की पांडुलिपि के अतरिक्त ताड़पत्र एवम् कुछ सिक्के भी संगृहीत है। यहां साउंड एवम् रिकार्डिंग सिस्टम भी उपलब्ध है।[5]

सिन्हा लाइब्रेरी : इसकी स्थापना 1924 ईस्वी में हुई थी । यहां लगभग एक लाख अस्सी हजार पुस्तके संगृहीत है, साथ ही 1901 से पुराने कुछ अति महत्वपूर्ण समाचार पत्र एवम् भारतीय संविधान की एक मूल प्रति भी संरक्षित एवम् संगृहीत की गई है।[6]

अनुग्रह नारायण सिन्हा शोध संस्थान पुस्तकालय : इसकी स्थापना 1959 ईस्वी में हुआ था। वर्तमान में यहां लगभग तैंतीस हजार पुस्तके एवम् उतनी पत्रिकाएं एवम जर्नल संगृहीत है। यहां माईक्रोफिल्म एवम् सीडी भी उपलब्ध है।[7]

पटना विश्वविद्यालय केंद्रीय पुस्तकालय : इसकी स्थापना 1919 ईस्वी में हुई थी। वर्तमान में यहां चार लाख से अधिक पुस्तकें, पचास हजार से अधिक जर्नल और पांच हजार से अधिक पांडुलिपि उपलब्ध है। इस पुस्तकालय का डिजिटलीकरण की प्रक्रिया जारी है।[8]

काशी प्रसाद जायसवाल शोध संस्थान पुस्तकालय,पटना : इस संस्थान की स्थापना बिहार सरकार ने अक्टूबर 1950 ईस्वी में की थी ।जिसका मूल उद्देश्य भारतीय इतिहास, पुरातत्व एवम् इंडोलॉजी पर शोध को प्रोत्साहन देना। इसी संस्थान के अन्तर्गत एक पुस्तकालय है जिसमें हिन्दी, संस्कृत और फारसी की 1185 पांडुलिपि तथा इतिहास एवम् इंडोलॉजी से सम्बन्धित लगभग 15000 से अधिक पुस्तकें और जर्नल उपलब्ध है। जिसका लाभ कोई भी शोध संस्थान के कार्य अवधि के दौरान ले सकता है।[9]

वर्तमान में मूर्त पुस्तकालयों एवम् संग्रहालयों में उपलब्ध और अनुपलब्ध सभी अध्ययन सामग्रियों को डिजिटल अर्थात ऑनलाइन उपलब्ध करवाने की सफल कोशिश जारी है। विश्व में ऐसी पहली कोशिश प्रोजेक्ट गुटेनबर्ग के तहत की गई थी।[10] भारत में जून 2018 में शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के निर्देशानुसार और आईआईटी खड़गपुर की देखरेख में नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इंडिया (एनडीएलआई) की स्थापना की गई है। यह पुस्तकों का एक डिजिटल भंडार है जिसमें पाठ्यपुस्तकें, लेख, वीडियो , आडियो पुस्तकें, व्याख्यान एवम् अन्य सभी प्रकार के शिक्षण मीडिया शामिल है। एनडीएलआई भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी में कई पुस्तकों तक नि:शुल्क पहुंच प्रदान करता है। अभी तक इस प्लेटफार्म पर 4 करोड़ 60 लाख से अधिक पुस्तकें नि:शुल्क उपलब्ध हो चुकी है।[11] ऐसा ही एक डिजिटल प्लेटफार्म 'शोधगंगा' है जिस पर भारत के विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों में जमा की गई थीसिस, डिजरटेशन इत्यादि को नि:शुल्क उपलब्ध करवाया जा रहा है जिससे कोई भी शोधार्थी लाभ प्राप्त कर सकता है। अभी इस ऑनलाइन प्लेटफार्म पर लगभग पांच लाख चौबीस हजार से अधिक थीसिस उपलब्ध है।[12]

पुस्तकों एवम् अन्य अध्ययन सामग्रियों के डिजिटलीकरण से पुस्तकों के रख-रखाव और प्रबन्धन में सकारात्मक प्रभाव पड़ता दिख रहा है। डिजिटलीकरण ने अति महत्वपूर्ण एवम् दुर्लभ ग्रंथों, पांडुलिपि को संरक्षित करने और दूसरों को अध्ययन करने के लिए उपलब्ध करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इंटरनेट की उपलब्धता पर कोई भी, कही से भी, कभी भी डिजिटल पुस्तकालय से पुस्तकों, जर्नल एवम् अन्य अध्ययन सामग्री को प्राप्त कर सकता है अर्थात सभी प्रकार की अध्ययन सामग्रियां सर्वत्र सभी के लिए उपलब्ध है। जिससे सभी लोग अपने अतीत और अपनों की उपलब्धियों से परिचित हो सकते है क्योंकि कोई भी पुस्तकालय पुस्तक, जर्नल, आडियो, वीडियो रूप में ज्ञान को संगृहीत और संरक्षित करता है फिर अन्य को उपलब्ध करवाता है।

सन्दर्भ सूची:

1. https://trekkerpedia.com/travel/india/ancient-nalanda-university-bihar-history-ruins-imags (accessed 26.03.2024)
2. http://indianculture.gov.in (accessed 23.03.2024)
3. https://www.wipo.int (accessed 23.03.2024)
4. https://egyankosh.ac.in (accessed 23.03.2024)
5. https://kblibrary.bih.nic.in (accessed 08.03.2024)
6. सिंह,अरुण. पटना खोया हुआ शहर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021
7. https://ansiss.res.in (accessed 08.03.2024)
8. www.hindustantimes.com report July 28, 2019
9. https://kpjri.res.in/library (accessed 26.03.2024)
10. https://www-guinnessworldrecords-com.translate.goog/world-records/96729-first-digital-library?_x_tr_sl=en (accessed 29.03.2024)
11. https://ndl.iitkgp.ac.in (accessed 08.03.2024)
12. https://shodhganga.inflibnet.ac.in (accessed 29.03.2024)

हिन्दी संत कवि और उनका दार्शनिक विचारधारा

संजय मिंज*

प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य में एक विशेष अर्थ में 'सन्त' शब्द का प्रयोग किया गया है। हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा में अन्तर्भुत्त साधक कवियों के लिए 'सन्त' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा है। यह विचारणीय है कि सन्त शब्द का प्रयोग केवल निर्गुण विचारधारा के साधकों के लिए किया जाना कहाँ तक समीचीन है। संत कव्यधारा के अनेक दार्शनिक–सांस्कृतिक आधार हैं, जिसमें नाथपंथ, शंकराचार्य का अद्वैतदर्शन, सूफीदर्शन, उपनिषद् तथा इस्लाम धर्म मुख्य उल्लेखनीय हैं। उपनिषदों का सन्तों के जीवन दर्शन, काव्यधारा और चिन्तन पर व्यापक प्रभाव है। काव्य रचना सन्त कवियों का लक्ष्य नहीं था, उनकी रचनाओं में जन–जन के हित और उनके उद्‌बोधन की भावना सन्निहित है। सन्तों की भाषा भी स्थीर नहीं है। संत काव्यधारा के प्रमुख कवियों की भाषा में प्रायः जो परिमार्जन, सौष्ठव, परिनिष्ठता और प्रवाह विद्यमान है, वह निर्गुण काव्यधारा में दुर्लभ है। जिस संत परंपरा का प्रवर्तन कबीर नें किया था, शतशः कवि आविर्भूत हुए। लेकिन न उनका काव्य साहित्य क्षेत्र में उल्लेख है, न वे सच्चे अर्थों में कवि कहे जा सकते हैं। संतों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है– एक तो शुध्द दार्शनिक दृष्टि से और दूसरा संत कवियों द्वारा गृहित साधनाप्रनाली की दृष्टि से। दार्शनिक विचारधाराओं की पृष्टभूमि में निर्गुण काव्य को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– कबीर, मलूकदास, पूर्णतया अद्वैतवादी और दादू हैं, जबकी नानक भेदाभेदवादी हैं। निर्गुण संतों की विचारधारा में आदिकाल में नामदेव ने भी इस दिशा में योगदान दिया था, और इसका बीज नाथ और सिद्ध कवियों की रचनाओं में भी मिलता है। संत काव्य देश की राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के फलस्वरूप विरचित भावनात्मक एंव अनुभूतिप्रवण जनकाव्य है। इसका प्रेरणास्त्रोत था–सामान्य मानव का हितसाधन। फलस्वरूप समाज में लिप्त न होकर भी संत कवियों ने समाज कल्याण का मार्ग अपनाया और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में शोषित और प्रताड़ित मानव की समस्त प्रवृतियों, परिस्थितियों तथा भावनाओं का गंभीर विचारयुक्त यथातथ्य चित्रण किया। संत काव्य की भाषा जनसामान्य की भाषा है। संतों के रूपक जीवन की सामान्य प्रवृतियों एंव घटनाओं पर आधारित है। संतों का व्यक्तित्व सच्चे अर्थों में संवेदनशील था। उनका मानस स्वच्छ अैर उदार था। इसलिए उनका साहित्य जनभावनाओं की सहज पवृतियों, विकृतियों, विडंबनाओं और परिस्थितियों का वृहद शब्दचित्र है। निर्गुण संत काव्य आचरण की पवित्रता का संदेश लेकर जनता के समक्ष आया। संत काव्य में सामाजिक असंगतियों, धार्मिक विडंबनाओं, बहुदेवोपासना, मूर्तिभंजन आदि समस्याओं की अभिव्यक्ति और उनका निदान मिलता है। संत कवियों ने जीवनदायिनी शक्तियों की ओर जनसामान्य का ध्यान आकर्षित किया और समाज को सशक्त, निर्दोष एंव कल्याणकारी मार्ग पर अग्रसर करने की चेष्टा की। जनमानस के संताप को दूर करने वाली संतों की पीयूषवर्षी वाणी का मध्यकालीन समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा। कबीरदास और नानक ही नहीं उनके अनुयायियों ने भी अपने–अपने समय की जनता को प्रभावित किया। संतों के व्यक्तित्व का प्रभाव हिंदुओं तथा मुसलमानों पर समान रूप से पड़ा और उन्होंने अपनी 'बानियों' से आने वाली पीढ़ियों को अजस्त्र प्रेरणा प्रदान की। संत काव्य आत्मविश्वास, आशावाद और आस्था की भावना संस्थापित करने में सहायक साहित्य है।

संत कवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा

संत नामदेव –: नामदेव जी का जन्म 26 अक्टूबर 1270 ई. रविवार में प्रथम संवत्सर, संवत 1327, कार्तिक शुक्ल एकादशी को पंढरपुर में हुआ था। नामदेव जी का पैतृक गाँव नरसी ब्राहमणी नामक ग्राम से मूल निवासी शेठ ''शिम्पी'' (मराठी में) के यहाँ हुआ था। नामदेव की माता का नाम गोपाई और पिता का नाम दामाशेट था। इनकी जाति दर्जी थी, जिसको मराठी में शिम्पी कहते हैं। संत नामदेव जी का विवाह अल्पावस्था में ही गोविंद शेट की पुत्री राजाबाई के साथ हुआ था। इनके चार पुत्र और एक पुत्री थी। इनकी ज्ञानेश्वर जी से भेंट हुई और उनकी प्रेरणा से इन्होंने नाथपंथी विसोबा खेचर से दीक्षा ली। जो नामदेव पंढरपुर के ''विट्‌ठल'' की प्रतिमा में ही भगवान को देखते थे, वे खेचर के संपर्क में आने के बाद उसे सर्वत्र अनुभव करने लगे। उनकी प्रेमाभक्ति में ज्ञान का

* शोध छात्र, सन्त गहिरा गुरु विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर सरगुजा (छ.ग.), मो. न. 9584406934
Email id- sanjaym2505@gmail.com

समावेश हो गया। गुरुदासपुर जिले के घुमान नामक स्थान पर आज भी नामदेव जी का मंदिर विद्यमान है। वहाँ सीमित क्षेत्र में इनका ''पंथ'' भी चल रहा है। कबीर से पूर्व नामदेव ने उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति का प्रचार किया, जो निर्विवाद है। इनका निर्वाण सन् 1350 ई. है।

दार्शनिक विचारधारा

ब्रह्मा – संत नामदेव के अनुसार ब्रह्मा एक है, सर्वव्यापक और पूर्ण है, वही गोविंद है और उसके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की सत्ता नहीं है। समस्त संसार में ब्रह्मा ही समाया हुआ है। जैसे सूत के एक धागे में सहस्त्रों मणियाँ गूंथी जाती है वैसे ही परमात्मा संसार की प्रत्येक वस्तु में समाया हुआ है। संत नामदेव ब्रह्मा को निराकार मानते हैं। उसका न रूप है, रेखा और न ही वर्ण, वह ऐसा परमतत्व है। वही निर्गुण है, निरेजन है, वही अमर फलदाता है।

जीव – नामदेव मानते हैं कि ब्रह्मा ही जीव में व्याप्त है। जीव एक ही मिट्टी के विविध पात्र हैं। जीव ब्रह्मा की गति को नहीं जानता है। अतः वह उसके लिए अवर्णनीए है। जीव की अपनी कोई भिन्न सत्ता नहीं है वही एक होकर अनेक हो गया है।

जगत – संत नामदेव के अनुसार जगत् एक हाट है जहाँ मनुष्य वस्तुओं का क्रय–विक्रय करते हैं। मूर्ख मानव अपना मूलध नही गंवा देता है। समस्त संसार माया और मोह में भूला–भटका है। हरिनाम सत्य है बाकी समस्त संसार असत्य है।

माया – नामदेव जी ने माया को प्रबल शक्तिशाली माना है, इसी ने अनेक पुरूषों को भ्रम में डाला है। माया के कारण ब्रह्मा दिखाई नहीं देता है परन्तु ब्रह्मा के सामने माया भी अदृश्य हो जाती है। इसी माया के मोह में समस्त संसार भटकता है।

साधना–पक्ष – संत नामदेव की साधना में नाम–स्मरण, गुरु, योग और सत्संगति को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। हरि के नाम स्मरण से सारी पीड़ाएँ समाप्त हो जाती है, यही कालचक्र से मनुष्य को मुक्त कराता है, यही जीवन का सार है, यही संसार–सागर से पार होने का एकमात्र साधन है।

गुरु – जीव का ध्यान परमतत्व की ओर आकृष्ट करने वाला गुरु है। गुरु ही जीव का जन्म सफल बनाता है, सांसारिक दुःखों, क्लेशों और पीड़ाओं से मानव को मुक्त कराकर उसे ब्रह्मानन्द की प्राप्ति कराता है। गुरु ही जीव को यौगिक कियाओं में पारंगत कराता है।

साधुसंगति – परमतत्व की ओर मन अकृष्ट करने के लिए साधुसंगति का महत्वपूर्ण स्थान है। ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने के लिए साधुसंगति आवश्यक है, इससे मूर्ख जन वंचित हैं। वे काम कोध और तृष्णा में ही अपना जन्म व्यर्थ व्यतीत करते हैं। वास्तव में वह क्षण धन्य है जब जीव साधुसंगति में रत ईश्वर की भक्ति करता है।

योग – संत नामदेव के पदों में कहीं–कहीं योगपरक शब्दावली मिलती है। नामदेव के अनुसार मूर्ख लोग भ्रम में भटकते हैं, वे न अनहदनाद सुनते हैं न अन्तरगति से ही परिचित हैं। जब तक मनुष्य आशा निराशा के संघर्ष में पड़ा है तब तक ब्रह्मा की प्राप्ति असंभव है।

बाहयाडम्बरों का विरोध – संत नामदेव ने साधना के बाहयाडम्बरों का विरोध किया है। एक पत्थर के प्रति श्रध्दा भाव प्रकट किया जाता है और दूसरे के उपर पांव रखते हैं, दोनों में कोई अन्तर नहीं होता है। हिन्दु देवालयों और मुसलमान मस्जिदों में साधना करते हैं। संत नामदेव को इन दोनों में विश्वास नहीं होता है अतः वे ऐसी साधना करते हैं, जहाँ न देवालय है और न ही मस्जिद ही।

संत कबीरदास –: कबीरदास का जन्म, जाति, जन्मस्थान, माता–पिता एंव जीवन की घटनाएँ विवाद का कारण है क्योंकि स्वंय कबीरदास अपने विषय में मौन रहे हैं। भारतीय धर्म साधना के इतिहास में कबीर ऐसे महान विचार एंव प्रतिभाशाली महाकवि हैं इनका जन्म 1398 ई. (अंतस्साक्ष्य और कबीरचरित्रबोध के प्रमाण से) और अवसान–काल 1518 ई. (भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास के अनुसार एंव कबीरपरिचई) मगहर में। कबीर का जन्म उच्च कुल की विधवा के गर्भ से हुआ था। जिसने लोकापवाद के भय से इन्हें लहरतारा नामक तालाब के किनारे डाल दिया। इनका पालन–पोषण नीरू नामक जुलाहा और पत्नी नीमा ने किया। कबीर की रचनाओं का संकलन संत धर्मदास ने 'बीजक' में किया। बाबू श्यामसुन्दर दास ने कबीर की रचनाओं का संकलन 'कबीर ग्रंथावली' में किया।

दार्शनिक विचारधारा

कबीर का ब्रह्मा – कबीर दास उस निर्गुण ब्रह्मा का मानते हैं जिसका वर्णन ऋग्वेद के नासदीय सूवत में ही मिलता है। जिस मूल सत्ता से सब कुछ उत्पन्न हुआ है, जो सर्वव्याप्त है, वह न सत्य है न असत्य। ब्रह्मा का उल्लेख उपनिषदों में भी मिलता है। इस सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति, गति, पालन और लय का

कारण ब्रह्मा है। कबीर का ब्रह्मा निर्गुण ब्रह्मा है, जो सत, रज, तम तीनों गुणों से परे है। वह गुणातीत, गुनबिहून और निराकार है। वह अलख निरंजन है जिसे कोई नहीं देख सकता। वह न शुन्य है न स्थूल। न कोई उसकी रूपरेखा है न वह दृश्य है न अदृश्य। कबीर ने प्रायः ब्रह्मा को उन्हीं नामों से पुकारा है जो उस समय हिन्दु, मुसलमान, बौध्द और नाथपंथ में प्रचलित थे।

जीवात्मा – उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्मा के सम्बन्ध का उल्लेख मिलता है। आत्मा और ब्रह्मा एक हैं, आत्मा ही ब्रह्मा है। यह जीवात्मा वास्तव में न तो स्त्री है न पुरूष और न ही नपूंसक। शरीर धारण करने से यह भिन्न–भिन्न रूप में आती है। गीता में भी आत्मा को शुध्द–बुध्द एंव मुक्त कहा गया है। कबीरदास ने भी आत्माविचार को जीवन का चरम लक्ष्य माना है।

माया – ऋग्वेद में माया शब्द रूप बदलने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कबीरदास ने अविद्या माया का ही वर्णन किया है। वे उसे रघुनाथ की माया कह कर ब्रह्माश्रित मानते हैं, वह जादूगर का खेल है। माया को कबीरदास डाकिनी और पापिनी मानते हैं। कबीर दास को माया के दोनों मोहक और भयंकर स्वरूप मान्य हैं। कबीरदास के अनुसार माया का सम्बन्ध कनक और कामिनी से है, इससे बचना कठिन

संसार – संसार भी परमतत्व की सीमा से बाह्य नहीं है। कबीरदास संसार को असत्य, स्वप्नवत्, नश्वर और मिथ्या मानते हैं। संसार को सेमल के फूल की उपमा देते हुए उसे अति मलिन बताते हैं। कबीरदास कहते हैं संसार से प्रेम नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह मिथ्या है, संसार उत्पन्न होता है और नष्ट होता है।

मोक्ष – मनुष्य धर्म के चार लक्ष्य बताये गये हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसमें मोक्ष को सर्वोत्तम और चरमलक्ष्य माना जाता है। कबीर ने कहा है कि जीवनमुक्त पुरूष पर सांसारिक प्रभाव नहीं पड़ते हैं। संत पुरूष निष्काम, निर्विषय तथा निस्संग रहतें हैं। मुक्त पुरुष अपने मनोविकारों को वश में करता है। कबीरदास ने जीवनमृतक को अंत में जीवन मुक्त की ओर संकेत किया है। विदेह–मुक्ति के प्रसंग भी कबीर काव्य में प्राप्त है।

साधना पक्ष – कबीर की साधना समन्वय साधना है जिसमें ज्ञान, योग, भक्ति और प्रेम का मिश्रण है। वे एक ऐसे मिलन बिन्दु पर खड़े थे, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है दूसरी ओर अशिक्षा, जहाँ पर एक ओर योगमार्ग निकल जाता है दूसरी ओर भक्ति मार्ग, जहाँ एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है दूसरी ओर सगुण साधना।

प्रेम पध्दति – कबीरदास ने अपनी साधना को प्रेम से भी प्लावित किया है। इनके प्रेम एक ओर नारद की प्रेम भइित लक्षित होती है तो दूसरी ओर से सूफियों का इश्क। कबीरदास ने प्रेम की मादकता का भी वर्णन किया है। प्रेम ही ईश्वर से साक्षात्कार का साधन है। प्रेम में त्याग आवश्यक है। प्रेम एक रसायन है इसका एक ही बिन्दु सम्पूर्ण शरीर को स्वर्ण बनाता है।

बाह्याडम्बर का विरोध – कबीरदास धर्म के किसी भी बाह्याडम्बर को नहीं मानते हैं। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों के पाखण्ड पर खूब फटकारा है। समस्त संसार बुध्दिहीन हो गया, हिन्दु अपना देवता राम को मानते हैं और मुसलमान रहीम को। इस पर दोनों में वाद–विवाद होता है परन्तु सत्यतत्व के सहस्य को कोई नहीं पहचानता है। कबीरदास के अनुसार ब्रह्मा सदैव आत्मा में वास करता है। बलि देकर उसकी प्राप्ति संभव नहीं, न वह मंदिर या मस्जिद में ही है। वह आत्मा में ही व्याप्त है।

नामस्मरण – साधु–संगति के साथ–साथ कबीरदास नाम स्मरण को भी महत्व देते हैं, उनके अनुसार राम नाम ही महत्वपूर्ण है। राम नाम के बिना मानव शरीर इस संसार में निष्फल है। कबीरदास कहते हैं कि जो मनुष्य केवल दुःख में ईश्वर का स्मरण करते हैं उनकी प्रार्थना कोई नहीं सुनता है। मन की चंचलता को वश में करने के पश्चात ही अन्य वस्तुएँ सम्भव है।

कबीर का रहस्यवाद – रहस्य शब्द का मूल 'रहस' है। यह शब्द 'रह त्यागे' के अनुसार 'त्याग करना' अर्थ वाली धातु 'रह' से उसके आगे 'असुन' प्रत्यय लगाकर बना कहा जा सकता है। कबीरदास के अनुसार एक भावना एक वासना ह्रदय में प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है और वह भावन सदैव जीवन के अंग प्रत्यंगों में प्रकाशित होती है।

कबीरदास के रहस्यवाद में हिन्दुओं के अद्वैतवाद और मुसलमानों के सूफी सिद्धान्तों का मिश्रण है। इन्होंने आत्मा और परमात्मा को एक ही माना है। कबीर मानव धर्म के पुजारी थे और सर्वत्र ईश्वर की प्रतिष्ठा मानते थे। उसी में सृष्टि व्याप्त है और वही सृष्टि में व्याप्त है। कबीरदास के रहस्यवाद में प्रेमतत्व की भी प्रधानता है, इसकी प्रेरणा उन्हें सूफियों से मिली है।

गुरु नानक – सिख धर्म के प्रवर्तक, सिखों के प्रथम गुरुनानक देव जी का जन्म 1469 ढ्र. में पंजाब के ननकाना साहिब के तलवण्डी गाँव में हुआ। इनके पिता का नाम कालूचन्द और माता का नाम तृप्ता था। इनका विवाह 17 वर्ष की आयु में गुरदासपुर के मूलचन्द खत्री की बेटी सुलक्षणी से हुआ। इनके दो पुत्र थे श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द। इनके बड़े पुत्र श्रीचन्द भी विख्यात साधु हुए तथा उन्होंने उदासी सम्प्रदाय का प्रर्वतन किया। नानक देव जी ने संगत व पंगत का सिध्दांत चलाया।

दार्शनिक विचारधारा

जीवात्मा – गुरु नानक के अनुसार जीव परमात्मा के 'हुक्म' से उत्पन्न होते हैं। परमात्मा के हुक्म से सारी दृश्यमान और नामरूपात्मक वस्तुओं की उत्पत्ति होती है, उसी से मनुष्य उत्तम गति पाता है और उसी से नीच गति। परमात्मा ने ही जीव और शरीर देकर सबका निर्माण किया है।

संसार – गुरुनानक देव जी संसार को सत्य मानते हैं और ईश्वर को इनका उत्पन्न करने वाला मानते हैं। उसी ने जीव को संसार में कार्यरत किया है। जिस प्रकार जल में उत्पन्न कमल जल से निलप्त रहता है उसी प्रकार संसार रूपी जल में परमात्मा की ज्योति है और यह सर्वत्र परिपूर्ण और निर्लेप है। संसार नाशवान है, उत्पत्ति और नाश इसका क्रम है। परमात्मा ही सत्य और शाश्वत है।

माया – गुरुनानक के अनुसार निरंजन परमात्मा ने स्वंय अपने आपको उत्पन्न किया है और समस्त जगत में वही अपनी क्रीडा करता है। उसी परमात्मा ने तीनों गुणों एंव उनसे संबंध माया की रचना की है। उसी परब्रह्मा ने मोह की वृध्दि के साधन भी उत्पन्न किए हैं।

साधना–पक्ष – साधना पक्ष में गुरुनानक ने सद्गुरु की महत्व पर बल दिया है। प्राचीन ग्रंथों के अनुसार भारतीय समाज में गुरु का स्थान बहुत उच्च, गौरवपूर्ण और समृध्द रहा है, वही धर्म और समाज का नियामक रहा है, वही राजनीतिक गुत्थियों को सुलझाता रहा है, उसी गुरु को गुरुनानक ने भी उच्च स्थान दिया है।

नामस्मरण – गुरुनानक ने नामस्मरण को सर्वोधिक महत्व दिया है। इनके अनुसार माया से परे निरंजन परमात्मा के गुण गाने ओर सुनने चाहिए और भावपूर्वक अपने मन में रखने चाहिए। जो प्रभु का नाम सुनता है, उस पर चलता है और अंतःकरण से उसकी भक्ति करता है उसने सारे तीर्थों का स्नान कर लिया और सब पापों को धो डाला।

योग–साधना – गुरुनानक ने योगमार्ग के षटचक्रों, इन्द्रिय–निग्रह आदि का वर्णन किया है। उनके अनुसार षटचक्रों वाला देह मठ है और उसमें रहने वाला वैराग्यवान् मन है उसके अन्तर्गत आत्मिक ज्ञान वाला शब्द गूँज रहा है। योगी पुरूष 'निवली कर्म' करते हैं, कुण्डलिनी को प्राणायाम द्वारा जाग्रत करते हैं जिससे उसकी उध्वान्स होती है।

बह्याडम्बर का विरोध – गुरुनानक जी ने भी अन्य संतों की भाँति धर्म के बाह्याडम्बरों का विरोध किया है परन्तु उनके विरोध में कबीर की कड़वाहट नहीं है। नानक के अनुसार सत्य बोलना, श्रम की कमाई, परमात्मा से सबका भला मांगना, नीयत साफ करना, मन साफ रखना और परमात्मा का यशगान ही पाँच नमाजें हैं। योगियों के पाखण्ड को उन्होंने तिरस्कार की द्ष्टि से देखा है।

संत दादूदयाल – इनका जन्म डॉ. परशुनाथ चतुर्वेदी के अनुसार 1544 ई. में हुआ जबकि डॉ. रामकुमार वर्मा इनका जन्म 1601 ई. मानते हैं। इनकी जाति को लेकर भी विद्वानों में मतभेद है। इनके श्ष्यि रज्जब ने इन्हें धुनिया कहा है। इन्होंने दादू पंथ का प्रवर्तन किया। ये समाज सुधारक, धर्म सुधारक एंव रहस्यवादी संत कवि थे।

दार्शनिक विचारधारा

निर्गुण ब्रह्मा – संत दादू ने ब्रह्मा की निर्गुण, अमर और अपार माना है। यही निर्गुण ब्रह्मा संतों का प्राणाधार है। उस परमात्मा के अतिक्ति और कोई नहीं है, उसी के अनेक नाम हैं। वही राम है, रहीम और अल्ला है, वही कृपालु, सृष्टिकर्ता और पवित्र है। वही नित्य, सर्वव्यापक, ज्योतिस्वरूप और अव्यक्त है।

जीवात्मा – आत्मा की उत्पत्ति ब्रह्मा से होती है। जो सम्बन्ध तरूवर और उसके फल–फूल का है वही ब्रह्मा और जीव का है। यदि ईश्वर रूपी माली सींचने की ओर ध्यान नहीं देगा तो यह आत्मा रूपी बेली मुरझा जायेगी। जीव परमात्मा से वियुक्त होकर संसार में आता है, जीव का मन चंचल होता है और निशिदिन वह व्याकुल फिरता है।

जगत – भारतीय दर्शन के अनुसार जगत् मिथ्या है, नश्वर है फिर भी अज्ञान–भ्रम के कारण हमें सत्य दृष्टिगोचर होता है। दादू का जगत् के प्रति भी यही दृष्टिकोण है। अज्ञान के अंधकार के कारण हम जगत्

को सत्य मानते हैं परन्तु यह मृगतृष्णा की भाँति असत्य है। संसार सुख और दुःख की परिधि से बंधा हुआ है। इस संसार का मर्म कोई नहीं जान सकता है।

माया – संत दादू ने माया का विरोध किया है। माया का सुख अल्प समय का होता है परन्तु इसी पर सारा संसार गर्व करता है जब परमतत्व का साक्षात्कार होता है, तो माया का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता हैं। माया सर्पिणी है जो जीव के आगे–पीछे घूम रही है और जीव को नष्ट करने पर तुली हुई है।

साधना–पक्ष – गुरु ही साधक का साध्य से साक्षात्कार करा देता है। दादू के अनुसार भी गुरु ही अगम, अगाध की प्राप्ति करा सकता है। अतः गुरु के बताये हुए मार्ग पर चलकर गुरु द्वारा उपदिष्ट आत्मज्ञान से अपना आत्मज्ञान बढ़ाना चाहिए। सतगुरु के उपदेश से ईश्वर की प्राप्ति स्वंय ही होती है।

बाह्याडम्बरों का विरोध – दादूदयाल ने साधना के बह्याडम्बरों का अत्यधिक विरोध किया है। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को फटकारा है। ये नहीं जानते कि दोनों का ईश्वर एक है। ज्ञान, ध्यान, जप, तप, योग आदि सब को छोड़कर परमात्मा के विरह में अपने को अनुभव करना चाहिए।

नामस्मरण – अन्य संतों की भाँति दादूदयाल ने भी नामस्मरण को महत्व दिया है। रामनाम–स्मरण से सभी शारीरिक मैल छूट जाता है, रामनाम ही समस्त सम्पत्ति का सारतत्व है, रामनाम से ही संसार–सागर को पार किया जा सकता है। इसी कारण संत दादूदयाल रामनाम की बलि जाते हैं।

आध्यात्मिक प्रेम और साधु–संगति – ब्रह्मा के साक्षात्कार के लिए संत दादूदयाल ने आध्यत्मिक प्रेम और साधुसंगति को महत्व दिया है। उस ब्रह्मा का प्रेम रस अत्यधिक मीठा होता है। जो सदैव उस प्रेमरस को पीता है वह अविनाशी हो जाता है। दादूदयाल के अनुसार साधु की संगति करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है और शरीर प्रेम से अनुरक्त होता है।

सन्त रज्जब जी – रज्जब जी की जन्म कुल एंव जन्म स्थान के बिषय में प्रमाणिक स्त्रोतों का अभाव है। मिश्रबन्धुओं ने रज्जक जी का चलाउ उल्लेख किया है। डॉ. रामकुमार वर्मा और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भी रज्जक जी के जीवन सम्बन्धी तथ्यों के विषय में मौन हैं। हिन्दी के निर्गुण संतों में नामदेव, कबीर, नानक आदि को छोड़कर अन्य सन्तों पर अल्प सामग्री ही उपलब्ध होती है। इसका कारण यह नहीं कि उन संतों का काव्य महत्वपूर्ण नहीं है अपितु उनकी ओर ध्यान कम गया है। संत रज्जबदास भी इसी श्रेणी में आते हैं। स्व. पुरोहित हरिनारायण शर्मा के अनुसार रज्जब जी का जन्म 1567 ई. तथा शरीरावसान 1689 ई. है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी भी इसी मत को मानते हैं।

दार्शनिक विचारधारा

ब्रह्मा – रज्जबदास जी का ब्रह्मा निर्गुण है, वह सर्वगुणातीत, घट के भीतर निवास करने वाला, परस पवित्र परमगति वाला पूर्ण ब्रह्मा हैं। वह निर्मल निरंजन नेत्रों में समाया है। निर्गुण ब्रह्मा आवागमन के चक्र से मुक्त है, सगुण ब्रह्मा कर्म करने के लिए संसार में आता है। रज्जबदास जी ने ब्रह्मा को राम कहकर पुकारा है।

जीवात्मा – रज्जबदास मानते हैं कि ब्रह्मा और जीवात्मा में घनिष्ठ सम्बन्ध है, जैसे बीज में वृक्ष समाया रहता है, या कुएं और पात्र के जल में भिन्नता नहीं होती है, जैसे बूंद में घटा समाई रहती है वैसे ही ब्रह्मा में जीव समाये रहते हैं। जब तक जीव संसार–जाल से मुक्त नहीं होता तब तक उसे विषय–वासनाओं में ही सच्चा आनन्द प्राप्त होता है।

माया – रज्जब जी ने माया की सत्ता स्वीकार की है, यही मन को वश में करती है। यही माया जीव को ब्रह्मा से भिन्न कर देती है। गुण और इन्द्रियां माया के ही दान्त हैं। इस माया ने ब्रह्मा और शिव को भी मोह लिया है। इसी ने समस्त संसार को पागल बना दिया है।

साधना पक्ष – भारतीय वैष्णव परम्परा के अनुसार रज्जबदास ने अपनी बाणी से आरंभ में ही गुरु की वन्दना की है। रज्जबदास जी के गुरु दादूदयाल थे जिनेको उन्होंने कई पदों में श्रध्दा समर्पित की है। गुरु के गुणों का न आर है न पार, अल्प बुध्दि से उन गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

नामस्मरण – अन्य संतों की भाँति रज्जबदास जी ने नामस्मरण को अत्यधिक महत्व दिया है। निरंजन का नमास्कार करना चाहिए, उसी से परम पुरूष का साक्षात्कार होता है। नामस्मरण के आगे ब्रह्मा और साधक दोनों दास हैं। रामनाम की महिमा का वर्णन करना असंभव है इससे आत्मतत्व और ब्रह्मतत्व का समन्वय होता है।

प्रेमतत्व – ईश्वरोपासना में रज्जबदास जी प्रेमतत्व को प्रमुख मानते हैं। इस प्रेम में द्वैतभाव मिट जाता है और साधक–स्वामी एक हो जाते हैं। निर्मल प्रेम भक्ति रस का पान करने से शारीरिक अस्तित्व मिट जाता है।

बाह्याडम्बरों का विरोध – संत रज्जबदास जी ने अन्य सन्तों की तरह साधना के बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। उन्होंने व्रत और रोजे का विरोध करके उन्हें व्यर्थ सिध्द किया है।

सन्त सुन्दरदास – इनका जन्म जयपुर की प्राचीन राजधानी धोंसा में 1596 ई. में परमानन्द खण्डेवाल के यहाँ हुआ था। इनकी माता का नाम सती था। संत सुन्दरदास दादूदयाल के शिष्य थे। ये बहुत ही प्रतिभाशाली संतकवि और साधक थे। 6 वर्ष की आयु में ये दादूदयाल के शिष्य बन गये थे। 11 वर्ष अवस्था में काशी जाकर साहित्य व दर्शन का गभ्भीर अध्ययन किया तथा दीर्धकाल तक योग साधना की।

दार्शनिक विचारधारा

ब्रह्मा – सुन्दरदास के अनुसार ब्रह्मा निर्गुण है उसका न रूप है न रेखा, वह अलक्ष है, अखण्ड है और निरंजन है। वही शेष, गणेश, विष्णु और अन्य देवताओं का स्वामी है। ब्रह्मा और जीव में कोई भेद नहीं है जिस प्रकार एक ही शरीर के अनेक अंग होते हैं, एक ही पृथ्वी पर अनेक स्थान होते हैं, उसी प्रकार जीवन और ब्रह्मा एक हैं अखण्ड हैं।

जीव – जीव नश्वर है। जन्म लेने के समय से ही उसकी आयु घटने लगती है। क्रीडा में उसकी वाल्यावस्था और यौवनावस्था व्यतीत हो जाती है उसके पश्चात् वह वृध्द हो जाता है।

जगत् – सुन्दरदास ब्रह्मा और जगत को भिन्न नहीं मानते हैं परन्तु मनुष्य इस ज्ञान से वंचित है। जैसे स्वर्ण और अभूषण में कोई भेद नहीं है, उसी प्रकार ब्रह्मा ही जगत् है और जगत् ही ब्रह्मा है।

माया – संसार मे जीव माया के वश में होता है। माया बहुत चतुर है इसने जीव को उलझा कर रखा है। माया का मुख्य रूप कामिनी है जिसके हाथ मनुष्य बिक जाता है। कामिनी का शरीर सघन वन है जहाँ सभी भटक जाते हैं। जीव को माया और मोह में नहीं पड़ना चाहिए, स्वजनों को देखकर प्रसन्न नहीं होना चाहिए क्योंकि इनके साथ रहने से कोई लाभ नहीं है।

साधना पक्ष – गुरु सुन्दरदास ने साधना पक्ष में गुरु ज्ञान, प्रेम और योग को महत्व देकर बाह्याडम्बरों का खण्डन किया है। ब्रह्मसाक्षात्कार के लिए गुरु आवश्यक है। गुरु ही काल के जाल से मुक्त कराता है।

प्रेमतत्व – अन्य संत कवियों की तरह सुन्दरदास भी साधक को नारी और ब्रह्मा को प्रियतम मानते हैं। साधक रूपी नारी को पतिव्रता होना चाहिए। इनके अनुसार जाति–पांति, कुल और गोत्र की भिन्नता नहीं होती, न इसका कोई नियम ही होता है।

योग – सुन्दरदास ने अपने काव्य मे योग का भी वर्णन किया है। योग के प्रथम अंग यम और नियम है, इसके पश्चात् आसन आते हैं फिर प्राणायाम और प्रत्याहार, षट्चक्र ध्यान और समाधि की व्यवस्था आती है। सुन्दरदास ने षट्चक्रों का भी वर्णन किया है।

बाह्याडम्बरों को विरोध – प्रायः सभी संतों ने साधना के बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। तीर्थयात्रा, जप, तप आदि सब व्यर्थ है। ब्रह्मा जीव के ह्रदय में ही व्याप्त है। परन्तु जीव उसका अन्वेषण करने प्रयाग, बनारस, पुरी, मथुरा आदि स्थानों पर जाता है। कठीन तपस्या करके शरीर को दुःख और वैराग्य लेना भी व्यर्थ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चतुर्वेदी, परशुराम– ''उत्तरी भारत की संत परम्परा''/ पृ. 505
2. शर्मा, पुरोहित हरिनारायण– ''सुन्दरग्रंथवली'' /पृ. 13
3. वर्मा, डॉ. व्रजलाल– ''संत कवि रज्जब–सम्प्रदाय और साहित्य'' /पृ. 01
4. वर्मा, डॉ. व्रजलाल– ''संत कवि रज्जब–सम्प्रदाय और साहित्य'' /पृ. 10
5. वर्मा, डॉ. व्रजलाल– ''संत कवि रज्जब–सम्प्रदाय और साहित्य'' /पृ. 07
6. वर्मा, डॉ. रामकुमार– '' हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास'' /पृ. 274
7. बड़थ्वाल, डॉ. पीताम्बरदत्त– ''हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय'' /पृ. 170
8. बड़थ्वाल, डॉ. पीताम्बरदत्त– ''हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय'' /पृ. 185
9. चतुर्वेदी, परशुराम– ''उत्तरी भारत की संत परम्परा''/ पृ. 485
10. मिश्र, शिवकुमार– ''भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य''/ पृ. 85
11. मिश्र, शिवकुमार– ''भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य''/ पृ. 87
12. शुक्ल,आचार्य रामचन्द्र–''हिन्दी साहित्य का इतिहास''/पृ. 66

संचार की बढ़ती उपयोगिता का सामाजिक अध्ययन

डॉ. विभा कुमारी*

सारांश

स्मार्टफोन को जब सिर्फ उच्च लागत के कारण व्यावसायिक उपयोग के लिए समझा जाता था वो दौर और था, बल्कि आज हमारा समाज स्मार्टफोन के उन्मादी प्रभाव में हैं। हम गैजेट्स एवं स्मार्टफोन के युग में जी रहे हैं, संचार इतना आसान कभी नहीं रहा। सोशल मीडिया के साथ, हम हमेशा अपने दोस्तों और लाखों अन्य लोगों से जुड़े रहते हैं, चाहे हम कहीं भी हों। हमें बस एक इंटरनेट कनेक्शन वाला स्मार्टफोन चाहिए।

यह सच है कि स्मार्टफोन का समाज और जीवन के विभिन्न पहलुओं पर काफी प्रभाव पड़ा है। जिन प्रमुख क्षेत्रों में स्मार्टफोन का प्रभाव स्पष्ट है, उनमें व्यवसाय, शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक जीवन शामिल हैं। मोबाइल तकनीक ने सांस्कृतिक मानदंडों और व्यक्तिगत व्यवहारों को काफी हद तक बदल दिया है। प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलुओं से दिखाई देता है। ऐसे कई तरीके हैं जो उपयोगकर्ताओं को स्मार्टफोन स्मार्ट तरीके से उपयोग करने के बारे में शिक्षित करके समाज में स्मार्टफोन के उपयोग के नकारात्मक प्रभाव को नियंत्रित करने और कम करने में मदद कर सकते हैं। स्मार्टफोन आज केवल एक जेब के आकार का पीसी है, लेकिन लगता है कि इस डिवाइस में असीम क्षमता है!

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य इस बात की जांच करना है कि स्मार्टफोन सामाजिक संबंधों को किस प्रकार प्रभावित कर रहे हैं? तथा कैसे स्मार्टफोन सामाजिक जीवन की संस्कृति, प्रौद्योगिकी परिदृश्य और आधुनिक समाज के अन्य विविध आयोमों पर सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव डाल रहा है। तथा स्मार्टफोन के नकारात्मक प्रभावों को कम करने के लिए क्या समाधान किये जा सकते हैं।

मुख्य शब्द :– स्मार्ट फोन, मोबाईल, सोशल मीडिया, संचार, सामाजिक संबंध

परिचय :

3 अप्रैल, 1973 को सबसे पहले सेल्युलर फोन का आविष्कार किया गया था, 1973 से, सेल फोन की क्षमताओं और सुविधाओं में निरन्तर वृद्धि हुई है, और अब लगभग हर व्यक्ति के हाथों में एक आवश्यक वस्तु है। ढेर सारे स्मार्टफोन उन अनुप्रयोगों तक पहुँचने की क्षमता है जो ईमेल करने, अन्य सेल फोन पर संदेश भेजने की अनुमति देते हैं।

स्मार्टफोन एक सेलुलर टेलीफोन है जिसमें एक एकीकृत कंप्यूटर और अन्य विशेषताएं हैं जो मूल रूप से एक ऑपरेटिंग सिस्टम, वेब ब्राउजिंग और सॉफ्टवेयर अनुप्रयोगों को चलाने की क्षमता जैसे टेलीफोन से जुड़ी नहीं हैं। स्मार्टफोन का उपयोग उपभोक्ता और व्यावसायिक संदर्भ दोनों में व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है, और अब यह रोजमर्रा के आधुनिक जीवन का लगभग अभिन्न अंग है।

स्मार्टफोन की उपयोगिता सोशल मीडिया पर दोस्तों, परिवार और ब्रांड्स से जुड़ने के लिए तथा सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर और लिंक्डइन सभी मोबाइल ऐप के उपयोग से उपयोगकर्ता चलते–फिरते व्यक्तिगत अपडेट और फोटो पोस्ट करना संभव बनाते हैं। सही मायने में स्मार्टफोन पारंपरिक से परे उन्नत सुविधाओं और कार्यक्षमता वाला एक मोबाइल फोन है फोन कॉल करने और टेक्स्ट संदेश भेजने जैसी कार्यक्षमताएँ। स्मार्टफोन से लैस हैं फोटो प्रदर्शित करने, गेम खेलने, वीडियो चलाने, नेविगेशन, बिल्ट–इन कैमरा, ऑडियो/वीडियो की क्षमता प्लेबैक और रिकॉर्डिंग, ई–मेल भेजें/प्राप्त करें, सोशल वेबसाइट्स के लिए बिल्ट इन ऐप्स और वेब सर्फ करें, वायरलेस इंटरनेट और भी बहुत कुछ। इन्हीं कारणों से स्मार्टफोन अब एक आम बात हो गई है।

* पूर्व शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
Email - vibhavns2oct@gmail.com

उपयोगिता :

विगत एक दशक से भी कम समय में स्मार्टफोन की बढ़ती उपयागिता समाज में क्रांति ला दी है। दुनिया भर में 1 बिलियन से अधिक उपयोगकर्ताओं और 2.5 मिलियन ऐप के साथ – Google और Apple के डिजिटल मार्केटप्लेस पर उपलब्ध, स्मार्टफोन कुछ आश्चर्यजनक तरीकों से दिन–प्रतिदिन के जीवन को प्रभावित कर रहे हैं। पूरी दुनिया में स्मार्टफोन को अपनाना जबरदस्त रहा है। सर्वेक्षण बताते हैं कि दुनिया की 80% आबादी मोबाइल उपकरणों का उपयोग करती है और यूएस में 42% मोबाइल ग्राहक स्मार्टफोन का उपयोग करते हैं। एक वेब एनालिटिक्स फर्म कॉम्पीट के एक सर्वेक्षण के अनुसार, बड़ी संख्या में लगभग 65% लोग अपने स्मार्टफोन का उपयोग न्यूज फीड पढ़ने, स्टेटस अपडेट पोस्ट करने, संदेशों को पढ़ने और जवाब देने और फोटो पोस्ट करने के लिए कर रहे हैं। इससे पता चलता है कि अब लोग पीसी छोड़कर स्मार्टफोन की ओर बढ़ रहे हैं। विश्लेषकों के अनुसार, स्मार्टफोन और टैबलेट के उदय के कारण लंबे समय से दबदबा रखने वाली दिग्गज कंपनियों को बुरे समय का सामना करना पड़ रहा है और मोबाइल डिवाइस बाजार में बाजार हिस्सेदारी हासिल करने का दबाव लंबी साझेदारी में दरार पैदा कर रहा है। यह सच है कि अभी भी लाखों पीसी की बिक्री जारी रहेगी, लेकिन भविष्य में स्मार्टफोन और टैबलेट में और अधिक उल्लेखनीय वृद्धि देखने को मिलेगी।[1]

भारतीय सूचना और प्रसारण मंत्रालय के सचिव अपूर्वा चंद्रा ने हाल ही में एक एक रिपोर्ट में कहा कि भारत में 1.2 अरब से अधिक मोबाइल फोन उपयोगकर्ता और 600 मिलियन स्मार्टफोन उपयोगकर्ता हैं।[2] एक अन्य डेलॉइट रिपोर्ट के मुताबिक भारत में 2026 तक 1 अरब स्मार्टफोन उपयोगकर्ता होंगे भारतनेट कार्यक्रम के तहत 2025 तक सभी गांवों को फाइबराइज करने की सरकार की योजना के साथ ग्रामीण बाजार में इंटरनेट–सक्षम उपकरणों को भी बढ़ावा मिलेगा।[3] सांख्यकीय शोध विभाग (Statista Research Department) के अनुसार 2020 में भारत में स्मार्टफोन उपयोगकर्ताओं की संख्या 748 मिलियन से अधिक होने का अनुमान लगाया गया था, जबकि दुनिया भर में स्मार्टफोन उपयोगकर्ताओं की संख्या 2040 में 1.5 बिलियन से अधिक होने का अनुमान लगाया गया था।[4]

प्रयोग :

मोबाइल फोन हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा बन गए हैं और संचार के अलावा, हमारे पास कई तरह के ऐप उपलब्ध हैं जो हमारे दैनिक जीवन को बहुत आसान बना रहे हैं। केवल अपने मोबाइल उपकरणों से हम किताबें पढ़ सकते हैं, संगीत सुन सकते हैं, तस्वीरें ले सकते हैं, वीडियो देख सकते हैं, गेम खेल सकते हैं, दस्तावेज बना सकते हैं और संपादित कर सकते हैं, चिकित्सा राय प्राप्त कर सकते हैं और बहुत कुछ कर सकते हैं। इसलिए, लोग अपने फोन पर अधिक से अधिक समय बिता रहे हैं, 2019 से 2020 तक अपने उपयोग के समय को लगभग 50% बढ़ा रहे हैं।

स्मार्टफोन के लिए एक और आम उपयोग स्वास्थ्य और कल्याण ट्रैकिंग है। उदाहरण के लिए iOS के लिए स्वास्थ्य ऐप, नींद के व्यवहार, पोषण, शरीर के माप, महत्वपूर्ण संकेतों, मानसिक स्वास्थ्य व्यायाम और बहुत कुछ पर नजर रख सकता है। तथा आधुनिक स्मार्टवॉच, किसी व्यक्ति के स्वास्थ्य आँकड़ों, जैसे हृदय गति की निगरानी के लिए स्मार्टफोन से जुड़ सकते हैं, और फोन पर एकत्रित होने वाली जानकारी भेज सकते हैं।

मोबाइल भुगतान स्मार्टफोन के लिए एक और व्यापक उपयोग है। वॉलेट की विशेषताएं उपयोगकर्ताओं को खुदरा स्टोर पर आइटम खरीदते समय उपयोग करने के लिए क्रेडिट कार्ड की जानकारी को अपने फोन पर सहेजने की अनुमति देती हैं। ऐप्पल पे जैसे ऐप भी उपयोगकर्ताओं को अन्य आईओएस उपयोगकर्ताओं को सीधे अपने फोन से भुगतान करने में सक्षम बनाता है

सामाजिक दुष्प्रभाव :

स्मार्टफोन लोगों के बीच उन अनुप्रयोगों के लिए लोकप्रिय हैं जो वे उपयोगकर्ताओं को प्रदान करते हैं। स्मार्टफोन लोगों के साथ संचार को काफी आसान बना देता है। लोग अपने दैनिक कार्यों के विभिन्न रूपों में बहुत से लाभों का आनंद लेते हैं। निश्चित ही स्मार्टफोन की उपयोगिता से सकारात्मक लाभ हुए हैं बावजूद इसके इसकी बढ़ती उपयोगिता एवं दुष्प्रयोग समाज को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते है –

चिंता या अकेलापन :

स्मार्टफोन हमारे जीवन का इतना महत्वपूर्ण हिस्सा बन गए हैं क्योंकि वे हैं संचार क्षमताओं के साथ निर्मित, जो कंप्यूटर के समान ही हैं उनकी पोर्टेबिलिटी के कारण अधिक सुविधाजनक है। विभिन्न द्वारा किए गए कई अध्ययन किए गए हैं व्यक्तियों के समूह जो व्यक्ति के व्यक्तित्व और भावनाओं के बीच संबंध दिखाते हैं और सेल फोन / स्मार्टफोन का उपयोग। सामाजिक चिंता और अकेलापन दो महत्वपूर्ण होते हैं विशेषताएँ जिन्हें स्मार्टफोन के उपयोग के साथ नकारात्मक रूप से सहसंबद्ध किया जा सकता है। सामाजिक चिंता और अकेलापन दोनों कारक हैं जो सबसे खराब गुणवत्ता वाले रिश्तों या उनकी कमी को जोड़ते हैं।

ब्लूमेंथल एट अल के अनुसार सामाजिक चिंता एक गहन, व्यापक भय की विशेषता है नकारात्मक मूल्यांकन या इस तरह से कार्य करना जो संभावित रूप से शर्मनाक है दूसरों की जांच। हाल के एक अध्ययन से पता चला है कि बिग फाइव व्यक्तित्व लक्षण (बहिर्मुखता, सहमति, खुलापन, कर्तव्यनिष्ठा और विक्षिप्तता) स्मार्टफोन के माध्यम से प्रदर्शित होते हैं।[5]

एक शोध से पता चलता है कि उच्च स्तर की सामाजिक चिंता वाले व्यक्ति शाम को आउटगोइंग कॉल करने वाले थे और बमुश्किल इनकमिंग कॉल रिसीव कर रहे हैं। इससे पता चला कि लोगों ने मूल रूप से परहेज किया उनके स्मार्टफोन के उपयोग के आधार पर दूसरों के साथ टकराव। जहाँ तक अकेलापन है, व्यक्तियों किसी भी परिस्थिति में बमुश्किल कोई इनकमिंग कॉल प्राप्त हुई।[6]

सामाजिक तनाव

कहा जाता है कि सामाजिक तनाव स्मार्टफोन के अत्यधिक उपयोग से भी आता है। क्योंकि वहाँ ऐसे बहुत से लोग हैं जो बार–बार संवाद करने के लिए स्मार्टफोन का उपयोग करते हैं, कुछ निश्चित रूप से अनुकूल नहीं हैं आदतें हैं या बन सकती हैं। दुर्भावनापूर्ण आदतें अनपेक्षित व्यवहार को निरंतर अनजाने आग्रहों को शामिल करने का कारण बन सकती हैं

स्मार्टफोन को बेतरतीब ढंग से, या संभवतः गलत समय पर जांचने के लिए। स्मार्टफोन का ज्यादा इस्तेमाल करने के बाद से नशे की लत व्यवहार को जन्म दे सकता है, भावनाएं खेल में आती हैं। क्योंकि इतने सारे लोग समर्पित हैं उनके स्मार्टफोन के लिए, फोन होने पर उनके लिए चिंता या सामाजिक तनाव विकसित करना संभव है। इससे यह स्पष्ट है कि व्यक्तियों के लिए सामाजिक परिवेश में अंतःक्रिया करना कठिन होता है।

संबंधों में बढ़ती दूरी :

मोबाइल की बढ़ती उपयोगिता से लोग अपने परिवार से दूर होते जा रहे है. आजकल सभी की आदत होती है, दिन भर काम करके घर लौटकर मोबाइल हाथ में ले लेते है और परिवार वालों के साथ बैठ कर भी किसी और दुनिया में रहते है. कहते है मोबाइल बाहरी दुनिया से तो जोड़ता है, लेकिन अपने आसपास की दुनिया से दूर करता जा रहा है. लोग फॅमिली टाइम को जरुरी नहीं समझते है, लेकिन ये बहुत जरुरी है। 69 प्रतिशत माता–पिता का मानना है कि जब वे अपने स्मार्टफोन में डूबे रहते हैं तो वे अपने बच्चों, परिवेश पर ध्यान नहीं देते हैं और 74 प्रतिशत मानते हैं कि जब उनके बच्चे उनसे कुछ पूछते हैं तो वे चिढ़ जाते हैं.[7]

संस्कृति पर प्रभाव

स्मार्ट फोन ने हमारी संस्कृति को प्रभावित किया है जिससे व्यक्तिगत दक्षता और संचार में वृद्धि हुई है। भले ही, स्मार्टफोन दुनिया के साथ निरंतर संपर्क के लिए एक उपकरण बन गया है लेकिन स्मार्टफोन लोगों को अपने आसपास की दुनिया जैसे दोस्तों और परिवार से भी अलग कर देता है। जैसा कि जैकरी सुझाव देते हैं कि स्मार्टफोन के आविष्कार और बढ़ती लोकप्रियता ने हमारे समाजीकरण और सहभागिता की संस्कृति को पूरी तरह से बदल दिया है।

शैक्षणिक एवं शारीरिक प्रभाव

स्मार्टफोन शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए एक अनूठा तरीका प्रदान करते हैं। इंटरनेट का उपयोग हर छात्र के जीवन का हिस्सा बन गया है। स्मार्टफोन के साथ इंटरनेट – शिक्षा सेवाएं और दूरस्थ शिक्षा देने के लिए एक वैकल्पिक व्यवस्था प्रदान करता है। परन्तु शैक्षणिक दृष्टि से स्मार्टफोन की बढ़ती उपयोगिता शिक्षक एवं छात्रों दोनों पर आर्थिक एवं शारीरिक रूप से बुरा प्रभाव डालती है। जहां शिक्षक पर

शिक्षण को लेकर स्मार्टफोन में इंटरनेट डाटा प्रबंधन का अर्थिक दबाव वहीं छात्र एवं उनके अभिभावकों पर भी वहीं दबाव रहता है।

स्मार्ट फोन की अधिक उपयोगिता का आंखों एवं हड्डी पर सीधा प्रभाव पड़ता है। 2011 में, इंटरनेशनल एजेंसी फॉर रिसर्च ऑन कैंसर (IARC) ने मोबाइल फोन रेडिएशन को संभावित रूप से कार्सिनोजेनिक वर्गीकृत किया, जिसका अर्थ है कि कार्सिनोजेनेसिटी का कुछ जोखिम हो सकता है, इसलिए मोबाइल फोन के दीर्घकालिक, भारी उपयोग में अतिरिक्त शोध किए जाने की आवश्यकता है।[8] एक खोज जिसका उल्लेख हर जगह प्रतीत होता है, वह है 'नीली रोशनी' यह वह प्रकाश है जो हमारे फोन, टैबलेट और लैपटॉप से निकलता है और दुख की बात है कि इसका हमारे आंखों के स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अध्ययनों से पता चलता है कि इसमें 'मैक्यूलर अध पतन की ओर ले जाने की क्षमता' है, जो पुतली और कॉर्निया को सीधे रेटिना में बीम करने के लिए दरकिनार कर देता है। ऐसा माना जाता है कि नीली रोशनी केंद्रीय दृष्टि को प्रभावित करती है क्योंकि यह रेटिना में फोटोरिसेप्टर कोशिकाओं को मार देती है। आपके शरीर की कुछ अन्य कोशिकाओं के विपरीत, एक बार जब ये कोशिकाएं मर जाती हैं, तो वे पुनः उत्पन्न नहीं हो सकतीं। इसका मतलब है कि उन्हें हुई कोई भी क्षति स्थायी है।[9]

सेल फोन विकिरण के संपर्क में आने वाले प्रत्यारोपण ने गैर–उजागर प्रत्यारोपण की तुलना में अधिक भड़काऊ प्रतिक्रिया दिखाई, इस प्रकार यह संकेत मिलता है कि सेलुलर फोन का अत्यधिक उपयोग हड्डी की परिपक्वता को प्रभावित कर सकता है और इस प्रकार ऑसियोइंटीग्रेशन में देरी कर सकता है।[10]

मनोवैज्ञानिक प्रभाव

स्मार्टफोन व्यस्त कामकाजी जीवन में तनाव को कम करने के लिए कहा जाता है। मैं आज के व्यस्त कार्यक्रमों में मोबाइल फोन दोस्तों और परिवारों के साथ समय मिलने पर बातचीत करने का एक साधन प्रदान करता हूं। स्मार्टफोन का स्मार्ट उपयोग आपके मस्तिष्क की कार्यप्रणाली को बढ़ाता है जिससे आपको सक्रिय रहने में मदद मिलती है। केवल मनोरंजन के लिए स्मार्टफोन का उपयोग करने के बजाय, उनका उपयोग उपयोगी जानकारी तक पहुँचने के लिए किया जा सकता है, उदाहरण के लिए, समाचारों की सुर्खियों तक पहुँच, नवीनतम प्रौद्योगिकी अपडेट और बहुत कुछ।

सामाजिक प्रभाव स्मार्टफोन की शुरुआत के साथ सामाजिक जीवन में काफी बदलाव आया है और इस डोमेन को स्मार्टफोन के उपयोग से अधिकांश प्रभाव का सामना करना पड़ा है। स्मार्टफोन विशेष आवश्यकता वाले, वृद्धावस्था और कुछ प्रकार की अक्षमताओं वाले लोगों की एकीकरण प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

प्रकृति का अभाव

तकनीक की लत अक्सर प्रकृति के साथ एक होने के बलिदान से पूरी होती है। जब हम बच्चों को सेल फोन देते हैं तो वो तकनीक के साथ अधिक समय व्यतीत करते हैं जबकि बाहर खेलने में कम समय व्यतीत करते हैं।

संचार कौशल में कमी

हालांकि सेल फोन ने भी विभिन्न तरीकों से संवाद करने में सक्षम होने के लिए दरवाजा खोल दिया है (टेक्स्ट संदेश, सोशल मीडिया मैसेजिंग, फोटो इत्यादि), उन्होंने लाइव इंटरैक्शन को भी नुकसान पहुंचाया है क्योंकि लोग लगातार अपने फोन पर हैं या उन्हें चेक कर रहे हैं, जो इससे अलग हो जाते हैं। वर्तमान क्षण। वे असामाजिक व्यवहारों को भी सक्षम कर सकते हैं क्योंकि लोग उनके फोन में दब जाते हैं।

सहानुभूति में कमी

अधिक बार नहीं, सच्ची समझ की क्षमता और बदले में, सहानुभूति शरीर की भाषा, आवाज के स्वर और आंखों के संपर्क पर निर्भर करती है। सेल फोन के साथ, हम अक्सर संचार के इन महत्वपूर्ण पहलुओं को खो देते हैं, जैसे कि सहानुभूति को नुकसान हो सकता है।

लत :

हां, मोबाइल फोन की लत भी कोई चीज है। नोमोफोबिया सेल फोन संपर्क से बाहर होने के फोबिया का प्रस्तावित नाम है। 50% किशोर अपने फोन के आदी होने की बात स्वीकार करते हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि मोबाइल फोन के आदी लोग अक्सर अवसाद, चिंता और अन्य मानसिक विकारों से जुड़े होते हैं।

समय की बर्बादी :

औसत व्यक्ति हर 12 मिनट में एक बार अपना फोन चेक करता है, जिससे एक दिन में 80 बार ऐसा होता है। ज्यादातर समय लोग बिना किसी अच्छे कारण के सिर्फ अपने फोन की जांच करते हैं। यहां तक कि अपने फोन का उपयोग न करने पर भी, आप अक्सर लोगों को अपने फोन के साथ फिजूलखर्ची करते हुए देख सकते हैं। फ्लरी के अनुसार, औसत अमेरिकी वयस्क दिन में 5 घंटे मोबाइल फोन पर बिताता है, महीने में लगभग 150 घंटे।

अवसाद का कारण :

स्मार्टफोन विशेष रूप से किशोरों में अवसाद का कारण बन सकता है। सोशल मीडिया के प्रकोप से, किशोर अपनी व्यक्तिगत पोस्ट और खातों पर पसंद (Like) करने के लिए एवं गेम टास्क पूरा करने के जुनूनी होते जा रहे हैं, ऐसे में उन्हें लगता है कि उन्हें कोई डिस्टर्ब न करे। इसके अलावा, दैनिक जीवन की बातचीत कम होने से अकेलापन और चिंता पैदा होती है।

एमआईटी समाजशास्त्री शेरी तुर्कल ने चेतावनी दी है कि "बातचीत सबसे मानवीय और मानवीय चीज है जो हम करते हैं। यह वह जगह है जहां सहानुभूति का जन्म होता है, जहां अंतरंगता का जन्म होता है...[11]

अपराध का कारण :

स्मार्टफोन के दुष्प्रयोग से अपराधिक घटनाओं में वृद्धि हो रही है। जिसमें बलात्कार, अपहरण, चोरी, लूट, हत्या जैसी घटनायें प्रमुख हैं। इसके पीछे प्रमुख कारण घटना से जुड़ी तकनीकी का सरलता से प्राप्त ज्ञान है।

निष्कर्ष :

यद्यपि स्मार्टफोन ने हमारे जीवन को आसान बना दिया है लेकिन बढ़ती उपयोगिता समाज के लिये घातक है, स्मार्टफोन का समाज और जीवन के अन्य पहलुओं पर काफी प्रभाव पड़ता है। स्मार्टफोन ने मानव जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। जिन प्रमुख क्षेत्रों में स्मार्टफोन का प्रभाव स्पष्ट है, उनमें व्यवसाय, शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक जीवन शामिल हैं। मोबाइल तकनीक ने सांस्कृतिक मानदंडों और व्यक्तिगत व्यवहारों को काफी हद तक बदल दिया है। प्रभाव सकारात्मक पक्ष पर भी हैं और नकारात्मक पक्ष पर भी। सकारात्मक प्रभाव सभ्यता का विस्तार तो हो सकता है लेकिन नकारात्मक प्रभाव समाज की मूलभूत इकईयों को ऐसा जख्म दे रहा है जो एक दिन नासूर बन जायेगा।

सुझाव :

हम भले ही फोन के बिना न रह पाएं लेकिन हम नकारात्मक प्रभावों को कम करने के लिए कदम उठा सकते हैं। जैसे स्मार्टफोन को मात्र आभासी संचार का माध्यम मानकर उसकी उपयोगिता में कमीं लाकर, मनोरंजन के अन्य प्राकृतिक एवं भौतिक साधनों के प्रयोग से, धार्मिक एवं सांस्कृतिक माध्यमों के परम्परात्क स्वरूप को अपनाकर हम स्मार्ट फोन के दुष्प्रभाव को निश्चित ही कम कर सकते हैं।

उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति अपने फोन पर बिताए जाने वाले समय को कम कर सकता है। हर छोटे से छोटे काम के लिए अपने फोन पर निर्भर रहने के बजाय जब भी संभव हो आमने–सामने संवाद करने की कोशिश करनी चाहिए। इस तरह हम सकारात्मक पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं और नकारात्मक को कम कर सकते हैं।

संदर्भ सूची :

1. https://www.keyideasinfotech.com/blog/impact-of-smartphone-on-society/
2. https://www.livemint.com/technology/gadgets/india-has-over-1-2-bn-mobile-phone-users-i-b-ministry-11668610623295.html
3. https://www.business-standard.com/article/current-affairs/india-to-have-1-billion-smartphone-users-by-2026-deloitte-report-122022200996_1.html
4. https://www.statista.com/statistics/467163/forecast-of-smartphone-users-in-india/
5. Blumenthal, H., Leen-Feldner, E., Babson, K., Gahr, J., Trainor, C., & Frala, J. (2011). Elevated social anxiety among early maturing girls. Developmental Psychology, 47(4), 1133- 1140
6. Gao, Y., Li, A., Zhu, T., Liu, X., & Liu, X. (2016). How smartphones usage correlates with social anxiety and loneliness. US National Library of Medicine National Institutes of Health. doi: 10.7717/peerj.2197
7. https://zeenews.india.com/hindi/zee-hindustan/national/excess-use-of-mobile-affected-the-relations-between-parents-and-children/1047640
8. Frei P, Poulsen AH, Johansen C, et al. Use of mobile phones and risk of brain tumours: update of Danish cohort study. *British Medical Journal.* 2011;343:d6387. [PMC free article] [PubMed] [Google Scholar]

9. https://www.optimax.co.uk/blog/smart-phones-damage-eyes/
10. https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/30892289/s
11. https://www.uopeople.edu/blog/how-have-cell-phones-changed-us-socially/
12. https://www.uopeople.edu/blog/how-have-cell-phones-changed-us-socially/
13. https://www.google.com
14. https://www.bing .com
15. https://www.yahoo.com
16. https://www.uopeople.edu
17. https://www.optimax.co.uk

बुन्देलखण्ड के गाँव में पलायन के कारण शिक्षा से दूरी

राजश्री अहिरवार*
डॉ. ओमप्रकाश यादव**

सारांश

शिक्षा जन्म से मृत्युपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है शिक्षा के माध्यम से बालक या व्यक्ति स्वयं को ज्ञान और अनुभव का धनी बनाता है। ज्ञान, अनुभव और समायोजन द्वारा वह अपने व्यवहार को परिवर्तित कर समय उपयोगी, शुद्ध और कल्याणकारी बनाता है। अतः हम कह सकते हैं,कि शिक्षा मानव चेतना का ज्योर्तिमय सांस्कृतिक पक्ष है, जिससे व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास होता है।

बुन्देलखण्ड के गाँव में पलायन के कारण शिक्षा से दूरी

प्राचीन काल से ही ''शिक्षा'' शब्द का प्रयोग किसी न किसी अर्थ में होता चला आया है। शिक्षा माता के समान पालन–पोषण करती है, पिता के समान उचित मार्गदर्शन द्वारा अपने कार्यो में लगाती है तथा पत्नी की भांति सांसारिक चिंताओं को दूर कर प्रसन्नता प्रदान करती है। शिक्षा के द्वारा हमारी कीर्ति का प्रकाश चारो ओर फैलता है। शिक्षा हमारे जीवन को सुसंस्कृत बनाती है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश के अस्त होने पर कमल के फूल कुम्हला जाता है, ठीक उसी प्रकार शिक्षा के प्रकाश को पाकर प्रत्येक व्यक्ति कमल के फूल की तरह खिल उठता है तथा अशिक्षित रहने पर दरिद्रता, शोक एवं कष्ट के अंधकार में डूबा रहता है।

शिक्षा का अर्थ :–

प्राचीनकाल में शिक्षा का अभिप्राय आत्म ज्ञान तथा आत्म प्रकाश के साधन के रूप में लिया जाता था। समय समय पर आवश्यकता अनुसार शिक्षा का अर्थ तथा महत्व बदलता रहा है। प्राचीन यूनान में व्यक्ति को शिक्षा राजनैतिक मानसिक शारीरिक एंव नैतिक सौन्दर्य के लिए दी जाती थी। व्यापक दृष्टि से शिक्षा का अर्थ उन सभी अनुभवों से है, जो बालक विभिन्न परिस्थितियों में अर्जित करता है। इस अर्थ के अनुसार शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा शब्द का अर्थ विद्या अथवा ज्ञान की प्राप्ति है इस शब्द के व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा के ''शिक्ष्'' धातु से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ सिखाना है। चूकी मनुष्य के सीखने की प्रक्रिया जीवन भर जारी रहती है, इसलिए व्यापक अर्थो में कहा जाता है– शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है।

अंग्रेजी में ''शिक्षा'' का समानार्थी शब्द एजुकेशन (Education) है, जिसकी उत्पत्ति लैटिन भाषा के तीन शब्दों से मानी जाती है। ये शब्द है एजुकेयर (Educare) है, एजुकेटम (Educatum) है एंव एजुकेयर (Educare) का अर्थ होता है पालन–पोषण करना या उपर उठाना। एजुकेशन का अर्थ होता है अध्यापन अथवा शिक्षण की कला। एजुसेयर का अर्थ होता है To lead out अर्थात् बाहर लाना।

अरस्तु ने ठीक ही कहा है कि– मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।'' शिक्षा के अभाव में मानव जीवन की कल्पना करना असंभव है। सृष्टि से लेकर अब तक शिक्षा का प्रभाव व अस्तित्व भली प्रकार स्वीकार किया जा रहा है। जब तक संसार में मानव का अस्तित्व बना रहेगा, तब तक शिक्षा की प्रक्रिया निरंतर चलती रहेगी।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसलिए समाज के अनुकूल व्यवहार करने के दृष्टिकोण से उसे जन्म से लेकर जीवन पर्यन्त कुछ न कुछ सीखते रहना पड़ता है। सीखने की इस प्रक्रिया में शिक्षा शब्द का प्रयोग ज्ञानार्जन, बौद्धिक विकास एंव पाठ्यचर्या के ज्ञान के लिए किया जाता है। शिक्षा के तीन महत्वपूर्ण घटक होते है। व्यक्ति, वातावरण एंव समय व्यक्ति सर्वप्रमुख घटक है क्योंकि वही शिक्षा ग्रहण करता है। व्यक्ति के बाद वातावरण शिक्षा ऐसे घटक है जिसका प्रभाव व्यक्ति के शिक्षा प्रक्रिया से होता है। समय के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य में परिवर्तन होता है। इसलिए समय भी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण घटक होता है।

* एम. ए. (समाजशास्त्र), मालवांचल विश्वविद्यालय, इन्दौर, म0प्र0
** विभागाध्यक्ष–समाजशास्त्र विभाग, मालवांचल विश्वविद्यालय, इन्दौर, म0प्र0

इन तीनों घटकों के अतिरिक्त व्यक्ति का वंशानुक्रम भी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण घटक माना जाता है, क्योंकि व्यक्ति में जो जन्मजात संस्कार होते है उस पर उसके वंशानुक्रम का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है।

शिक्षा की परिभाषा :–

शिक्षा व्यक्ति के आर्थिक एंव सामाजिक विकास के लिए आवश्यक है। इसके अभाव में वह पशु के समान ही रहता है। इसलिए शिक्षा के संम्बध में कई विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। इनमें से कुछ विचार ऐसे हैं जिन्हे विश्व भर में शिक्षा की परिभाषाओं के रूप में स्वीकार किया जाता है।

प्लेटो के अनुसार – शिक्षा का कार्य मनुष्य के शरीर एंव आत्मा का वह पूर्णता प्रदान करना है जिसके योग्य वह है।

महात्मा गांधी के अनुसार – शिक्षा से मेरा अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जो बालक और मनुष्य के शरीर मन तथा उसकी आत्मा के सर्वोत्तम गुणों को अभिव्यक्त करती है।

इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है। सच्ची शिक्षा वह है, जो जीवन में प्राप्त होने वाले अनुभवों से आती है और जीवन भर साथ निभाती है। स्वस्थ मस्तिष्क स्वस्थ समाज का निर्माण करती है, स्वस्थ समाज में खुशहाली व सम्पन्नता होती है निम्न आय वर्ग परिवारों के समक्ष न केवल आर्थिक समस्या है वरन् सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, स्थिति से संबधित समस्याएं भी आती हैं। अतः कहा जा सकता है कि शिक्षा प्राप्त करना आज समाज के प्रत्येक वर्ग का अनिवार्य प्रमुख लक्ष्य बन गया है।

शिक्षा मनुष्य की आंतरिक क्षमताओं का बाह्यरूप में प्रकटीकरण का एक माध्यम है। प्रत्येक व्यक्ति के अंदर वे सभी जैविकीय विशेषताएं विद्यमान होती है जो उसे एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व बनाने में सहायक सिद्ध हो सकती है लेकिन व्यक्ति के समाजीककरण की प्रक्रिया उसके इस मार्ग की चुनौती होती है, क्योंकि व्यक्ति का सामाजिक–आर्थिक वातावरण ही उसके सामाजीकरण का आधार होता है। यही वजह है, कि निम्न सामाजिक–आर्थिक स्थिति वाले परिवारों में ज्यादातर शिक्षा के प्रति जागरूकता कम देखी जाती है। परिणामतः स्वयं तथा बच्चों के शिक्षा के विषय में उसे सोचने का वक्त नहीं होता है।

पलायन का प्रभाव :–

(1) जनसंख्या संरचना– स्त्री एवं पुरूषों की संख्या में प्रति हजार की कमी।
(2) जनसंख्या संयोजन ।
(3) विकास के बाधक तत्वों का ज्ञान ।
(4) आर्थिक उन्नति।
(5) संयुक्त परिवार पर प्रभाव ।
(6) नवीन नगरों का अभ्युदय।
(7) अपराधों में वृद्धि –सौदबाजी,षोषण ।
(8) बच्चों की शैक्षिक समस्या ।

अध्ययन की आवश्यकता :–

स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण होता है। शिक्षा स्वस्थ्य समाज का निर्माण करती है एवं स्वस्थ समाज में खुशहाली व सम्पन्नता होती है। समाज की इकाई व्यक्ति है। यह सर्वविदित है कि इस इकाई की दृढ़ता पर समाज निर्भर रहता है। समाज सही दिशा में विकास करें। इसके लिए आवश्यक है, कि समाज में रहने वाले शिक्षित हो। सभी लोगों को शिक्षित करने के लिए सिर्फ सरकारी नीतियाँ ही सहायक नहीं होती हैं। वरन् व्यवहार के रुप में सकारात्मक कदम उठाने से है। पलायन करने वाले श्रमिक परिवारों के समक्ष न केवल आर्थिक समस्या है, वरन् सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक स्थिति से संबधित समस्याएं भी आती हैं। इन समस्याओं का उचित समाधान नहीं हो पाता तो वे कुंठा के शिकार हो जाते हैं। इस स्थिति में बालक – बालिका के विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस समय उनको सही मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है, पर पालक उनको पूरा–पूरा समय नही दे पाते, जिसका कारण यह है, कि वे अपने प्राथमिक आवश्यकता (रोटी, कपड़ा व मकान) की पूर्ति में दिन रात लगे रहते हैं, तो वे अपने बच्चों के विकास पर कैसे ध्यान दे पायेगे।

पलायन एक स्वाभाविक मानवीय प्रक्रिया है। जो आदिकाल से चला आ रहा है। प्रवास में सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों ही कारण विद्यमान होते है। जहॉ सकारात्मक कारण समाज के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वही नकारात्मक कारण अनेक समस्याओं को ही जन्म देता है और इन

समस्याओं के समाधान के द्वारा ही हम सामाजिक विकास को एक दिशा प्रदान कर सकते हैं। प्रश्न जहां तक छत्तीसगढ़ राज्य के कृषि मजदूरों के पलायन का है, जो राज्य बनने के बाद से ही सुर्खियों में रहा है।

भारत की जनगणना के अनुमानित रिपोर्ट के अनुसार 11 वीं तथा 12 वीं पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के विकास तथा गरीबी उन्मूलन हेतु किए गए, तमाम प्रयत्नों के बाद भी दोनों ही क्षेत्रों में हमारी उपलब्धियॉ संतोष जनक नहीं कहीं जा सकती। एक ओर जहां अभी भी एक चौथाई से भी अधिक जनसंख्या निरक्षर है, वहीं दूसरी ओर तीस करोड़ से भी अधिक लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं और पलायन इन दोंनों ही ज्वलंत मुद्दों से जुड़ी है, चुंकि प्रस्तुत अध्ययन छत्तीसगढ़ राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में पलायन करने वाले श्रमिक परिवारों में बच्चों की शैक्षिक समस्याओं पर है, पलायन ही ऐसा कारक है, जिसके कारण बच्चों को शिक्षा की समस्याएं होती है।

पलायन स्थल पर उन्हें विवशतः गंदी बस्तियों में रहना पड़ता है एवं अस्वास्थ्यकर जगहों में कार्य करना पड़ता है, साथ ही जोखिम भी पूर्णतः स्वयं ही वहन करता है एवं अनेक सदस्यों के कार्य पर चले जाने के पश्चात नियंत्रण के अभाव में पलायनकर्ताओं के संताने विभिन्न प्रकार की बुरी आदतों एवं रोग के शिकार तो होते ही हैं, पूर्णतः असुरक्षित भी रहते हैं। पलायन करने वाले श्रमिक परिवार जो मेहनती व कमजोर है तथा रात दिन मजदूरी करने में लगे रहते हैं, वहां के बच्चों का शैक्षिक स्तर बहुत अच्छा नहीं होता है और ये श्रम पलायन करने वाले परिवार शिक्षा के महत्व को भली–भांति समझते हैं। लेकिन अपने आर्थिक एवं सामाजिक समस्या के कारण बच्चों के शिक्षा– अर्जन में उत्पन्न समस्या को दूर नहीं कर पाते। पलायन करने वाले परिवारों के बच्चों की शैक्षिक समस्या एक ज्वलंत समस्या के रुप में विद्यमान है।

यादव (2008) के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है,कि प्रवास का बच्चों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। बच्चों पर पड़ने वाले प्रभाव सकारात्मक कम बल्कि नकारात्मक अधिक होते हैं। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि अधिकांश उत्तरदाताओं ने प्रवास का बच्चों पर विपरीत प्रभाव पड़ने के संदर्भ में सहमति व्यक्त किया है। बच्चों पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है,कि प्रवास से बच्चों के स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिकरण की प्रकिया से प्रभावित होने के साथ–साथ बाल श्रम की समस्या तथा कुछ वर्षों पश्चात् बच्चों के भी प्रवासी बन जाने की संभावना बनी रहती है। प्रवास स्थल में बच्चों को अच्छा वातावरण नहीं मिलता है तथा उन्हें प्रवास स्थल में गंदी बस्ती के अस्वस्थ कर परिवेश में प्रवासी श्रमिक परिवारों के बीच में ही रहना पड़ता है। जिससे उनमें अनेक बुरी आदतों का भी समावेश हो जाता है। प्रवास से प्रवासी श्रमिकों के सामाजिक–आर्थिक स्थिति में होने वाले परितर्वन संबंधी विश्लेषण से यह भी स्पष्ट हुआ है कि अधिकांश पलायनकर्ताओं की सामाजिक प्रतिष्ठा, पारिवारिक प्रतिष्ठा तथा जातिगत प्रतिष्ठा में कोई वृद्धि नहीं होती है। जिसका कारण प्रवासीयों का इसके प्रति उदासीन रहना है। प्रवासी श्रमिकों को अपनी सामाजिक, पारिवारिक, जातिगत प्रतिष्ठा में परिवर्तन के बजाए अपने जीविकोपार्जन की चिंता अधिक होती है।[1]

बोहरा (1996) का अध्ययन उत्तरप्रदेश राज्य के पहाड़ी क्षेत्रों से होने वाले श्रम प्रवास पर आधारित रहा है। अध्ययन इस उद्देश्य पर आधारित था, कि पहाड़ी क्षेत्रों से लोग किन कारणों से प्रवास करते है? और प्रवास के फलस्वरूप प्रवास स्थल के दशाओं का उनके आर्थिक स्थिति व स्वास्थ्य पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है? अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है, कि प्रवास स्थल की दयनीय आवासीय दशा का प्रभाव प्रवासी श्रमिकों के साथ–साथ बच्चों पर भी पड़ता हैं। प्रवास स्थल पर बच्चों की शिक्षा निरंतर जारी रख पाना प्रवासी श्रमिकों के लिए बेहद कठिन होता है।[2]

अमर्त्य सेन (1999) ने भारत के विभिन्न राज्यों में आए अकाल, बंगलादेश तथा इथोपिया में पड़े अकाल के आधार पर इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि अकाल से कृषकों के साथ–साथ उन पर आश्रित भूमिहीन श्रमिकों की स्थिति और भयावह हो जाती है तथा यह स्थिति इन्हें हजारों किलोमीटर दूर पलायन करने के लिए विवश करती हैं।[3]

गुप्ता और प्रजापति ने मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ क्षेत्र में मौसमी खेतिहर मजदूरों के प्रवास के कारणों का अध्ययन करने का प्रयास किया। रायपुर जिले के दो गांवों में 140 किसान उत्तरदाताओं से एकत्रित प्राथमिक आंकड़ों के आधार पर, अध्ययन से पता चला है कि 'रबी' के दौरान बड़ी संख्या में छोटे और सीमांत किसानों का अस्तित्व, कम कृषि उत्पादकता, सिंचाई सुविधाओं की कमी और नौकरी के अवसरों की कमी। अध्ययन क्षेत्र में मौसम प्रवास का प्रमुख कारण है। अध्ययन द्वारा शुरू किया गया दूसरा महत्वपूर्ण कारण अध्ययन क्षेत्र में कम मजदूरी था जहां मजदूरी दरों में वृद्धि के संबंध में सरकार की घोषणा को लागू नहीं किया गया था। नतीजतन, किसानों को या तो बहुत कम मजदूरी पर काम पर जाने के लिए या क्षेत्र के बाहर

नौकरी के अवसरों की तलाश करने के लिए मजबूर होना पड़ा। छोटे जोत वाले परिवार का बड़ा आकार भी प्रवास का मुख्य कारण था। कुछ नमूना उत्तरदाताओं ने अतिरिक्त धन कमाने के लिए प्रवास करने का निर्णय लिया क्योंकि वे अपने मूल निवासियों में प्रचलित सामाजिक रीति–रिवाजों को बनाए रखना चाहते थे।[4]

जे.पी.सिंह ने अपने काम में भारत की जनगणना और एनएसएसओ की रिपोर्ट के अनुसार प्रवासन के आंकड़ों पर प्रकाश डाला है, और साथ ही उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय प्रवास पर भी जोर दिया है, और यह अधिशेष श्रम और गरीबी के कारण उत्पन्न होता है। लेखक ने भारत में प्रवास की मात्रा और प्रवास के स्थानिक पैटर्न के साथ–साथ प्रवास की विशेषता और कारणों के बारे में भी चर्चा की। लेखक ने अपने लेख में यह भी जांचने की कोशिश की है कि ग्रामीण–शहरी प्रवास में चयनात्मकता के विभिन्न पैटर्न के लिए राज्यों के बीच सामाजिक–सांस्कृतिक अंतर किस हद तक जिम्मेदार हैं। इसी तरह, ग्रामीण–ग्रामीण, शहरी–शहरी, शहरी–ग्रामीण जैसे प्रवास की अन्य धाराओं के लिए चयनात्मकता के पैटर्न की भी तुलना और इसके विपरीत किया जा सकता है।[5]

पलायन करने वाले परिवारों की वर्तमान स्थिति –

बुन्देलखण्ड के गाँव में पलायन करने वाले परिवार जो समाज में शोषक मेहनती व कमजोर हैं तथा रात दिन मजदूरी करने में लगे रहते हैं, वहाँ के बच्चों का शैक्षिक स्तर बहुत अच्छा नहीं होता है और ये पलायन करने वाले परिवारों के जीवन में शिक्षा के महत्व को भली–भांति समझते हैं। लेकिन अपने आर्थिक समस्या के कारण बच्चों के शिक्षा–अर्जन में उत्पन्न समस्या को दूर नहीं कर पाते। गाँव पलायन करने वाले परिवारों के बच्चों की शैक्षिक समस्या एक ज्वलंत समस्या के रुप में विद्यमान हैं। शासन द्वारा शिक्षा से संबंधित चलाये जा रहे, विभिन्न अभियानों के फलस्वरुप भी वांछित परिणामों की प्राप्ति नहीं हो पा रही हैं। इस प्रकार पलायन करने वाले परिवारों के आर्थिक – सामाजिक स्थिति का बच्चों की शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन आवश्यक है। जिसके द्वारा इन बच्चों की शैक्षिक समस्या का अध्ययन कर उन कारणों का पता लगाया जा सकें, जो इन बच्चों की शिक्षा के प्राप्ति में समस्या उत्पन्न करते हैं। जिससे इन समस्याओं को दूर कर बच्चों को शिक्षा एवं समाज के मुख्य धारा से जोड़ा जा सके। अतः उक्त बातें अध्ययन की आवश्यकता को स्पष्ट करता हैं।

पलायन करने वाले परिवारों में बच्चों की शैक्षिक समस्या–

शैक्षिक समस्या से आशय पलायन के फलस्वरूप प्रवासी परिवार के बच्चों के प्रवास स्थल में अपनी शिक्षा को लगातार जारी रखने में आने वाली समस्या से है। प्रवास स्थल पर विद्यालय न होना या विद्यालय में प्रवेश नहीं मिल पाना, जिससे प्रवासी परिवार के बच्चों की पढ़ाई बंद हो जाती है। यह प्रक्रिया लगातार 3–4 वर्षों तक जारी रहने की स्थिति में बच्चें निरक्षर या विद्यालय छोड़ने वाले बच्चों की श्रेणी में आ जाते हैं। जिसके कारण बच्चों को शैक्षिक समस्यायें होती है।

इस सन्दर्भ में जब उत्तरदाताओं से यह प्रश्न किया गया कि क्या पलायन करने वाले परिवारों में बच्चों की शैक्षिक समस्या हो रही है? तो अधिकांश उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया है कि पलायन करने वाले परिवारों में बच्चों की शैक्षिक समस्या हो रही है। यह तथ्य निम्न सारिणी संख्या–1 से स्पष्ट होता है।

सारिणी संख्या– 1

पलायन करने वाले परिवारों में बच्चों की शैक्षिक समस्या होने के सन्दर्भ में

उत्तरदाता	संख्या	प्रतिशत
हाँ	270	(90.00)
नहीं	25	(8.33)
ज्ञात नहीं	5	(1.67)
योग	300	(100.00)

उपरोक्त सारिणी संख्या– 1 से स्पष्ट होता है कि बुन्देलखण्ड के गाँव में पलायन करने वाले 300 उत्तरदाताओं में से 90% उत्तरदाता इस तथ्य को स्वीकार किया है कि पलायन करने वाले परिवारों में बच्चों की शैक्षिक समस्या हो रही है जबकि 8.33% उत्तरदाता इस तथ्य को अस्वीकार किया है कि पलायन करने वाले परिवारों में बच्चों की शैक्षिक समस्या हो रही है एवं 1.67% उत्तरदाता इस तथ्य से अनभिज्ञ है।

इस प्रकार सारिणी संख्या–1 से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदाताओं इस तथ्य को स्वीकार किया है कि पलायन करने वाले परिवारों में बच्चों की शैक्षिक समस्या हो रही है।

पलायन करने वाले परिवारों की शैक्षिक स्थिति निम्न होने के सन्दर्भ में–

इस सन्दर्भ में जब उत्तरदाताओं से यह प्रश्न किया गया कि क्या पलायन करने वाले परिवारों की शैक्षिक स्थिति निम्न हो रही है? तो अधिकांश उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया है कि पलायन करने वाले परिवारों की शैक्षिक स्थिति निम्न हो रही है। यह तथ्य निम्न सारिणी संख्या–2 से स्पष्ट होता है।

सारिणी संख्या–2

पलायन करने वाले परिवारों की शैक्षिक स्थिति निम्न होने के सन्दर्भ में

उत्तरदाता	संख्या	प्रतिशत
हाँ	260	(86.67)
नहीं	28	(9.33)
ज्ञात नहीं	12	(4.00)
योग	300	(100.00)

उपरोक्त सारिणी संख्या–2 से स्पष्ट होता है कि बुन्देलखण्ड के गाँव में पलायन करने वाले 300 उत्तरदाताओं में से 86.67% उत्तरदाता इस तथ्य को स्वीकार किया है कि पलायन करने वाले परिवारों की शैक्षिक स्थिति निम्न हो रही है जबकि 9.33% उत्तरदाता इस तथ्य को अस्वीकार किया है कि पलायन करने वाले परिवारों की शैक्षिक स्थिति निम्न हो रही है एवं 4% उत्तरदाता इस तथ्य से अनभिज्ञ है।

इस प्रकार सारिणी संख्या–2 से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदाताओं इस तथ्य को स्वीकार किया है कि पलायन करने वाले परिवारों की शैक्षिक स्थिति निम्न हो रही है।

निष्कर्ष–

बुन्देलखण्ड के गाँव में पलायन करने वाले सम्पूर्ण उत्तरदाताओं में से 90% उत्तरदाता इस तथ्य को स्वीकार किया है कि पलायन करने वाले परिवारों में बच्चों की शैक्षिक समस्या हो रही है

बुन्देलखण्ड के गाँव में पलायन करने वाले सम्पूर्ण उत्तरदाताओं में से 86.67% उत्तरदाता इस तथ्य को स्वीकार किया है कि पलायन करने वाले परिवारों की शैक्षिक स्थिति निम्न हो रही है।

उपरोक्त तथ्यगत विश्लेषणोपरान्त यह स्पष्ट होता है कि पलायन के फलस्वरूप बुन्देलखण्ड के गाँव में शिक्षा से दूरी हो रही है। अतः अध्ययन में निर्मित यह मुख्य उपकल्पना कि ''बुन्देलखण्ड के गाँव में पलायन के परिणाम, पारिवारिक विखराव, शिक्षा से दूरी, सामाजिक कुरीति का बढ़ावा : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन'' में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं, सत्य प्रमाणित होता है।

सन्दर्भ–

1. यादव, विनोद (2008). "छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले में ग्रामीण क्षेत्रों से श्रम पलायन की समस्या एक आर्थिक विष्लेषण", अप्रकाशित शोध प्रबंध, पं.रविशंकर शुक्ल, वि.वि.रायपुर, पृष्ठ संख्या 13–18.
2. Bohara, D. M. (1969-71). Internal Migration in Rajasthan. Indian Journal of Geography, P. No- 4, 5-6.
3. सेन, अमर्त्य (1999) : गरीबी और अकाल
4. एस.पी.गुप्ता एवं प्रजापति (1998) : माइग्रेशन आफ द एग्रीकल्चर लेबर्स इन छत्तीसगढ़ रिजन आफ म.प्र. : ए माइक्रो लेबल स्टडी, इण्डियन जनरल आफ लेबर इकोनामिक्स पृ0सं0–41
5. सिंह जे0पी0 (1986) : पैटनर्स आफ रूरल–अरबन माइग्रेशन इन इण्डिया, न्यू देलही, इण्टर इण्डिया पब्लिकेशन, न्यू देलही।
6. सक्सेना, एस. सी. (1996)" श्रम समस्याऍ एवं सामाजिक सुरक्षा", रस्तोगी पब्लिकेषन, मेरठ, पेज न0–37.
7. बघेल, डी.एस. (2007)."भारत में ग्रामीण समाज", कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, पृष्ठ संख्या–410–416.
8. भटनागर, आर.पी.एवं भटनागर, मीनाक्षी (2005)."शिक्षा अनुसंधान", मेरठ, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ संख्या–223–233.
9. सरीन और सरीन (2007) ."शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ ", अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा. सप्तम संस्करण, पृष्ठ संख्या–120–123

वामनावतरणम् महाकाव्य और अलङ्कार सम्प्रदाय

विपुल शिव सागर*

प्रो. उमा शर्मा**

अलङ्कार शब्द की व्युत्पत्ति-

अलङ्कार शब्द अलम्+कि धातु+धञ् प्रत्यय से निष्पन्न हुआ है। व्याकारणिक दृष्टि से अलङ्कार शब्द की निष्पत्ति दो प्रकार से सिद्धि की जा सकती हैं।

(क) साधन परक रूप में- इस आधार पर इसकी दो व्युत्पत्ति प्राप्त होती है-

प्रथम व्युत्पत्ति - अलङ्कार शब्द (अलंकृतिः अर्थात् अलम्+कृ+क्तिन् – तथा अलम्+कृ+घञ् – अलङ्कारः) भूषण या शोभा के भाव अर्थ में उत्पत्ति इस प्रकार सिद्ध की जा सकती हैं। इस अर्थ में अलङ्कार का अर्थ सौन्दर्य[1] से अभिन्न अर्थ में ग्रहण होता है । यहां अलम्' पूर्वक 'कृ' धातु के योग से 'करण' तथा 'भाव' अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय का प्रयोग हुआ हैं।[1] यहां प्रयुक्त अलम्' शब्द अव्यय है जिसका अर्थ है – पर्याप्त या योग्य । इस प्रकार अलङ्कार शब्द से तात्पर्य यह है कि जो पर्याप्त अथवा योग्य बना दे ।

द्वितीय व्युत्पत्ति -अलङ्करोति इति अलङ्कार' तथा अलङ्कियतेऽनेन इति अलङ्कारः [2] अर्थात् जो चमत्कार तथा सौन्दर्य को उत्पन्न करें वही अलङ्कार है। अलङ्कार शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ इस प्रकार **हैं -**

1. अलङ्करोति इति अलङ्कारः (कृत् व्युत्पत्ति)— कृत् व्युत्पत्ति में प्रयुक्त 'अलम्' पद अतिशयता का बोधक है। सामान्य शब्दार्थ में सामान्य से विशिष्ट वाला तत्व ही अतिशयता का आधायक होता है।
2. अलङ्कृतिः अलङ्कारः (भाव व्युत्पत्ति) - इसके अनुसार अलङ्कार शब्द अलङ्कारशास्त्र का वाचक होता है। इसके अनुसार शब्दार्थ रूपी साहित्य में गुणों तथा दोषों का निराकरण करने वाला तथा गुणों का आधान करने वाले तत्त्व को अलङ्कार कहते हैं। आचार्य वामन ने काव्यालङ्कार सूत्र में काव्यं ग्राह्यम् अलङ्कारात् तथा सौन्दर्यम् अलङ्कारः के द्वारा इसी व्युत्पत्ति को समर्थित किया है।
3. अलङ्क्रियते अनेनेति अलङ्कारः (करण व्युत्पत्ति) - करण व्युत्पत्ति के अनुसार अलङ्कार शब्द अनुप्रासादि शब्दालङ्कारों तथा उपमादि अर्थालङ्कारों का वाचक है।
4. अलं भावो हि अलङ्कारः - 'अलं भावः' को अलङ्कार मानने वाले आचार्य शब्दार्थ को आनन्द या आह्लाद की चरम स्थिति तक पहुँचाने वाला तत्त्व माना है। यहाँ प्रयुक्त अलं पद ब्रह्म का वाचक है।

अलङ्कार की परिभाषा तथा स्वरूप-

---

* **शोध छात्र, संस्कृत एन0ए0एस0 कॉलेज, मेरठ**

** **विभागाध्यक्ष,संस्कृत विभाग, एन0ए0एस0 कॉलेज, मेरठ**

[1] वामन शिवराम आप्टे – संस्कृत हिन्दी कोष, पृ० 102

[2] Dr सूर्य नारायण त्रिपाठी -भारतीय समीक्षा सिद्धान्त, पृ० 23

अलङ्कार शब्द का प्रयोग वर्तमान समय में भले ही संकुचित अर्थ में लिया जाता रहा है। तथापि इसके संस्थापक तथा व्याख्यापरक आचार्यों ने इसकी परिभाषा व्यापक रूप में ग्रहण की थी। इसके प्रमुख आचार्यों के मतानुसार अलङ्कार को हम निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं –

भामह - "वक्राभिधेयशब्दोंक्तिरिष्टा वाचामलंकृतिः"[3] अर्थात् शब्द और अर्थ का वैचित्र्य भाव रूप ही अलङ्कार कहलाता है। अलङ्कार सिद्धान्त को स्थापित करते हुए आचार्य भामह अलङ्कार को काव्य का आवश्यक तत्व मानते हुए उसको काव्य की आत्मा स्वीकार करते हैं-

रूपकादिरलङ्कारस्तस्यान्यैर्बहुधोदितः ।
न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितानमम् ॥[4]

वामन – अलङ्कार द्वारा ही काव्य ग्रहण करने योग्य होता है और सौन्दर्य भूत वह अलङ्कार कहलाता है। वामन वैसे तो मूलतः रीतिवादी आचार्य थे। फिर भी उन्होनें पूर्ववर्ती आचार्यों की भाँति काव्य में अलङ्कार की महत्ता को स्वीकार करते है। वे काव्य में अलङ्कार को ग्राह्य तथा सौन्दर्य मात्र के एक आवश्यक तत्त्व के रूप में स्वीकार करते है।

"काव्यं ग्राह्यमलंकरात् । [5]
" सौन्दर्यमलंकारः' ।[6]

वामन गुणों को काव्य की शोभा के धर्म मानते है और उसके शोभा के अतिशय के हेतु को अलङ्कार मानते है। वामनाचार्य ने अलङ्कार को सौन्दर्य का पर्यायवाची कहकर अलङ्कार से युक्त कार्य को ग्राह्य तथा अलङ्कारहीन काव्य को अग्राह्य कहा है।

अलङ्कृतिरलङ्कारः। करणव्युत्पत्त्या पुनरलङ्कारशब्दोऽयम् उपमादिषु वर्तते।।[7]
काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्मा गुणाः ।।[8]
तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः।[9]

आनन्दवर्धन- आनन्दवर्धन ने ठोस प्रमाणों द्वारा रसध्वनि को काव्य की आत्मा मानकर अलङ्कारों को मात्र काव्य के बहिरंग शोभादायक तत्त्व सिद्ध किया। उनका स्पष्ट मत है कि जो अंगी रूप अर्थ का अवलम्बन करते है, वह गुण कहलाते है और जो कटक आदि की भाँति बाह्य सौन्दर्य को ही प्रतिभासित करते है वह अलङ्कार है-

तमर्थवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृताः ।
अङ्गाश्रितास्त्वलङ्कारा मंतव्याः कटकदिवत्।।[10]

---

[3] काव्यालंकार 1/36

[4] काव्यालंकार 1/13

[5] काव्यालंकार सूत्रवृत्ति 1/1/1

[6] काव्यालंकार सूत्रवृत्ति 1/1/2

[7] वही 1/1/2

[8] काव्यालंकार सूत्रवृत्ति 3/1/1

[9] काव्यालंकार सूत्रवृत्ति 3/1/2

[10] ध्वन्यालोकः 2/6

उनके अनुसार वे ही अलङ्कार काव्य में अतिशय शोभाधायी कहे जाते हैं जिनका निबन्धन रसाक्षिप्ततया सर्वोत्कृष्ट होता है ऐसे अलङ्कारों के लिए पृथक् रूप से यत्न व अपेक्षा हितकारी होता हैं ।

रसाक्षिप्ततया यस्य बंधः शक्यक्रियीभवेत् ।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यः सोऽलंकारोऽध्वनौ मतः ।। [11]

इसी तरह ध्वन्यात्मक शृंगारमय काव्य में रस औचित्य को ध्यान देकर रूपकादि अलङ्कार का प्रयोग वस्तुतः रस उपकारक कहे जाते हैं ।

ध्वन्यात्मभूते शृंगारे समीक्ष्य विनिवेशितः ।
रूपकादिरलंकारवर्ग एति यथार्थताम् । [12]

कुन्तक- संस्कृत काव्यशास्त्र में अलङ्कार को मात्र शोभादायक उपकरण सिद्ध हो जाने के बाद एक बार पुनः काव्य के लिए अलङ्कारों की अनिवार्यता का प्रतिपादन कुन्तक, भोजराज और जयदेव ने किया। आचार्य कुन्तक ने अलङ्कार युक्त उक्ति को काव्य माना है-

अलंकृतिरलं कार्यमपोद्धृत्य विवेच्यते ।
तदुपायतया तत्त्वं सालंकारस्य काव्यता ।। [13]

मम्मट- आचार्य मम्मट के अनुसार अनुप्रास और उपमा आदि अलङ्कार शरीर के हारादि आभूषणों की भाँति काव्य शरीर का उपकार करते है। आचार्य मम्मट भी ध्वनिकार के मत का समर्थन करते हैं । उनका मानना है कि अनुप्रास, उपमा आदि अलङ्कार अंगी रस के अंग होकर उसे उसी प्रकार सुशोभित करते हैं जिस प्रकार आभूषण आदि अलङ्कार शरीर को सुशोभित करते हैं।

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित् ।
हारादिवदलंकारास्तेननुप्रासोपमादयः।।[14]

उत्तरवर्ती विश्वनाथ आदि आचार्यों ने भी इसी मत का अनुसरण किया है । विश्वनाथ ने अलङ्कारों को रसादि का उपकारक तथा शब्दार्थ का अतिशय शोभाधायी अस्थिर धर्म कहा हैं।

शब्दार्थयोरास्थिराः ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत्।।[15]

अर्थात्, अलङ्कार काव्य शोभा को बढ़ाने वाले रस, भाव आदि के उत्कर्ष में सहायक शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म है। कङ्गन आदि आभूषणों के समान ही ये अस्थिर धर्म भी काव्य के आभूषण या अलङ्कार कहलाते हैं।

जगन्नाथ-

"काव्यात्मनो व्यङ्गयस्य रमणीयता प्रयोजकाः अलङ्काराः" [16]

---

[11] ध्वन्यालोक 2/16

[12] ध्वन्यालोक 2/17

[13] वक्रोक्तिजीवितम् 1/6

[14] काव्य प्रकाश 6/67

[15] साहित्यदर्पण 10/1

काव्य की आत्मा, जो व्यंजनागम्य अर्थ है, उसे रमणीयता प्रदान करने वाले तत्त्व अलङ्कार कहलाते हैं।

वामनावतरणम् महाकाव्य में अलङ्कारविधान

वामनावतरणम् का अलङ्कारविधान इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता हैं कि यहाँ अलङ्कारों का प्रयोग सायास नहीं हुआ है। विशेषरुप से शब्दालङ्कार इस दृष्टि से प्रशस्त कहे जा सकते हैं कि कवि कभी भी उनके मोह में नहीं पड़ा है। कहाँ-कहीं अनुप्रास तथा अत्यन्त स्थलों पर यमक का प्रयोग अवश्य मिलता है परन्तु चित्रालंकर जैसे अलङ्कार यहाँ तक कि श्लेष भी सर्वथा प्रयुक्त नहीं हुए हैं। अर्थालङ्कार भी केवल कथावस्तु को स्पष्टरूप से उभारने में ही कृतकार्य है। निदर्शन के रूप में वामनावतरणम् में प्रयुक्त कुछ प्रमुख अलङ्कारों का दिग्दर्शन भर किया जा सकता हैं।

शब्दालंकर

यमक- सार्थक या निरर्थक पद होने पर भी भिन्न भिन्न अर्थ वाले स्वर-व्यञ्जन समूह की क्रमानुसार आवृत्ति को यमक अलङ्कार कहते है।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार लक्षण-

सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः ।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते ॥ [17]

काव्यप्रकाशकार के अनुसार लक्षण-

अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः ।
यमकं पादतद्भागवृत्ति तद्यात्यनेकताम् ॥ [18]

उदाहरण -

विरतिरतिविवेकख्यातिमाख्यातवन्तो
ललितरतिकथाभिर्वा मनः प्रीणयन्तः ।
निहतदुरितलेशाश्चान्द्रवृद्धिप्रदेशा
मसृणसदुपदेशास्ते जयन्त्याद्यगानाम्॥।[19]

प्रस्तुत पद्य में विरति (वैराग्य) और रति (प्रणयव्यापार का वाचक) में क्रमानुसार रति पद की आवृति होनेसे यहां यमक अलङ्कार दृष्टिगत है।

श्लेष अलङ्कार- जब श्लिष्ट पदों से अनेक अर्थों का अभिधान होता है तो श्लेषालङ्कार होता हैं।

आचार्य विश्वनाथ का लक्षण- श्लिष्टैःपदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते।[20]

काव्यप्रकाशकार के अनुसार लक्षण-

वाच्यभेदेन भिन्ना तत् युगपद्भाषणस्पृशः ।

---

[16] रस गंगाधर

[17] साoदo 10/08

[18] काव्यप्रकाश - 9/87

[19] वाoअo 1/3

[20] सा० द० - 10/11

श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोसावक्षरादिभिरष्टधा ॥ [21]

उद्धरण -

न च कवनपटीयान्नापि शब्दार्थदक्षी।
न गुणरसविधिज्ञः शारदादेशवासी ।
तदपि मृदु चिकीर्षुम् काव्यभूतं कथञ्चित्
किमिव वदति लोको मामितीदं न जाने । । [22]

उपर्युक्त पद्य में 'शारदादेशवासी' (शारदा देश का निवासी वा शारदा के आदेश का पात्र) पद के दो अर्थ होने से इसमें श्लेष अलङ्कार हैं।

उपमा - उपमान और उपमेय में भेद होने पर भी साधर्म्य का वर्णन उपमा अलङ्कार कहते हैं।

आचार्य विश्वनाथ लक्षण -साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमाद्वयोः।[23]
मम्मट के अनुसार लक्षण- साधर्म्यमुपमा।[24]

उद्धरण -

ध्वज इव सुकृतानां व्योम्नि दोधूयमानः
सुकविमहितकीर्तिं पावनीञ्चानुयातः ।
प्रयतननिरतोऽभूद् वामनं गातुकामो
विशदमतिरिदानीं हन्त राजेन्द्रमिश्रः ।।[25]

उपमेय-विशद-बुद्धि राजेन्द्र मिश्र ,उपमान- सत्कर्मों की ध्वजा ,साधारण धर्म -आकाश में तरंगित होना तथा महनीय कीर्ति , उपमावाचक शब्द- इव।

रुपक- जहां पर उपमान और उपमेय का अभेद वर्णन किया जाता है वहां रूपक अलङ्कार होता हैं।

साहित्यदर्पणकार के मतानुसार - रुपक रूपितारोपद्वि विषये निरपह्नवे ।[26]
आचार्य मम्मटानुसार - तद्रूपकमभेदो यः उपमानोपमेययोः । [27]

उदाहरण-

यं देवी सुषुवे कवित्वशिखरं दुर्गाप्रसादान्निजे,
क्रीडे शुक्तिनिभे विमौक्तिकतनुं वन्द्याऽभिराजी सुतम्।
श्रीदेवेन्द्रसुरेन्द्रमध्यममणी राजेन्द्रमिश्रो न्वसौ
हतुष्ट्यै तनुते त्रिविक्रमयशो गीर्वाणवाण्याऽनधम् ॥[28]

---

[21] काव्यप्रकाश - 9/84

[22] वा०- 1/14

[23] सा० द० 10/14

[24] काव्यप्रकाश - 10/87

[25] वा० अ० 1/40

[26] सा० द० 10/28

[27] काव्यप्रकाश - 10/93

सन्देह- जहां सादृश्य के कारण उपमेय का उपमान के साथ संशयात्मक ज्ञान होता है वहां संदेह अलङ्कार होता हैं।

आचार्य विश्वनाथ - सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्वितः।[29]

काव्यप्रकाश के अनुसार लक्षण - ससंदेहस्तु भेदोक्तौ तदनुक्तौ च संशयः ॥ [30]

उदाहरण-

विभावसुर्लोकतमोऽपहारकः
सनत्कुमारोऽप्यथवा महेश्वरः।
दिदृक्षयाऽऽयाति मखस्य कोऽन्वति
प्रमोहविद्धा दधिरे भृगूत्तमाः।।[31]

प्रस्तुत पद्य में वामन रूपी उपमेय का भगवान सूर्य तथा सनत्कुमार रूपी उपमान के साथ संशयात्मक ज्ञान बोध होने से यहां सन्देह अलङ्कार परिलक्षित हो रह हैं।

उत्प्रेक्षा- जहां उपमान में उपमेय की कृत्रिम रूप से सम्भावना व्यक्त की जाती है वहां उत्प्रेक्षा अलङ्कार होता हैं।

आचार्य विश्वनाथ -

भवेत्सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।
वाच्या प्रतीयमाना सा प्रथमं द्विविधा मता।[32]
काव्यप्रकाशकार-संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्। [33]

उदाहरण-

रोमाञ्चिताचापि वसुन्धरेयं,
दूर्वाङ्कुरैर्हचिंतसर्वगात्री।
प्रजज्वलुर्वद्धि शिखा अधुमा,
स्तदाश्रमेष्वेव विना प्रयत्नैः ॥ [34]

अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार - जहाँ अप्रस्तुत वृत्तान्त के द्वारा प्रस्तुत वृत्तान्त की प्रतीति कराई जाती है वहां अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार होता हैं।

आचार्य मम्मट का लक्षण -अप्रस्तुतप्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया। [35]

आचार्य विश्वनाथ -

---

[28] वा०अ० 1/46

[29] सा० द० 10/35

[30] काव्यप्रकाश – 10/92

[31] वा०-8/26

[32] सा० द० 10/40

[33] काव्यप्रकाश 10/92

[34] वा०-6/14

[35] काव्यप्रकाश 10/98

प्रतिवस्तूपमा सा स्याद्वाक्ययोर्गम्यसाम्ययोः ॥
एकोऽपि धर्मः सामान्यो यत्र निर्दिश्यते पृथक् ।[36]

उद्धरण -

कुतोन्विदं हर्षममत्ववैभवं ,परोक्षरूपं मनसोऽप्यगोचरम् ?
कुतश्च से पादसरोजमाधुरी- ब्रहाभिलाषो मम देव! वेद्मिनो ।[37]

यहां पर दैत्यराज बलि द्वारा सामान्य कथनों द्वारा विशिष्ट मन्तव्य व्यक्त किया गया है। अतः अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार हैं।

काव्यलिङ्ग -जिसमें अर्थ के उपादान के लिए हेतु का वाक्यार्थ या पदार्थ रूप में उपनिबन्धन काव्यलिङ्ग अलङ्कार कहते हैं।

आचार्य विश्वनाथ -हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते। [38]
मम्मटाचार्य के अनुसार- काव्यलिङ्गं हेतोर्वाक्यपदार्थता।। [39]

उदाहरण-

आकाशगंगाजलभारनम्नै-
र्मन्दानिलैश्शीतलशीतलैर्या
उपात्तकल्पद्रुमदिव्यगन्धैः
स्फुटीकृताऽसीन्निकट स्थितेव ।। [40]

आकाश गंगा की जलकणिकाओं का भार से बोझिल होना, परिजात के सौरभ से सुवासित मन्द पवनों द्वारा अमरावती का प्रत्यक्षतः निकटवर्तिनी प्रतीत होना बताया गया है। यहाँ “अमरावती का निकट प्रतीत होना" उपर्युक्त दोनों वाक्यों का हेतु हैं । अतः उक्त पद्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

◂◂ ▸▸

[36] सा० द० 10/49
[37] वा० 8/46
[38] सा० द० 10/62
[39] काव्यप्रकाश - 10/114
[40] वा० अ० 2/44

दलित जातियों में महिला उत्पीड़न : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

कामिनी*

सारांश

भारत में दलित महिलाएं सदियों से मौन की संस्कृति में जी रही है। वे अपने शोषण, उत्पीड़न और अपने विरूद्ध बर्बरता की मूकदर्शक बनी रही। उनका अपने शरीर, कमाई और जीवन पर कोई अधिकार व नियंत्रण नहीं है। उनके विरूद्ध हिंसा, शोषण और उत्पीड़न की चरम अभिव्यक्ति भुख, कुपोषण, बीमारी, शारीरिक और मानसिक यातना बलात्कार के रूप में दिखाई देती है, अशिक्षा, अस्वस्थता बेरोजगारी, असुरक्षा और अमानवीय व्यवहार तथा सामंतवाद जातिवाद और पितृसत्ता की सामूहिक ताकतों ने उनके जीवन को बद् से बद्तर बना दिया है। आधुनिक और उत्तर–आधुनिकता तथा वैश्वीकरण के युग में भी आज उनके विरूद्ध हिंसा असमानता जैसी घटनाएं लगातार हर क्षेत्र में देखने को मिल रही है। ये लेख दलित महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, स्वास्थ्य क्षेत्रों में उनकी स्थिति पर आधारित है।

मूल शब्द : महिला, दलित उत्पीड़न, हिंसा, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्वास्थ्य, शैक्षणिक, सशक्तिकरण।

प्रस्तावना

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि संसार की रचना स्त्री ओर पुरूष से हुई है। दोनों की ही संसार की रचना में महत्वपूर्ण स्थान है तथा स्त्री व पुरूष में से किसी एक के अभाव में मानव के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है। कबीलाई जीवन के विकास के साथ कृषि कार्य प्रारम्भ हुआ तथा जीवन का मुख्य आधार कृषि हो गया। भूमि पर कब्जे को लेकर कबीलों में लड़ाई प्रारम्भ हुयी पराजित कबीलो के व्यक्ति विजयी कबीली के व्यक्ति विजयी कबीलो के दास बनाए गए तथा स्त्री का भी शोषण आरम्भ हो गया। स्त्री को घर की चार दीवारी में कोद कर दीया गया तथा उसे अपने जीवन यापन के लिए पुरूष के अधीन कर दिया गया। (सिंह, बी. एन० और सिंह, जनमेजय, 2012, पेज न०–256)।

प्राचीन काल से आधुनिक काल तक महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करने से पता चलता है कि ऋग्वैदिक काल में दलित महिलाओं कि ही नहीं अपितु समस्त महिलाओं की स्थिति अच्छी थी, उत्तर वैदिक काल से महिलाओं की स्थिति में गिरावट आयी और आगे के कालो में महिलाओं की स्थिति बद से बद्तर हो गयी। आधुनिक काल से इनकी स्थिति में सुधार करने का प्रयास किया गया। लेकिन आज भी महिलाएं विशेषकर दलित महिलाएं की स्थिति में सुधार की आवश्यकता है। इनकी अधीनता तथा दासता जैसी स्थिति के लिए सामाजिक व्यवस्था तथा पुरूष प्रधान की सोच उत्तरदायी हैं। (समुन, 2004, पेज न०–96) भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार भारत में कुल महिलाओं की संख्या–58.7584719 हैं तथा प्रतिशत में 48.53 प्रतिशत है। भारत में दलित महिलाओं को अक्सर हिंसा का सामन करना पड़ता है जब से आवास, पेयजल, सार्वजनिक वितरण प्रणाली शिक्षा आदि से सम्बन्धित अपने अधिकारों की मांग करती है तथा ज बवे खुले में शौच के लिए जाती है। (एफ.ई.डी.ओ.–सितम्बर 2013) भारत में दलित महिलाओं की स्थिति पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है, वे दुनिया में हर जगह सबसे बड़े सामाजिक रूप से पृथक समूह में से एक है–प्रथम दलित होने के कारण दूसरा गरीब होने के कारण और तीसरा महिला होने के कारण। दलित महिलाएं 200 मिलियन दलित आबादी का आधा हिस्सा है तथा भारत में कुल महिला आबादी का 16.3% है। पारस्परिक निषेध दलित महिलाओं व दलित पुरूषों के लिए समान है। हालांकि, दलित महिलाओं को इन निषेधो के साथ अधिक बार सामना करना पड़ता है। दलित महिलाओं के साथ न केवल ऊँची जाति के पुरूषों व महिलाओं द्वारा बल्कि उनके समुदाय में भी भेदभाव किया जाता है। दलित समुदाय में पुरूष प्रमुख है।

दलित जातियों में महिलाओं की स्थिति को समझने के लिए हमें जाति और लिंग दोनों के दृष्टिकोण एक विश्लेषण करना होगा। जातिगत भेदभाव के कारण दलित महिलाओं को समाज में निम्न दर्जा दिया जाता है जबकि लिंग आधारित उत्पीड़न के कारण उन्हें घरेलू हिंसा, यौन शोषण और अन्य प्रकार उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है।

* एम.ए., पीएच.डी. (समाजशास्त्र), मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, बिहार

दलित महिलाओं के पास दलित आन्दोलनों के भीतर कम शक्ति है इन आन्दोलनों में दलित महिलाएं बड़ी संख्या में सकिय हैं, लेकिन स्थानीय निकायों, संगठनों में अधिकांश नेतृत्व के मदों पर अब तक पुरूषों का ही दबदबा है। (मनोरमा, रूथ)। दलित महिलाओं के प्रति हिंसा विभिन्न प्रकार के मानवधिकारों के उलंघन के रूप में प्रवृत्त है। जब दलित और आदिवासी महिलाओं द्वारा न्यूनतम मजदूरी के भुगतान के लिए, फसली भूमि के विवादों के लिए या खोयी हुयी भूमि पुनः प्राप्त करने के प्रयासो के तहत जब आन्दोलन किया जाता है तो नेताओ, भूमि के मालिको तथा पुलिस द्वारा उनके साथ बलात्कार किया जाता है। (घोषाल, 2014) दलित महिलाए सामान्य समुदाय और अपने परिवार दोनो के पितसतात्मक संरचना के अधीन है। प्रमुख जातियों द्वारा दलित महिलाओं पर हिंसा दलित समुदाय को सबक सिखाने के लिए भी की जाती है। दलित महिलाओं के साथ मानवाधिकार का उलंघन या र्दुव्यवहार अधिकतर अपवित्रता की धारणा के साथ जुड़ा हुआ है। पुलिस प्रशासन द्वारा अक्सर उन्हें न्याय और विधिक सहायता पाने से रोक दिया जाता है। अधिकतर मामलो मे न्यायपालिका दलित महिलाओं के विभेदीकरण से रक्षा के मामले को रोकने में और उन्हें संरक्षण देने में विफल साबित होती है। दलित महिलाएं जातिगत प्रभावित गंभीर समस्याओं से ग्रसित है, जैसे संसाधनों तक पहुँच, जमीन, आधारभूत सुविधाए, न्याय आदि की कमी। ग्रामीण बुनीयादी ढाँचे, आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं तक पहुँच में कमी के कारण दलित ग्रामीण महिलाओं को अपने परिवार और समुदाय के भीतर कई उत्पाद और प्रजनन भूमिकाए निभाने में विभिन्न चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। वे अधिकतम भूमिहीन गरीब है। और रोजगार व ऋण के लिए प्रमुख जाति पर निर्भर है। संसाधनों तक उनकी पहुँच के प्रयास में भी हिंसा का सामना करना पड़ता है। (एफ.ई.डी.ओ.–सितम्बर 2013) दलित महिलाएं लिंग और जाति आधारित हिंसा दोनों का शिकार होती है। महिलाओं के विरूद्ध हिंसा पर संयुक्त राष्ट्र के विशेष संबंध में उल्लेख किया गया है कि ''दलित महिलाओं के विरूद्ध राज्य अभिकर्ताओ और प्रभुत्वशाली जाति के पुरूषो द्वारा राजनीतिक सबक सिखाने व दलित समुदाय में असन्तोष उत्पन्न करने के लिए दलित महिलाओं पर लक्षित हिंसा (जिसमें बलात्कार और हत्या शामिल है) किया जाता है। धार्मिक और सांस्कृतिक मानदण्डों द्वारा मानय लिंग असमानता महिलाओं को हिंसा के अधीनस्थ करती है और पिक्तासक्तात्मक व्यवस्था को मजबूत करती ह ैजिससे उनके विरूद्ध हिंसा उनके घरो और समुदायो के भीतर भी हो सके। दलित महिलाओं को सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में मौखिक, शारीरिक और यौन हिंसा का सामना करना पड़ता है सार्वजनिक क्षेत्रों में कई करणे से मौखिक और शारीरिक हमला किया जाता है जैसे– सार्वजनिक संसाधनों तक पहुँचने का प्रयास करने पर, हिंसा की घटना के बाद न्याय पाने का अधिकारों का प्रयोग करने पर तथा निजी क्षेत्रो दलित महिलाओं पर अत्याचार तब किया जाता है ज बवे पत्नी होने का कर्तव्यों का सही ढंग से नहीं पालन करती है, बच्चों विशेष रूप से पुरूष बच्चे की सही से देखभाल ने करने के कारण, पर्याप्त दहेज न लाने की वजह से उन पर अत्याचार किया जाता है इसके अतिरिक्त उनकी निम्न सामाजिक–आर्थिक स्थिति के कारण, दलित महिलाएं अक्सर तस्करी ओर यौन शोषण का शिकार होती है दलित महिलाओं की यौन और शारीरिक अखण्डता, कम उम्र में ही भंग कर दी जाती है। जाति पदानुक्रम के कारण दलित महिलाओं के शरीर पर प्रमुख जाति के पुरूषो का कथित तौर पर अधिकार है। जबकि लैंगिक असमानता और अधीनता के मानदण्ड वैवाहिक बलात्कार और जातिगत यौन उत्पीड़न के अपराधो मे एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दलित महिलाओं को प्रमुख जाति के किसी भी पुरूष के लिए यौन रूप से उपलब्ध माना जाता है। इसके अतिरिक्त देवदासी प्रथा के रूप में युवा दलित लड़कियों को मन्दिर में बलात् वेश्यावृति के लिए मजबूर किया जाता है। दलित महिलाओं का यौन शोषण उनकी निम्न सामाजिक–आर्थिक स्थिति के कारण एक सामान्य घटना है और प्रमुख जाति के सदस्य उनकी शक्ति और अधिकार का लाभ उठाते हैं। जादू–टोनो के आरोपो के परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में दलित महिलाएं पीड़ित है। इसी प्रकार अर्न्तजातीय विवाह के मामले में दलित महिलाओं को बसे अधिक शिकार होने की संभावना है। उच्च जाति के सदस्यों के लिए यह सामान्य घटना है कि वे दलित लड़कियों के साथ प्यार करने का नाटक करे और फिर उन्हें गर्भवती कर दे या शादी के तुरन्त बाद जाति के आधार पर छो डदेते हैं। दलित महिलाओं को घर में, सार्वजनिक स्थानों पर और यहाँ तक कि कुछ मौको पर भी हिंसा का सामना करना पड़ता है। (एफ.ई.डी.ओ.–सितम्बर 2013)

उद्देश्यः दलित जातियों में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक और स्वास्थ्य क्षेत्र में स्थिति का पता लगाना।

शोध विधिः प्रस्तुत लेख द्वितीयक तथ्यों पर आधारित है जिसके तथ्य समाचार पत्रों, पुस्तकों, लेखों आदि से लिया गया है।

दलित महिलाओं की विभिन्न क्षेत्रों में स्थिति

दलित महिलाओं की सामाजिक स्थिति

भारतीय सामाजिक संरचना के दलित महिलाओं की असमानता सबसे गंभीर और अस्वीकार्य है क्योंकि इसका सीधा प्रभाव उनकी स्थिति पर पड़ता है। असमानता व्यवस्थित है जो सामाजिक मानदंडो, नीतियों और प्रथाओं द्वारा निर्मित है जो शक्ति, धन और अन्य आवश्यक सामाजिक संसाधनों के अनुचित वितरण को अन्य आवश्यक सामाजिक संसाधनों के अनुचित वितरण को बढ़ावा देती है। Whitehead et.al., 2007 के अनुसार सामाजिक व्यवस्था में अंतर्निहित सामाजिक पदानुक्रमों के कारण असमानताएं उत्पन्न होती है। दलित महिलाओं की स्थिति सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक कारकों पर निर्भर करती है जो बदले में उनके जीवन को प्रभावित करते है, न कि केवल किसी कार्यक्रम और नीतियों की उपस्थिति या अनुपस्थिति पर। भारत में जाति और सामाजिक स्तरीकरण स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार सामाजिक और आर्थिक परिणात निर्धारित करते हैं (Shahare, 2016)। 'पवित्र और प्रदूषण'' के साथ ब्राहणवादी जुनून की कीमत पर दलित महिलाओं के साथ भेदभाव का विकास के सभी आयामों पर हानिकारक प्रभाव पड़ा है।

मानव के विकास के बाद से दलित महिलाओं को भारतीय समाज में विभिन्न प्रकार के बहिष्कार और भेदभाव का सामना करना पड़ता है। आज भी दलित महिलाओं को उनके परिवारों के साथ गांव के किनारे पर अलग–अलग बस्तियों में या गांव के एक कोने के मोहल्लों में, नागरिक सुविधाओं से रहित पेयजल, स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा, सड़कों तक पहुंच आदि से वंचित किया जाता है। शहरी क्षेत्रों में उनके झुग्गी बस्तियों में बड़े पैमाने पर घर पाए जाते हैं जो आमतौर पर बहुत ही अस्वच्छ वातावरण में स्थित होते हैं। दलित महिलाएं सबसे कमजोर समूह, जो आसानी से शोषण और हिंसा के शिकार होते हैं। भारतीय समाज में उनका जीवन सबसे असुरक्षित है। भारतीय समाज की माध्यमिक भूमिका पितृसत्तात्मक और पदानुक्रमित संरचना के कारण, उनमें से 90 प्रतिशत कई समस्याओं का सामना कर रहे हैं, उन्हें पुरूषों की तुलना में अधिक हद तक हिंसा का सामना करना पड़ा। धार्मिकता के नाम पर उनका शोषण जैसे नग्न पूजा' देवदासी की प्रथा और इसी तरह की अन्य प्रथाओं ने उन्हें हिंसा और भेदभाव की प्रति अधिक विनम्र बना दिया (Encyclopedia of dalit in Idia, 2002)। उनमें से अधिकांश खेतिहर मजदूर के रूप में काम कर रही हैं। इस प्रकार दलित महिलाओं के सामाजिक नुकसान और सशक्तिकरण के बीच ऐतिहासिक और समकालिक दोनों संबंध हैं।

मैला ढ़ोने वाली ज्यादातर दलित महिलाएं है जिनका कार्य सूखे गड्डे वाले शौचालयों से मानव मल को साफ करना है। मैला ढ़ोने में लगे लोगों को दलितों में सबसे निचले पायदान पर देखा जाता है, उनके साथ भेदभाव किया जाता है (Human Rights Watch, 2009)। इन व्यवसायों को न केवल उनकी अनिश्चितता और घटिया काम करने की स्थिति की विशेषता है, बल्कि आमतौर पर श्रम सुरक्षा कानूनों और नीतियों से भी बाहर रखा जाता है, दलित महिलाएं जिन्हें अपमानजनक कार्य करने के लिए मजबूर नहीं किया जाता है, उनके साथ कम मजदूरी, लंबी अवधी की बेरोजगारी और काम के कम अवसरो के माध्यम से भेदभाव किया जाता है। उन्हें दूसरों द्वारा काम पर रखने में अधिक कठिनाई होती है क्योंकि व्यवसाय के मालिक आमतौर पर अपनी ही जाति के लोगों को काम पर रखना पसंद करते हैं। श्रम अधिकारों के संरक्षण के उपायों की कमी के सथ जोखिम भरे कार्यस्थलों ने प्रवासी दलित महिलाओं को व्यवसायिक चोट के प्रति अधिक संवेदनशील बना दिया है। इसके अलावा, उप–ठेकेदारअ ल्पकालिक श्रम की उभरती समस्या के कारण कार्यस्थल पर घायल होने पर मुआवजे का दावा करना उनके लिए और अधिक कठिन हो जाता है। कार्यस्थल की चोट के मुआवजे के लिए नियोक्ता की जिम्मेदारी उस ब्रोकर को हस्तांतरित की जा रही है जिसने कार्यकर्त्ता को उप–अनुबंधित किया है। दलित महिलाएं नियोक्ताओं, प्रवास ऐजेंटो, भ्रष्ट नौकरशाहों और आपराधिक गिरोहों द्वारा दुर्व्यवहार और शोषण के लिए सबसे अधिक सुरक्षित है। कई स्थितियों में दलित महिलाओं को यह नहीं पता होता है कि वे किन अधिकारों की हकदार है और इन अधिकारों का दावा कैसे करे, इसलिए दुर्व्यवहार के अधिकांश मामले दर्ज नहीं होते हैं।

हर साल काम की तलाश में लाखों दलित परिवार पलायन करते हैं। गांवों में आजीविका के धराशायी होने के कारण वे पलायन को मजबूर है। प्रवासियों में दलित महिलाएं सबसे ज्यादा असुरक्षित हैं। मौसमी प्रवास के कारण उन्हें भरी चुनौतियां और संकट का सामना करना पड़ता है। कार्यस्थल पर, प्रवासी दलित महिलाओं को अनिवार्य रूप से लंबे समय तक काम पर रखा जाता है। अर्ध–कुशल, कम–कुशल या अकुशल महिला प्रवासियों को कम वेतन देने वाले, असंगठित क्षेत्र में रखा जाता है, जिसमें शोषण का अधिक

जोखिम होता है। दासता की तस्करी भी दलित महिलाओं के बड़े अनुपात के प्रवास में योगदान करती है। दलित महिला प्रवासियों को उन खतरों का सामना करना पड़ता है जो पर्याप्त अधिकारों की सुरक्षा और सुरक्षित प्रवास और कानूनी प्रावधान के अवसरों की कमी की गवाही देते हैं। उनके सामाजिक नुकसान तब से अस्पृश्यता के अभ्यास के रू‍प में प्रकट हुए हैं, जिसमें सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में उनके खिलाफ किए गए भेदभाव और अत्याचार शामिल हैं। यद्यपि अस्पृश्यता और सामाजिक भेदभाव की प्रथा को कानूनी रूप से समाप्त कर दिया गया है, फिर भी यह उच्च परिमाण पर बनी हुयी है।

वर्ष 2006 से 2011 के बीच दलित महिलाओं के प्रति विभिन्न प्रकार कि हिंसा

सारणी – 1 भारत में दलित समुदाय के खिलाफ अपराध (2006–2011)

अपराध	वर्ष						% variation (2010-2011)
	2006	2007	2008	2009	2010	2011	
Murder	673	674	626	624	570	673	18
Rape	1217	1349	1457	1346	1349	1557	15
Kidnapping & abduction	280	332	482	512	511	616	21
Dacoity	30	23	51	44	42	36	-14.3
Robbery	90	86	85	70	75	54	-28.0
Arson	226	238	225	195	150	169	13
Hurt	3760	3814	4216	4410	4376	4247	-3
Protection of civil rights acts	405	206	248	168	143	67	-53
SC/ST (Prevention of Atrocities) Act	8581	9819	11602	11143	10513	11342	8
Others	11808	13490	14623	15082	14893	14958	0
Total	27070	30031	33615	35594	32712	33719	3

Source: National Crime Records Bureau, Reports of various years (accessed on 19.07.2012

राजनीतिक भागीदारी और सशक्तिकरण

ग्रामीण महिलाओं को राजनीतिक रूप से हाशिए पर रखा गया है, ग्रामीण दलित महिलाओं को निर्णय लेने की प्रक्रिया में बहुत ही कम बोलने दिया जाता है। भारत में स्थानीय पंचायत में दलितों के प्रतिनिधित्व के लिए कोटा प्रणाली है लेकिन इनमें दलित महिलाओं की भूमिका दलित पुरूषों के अधीनस्थ है। जो दलित महिलाएं पंचायत में अपनी शक्ति का प्रयोग करने का प्रयास करती है उन्हें पुरूषो और प्रमुख जाति द्वारा प्रतिक्रिया, दबाव और कभी–कभी हिंसा का सामना करना पड़ता है अधिकांश उदाहरणों में एक दलित महिला, पंचायत में अपनी आवाज उठाने का कोई सार्मथ्य नहीं जुटा पाती हैं। क्योंकि उसका पति उसका प्रतिनिधित्व करता है और निर्णय लेता है। उसे तब तक घर पर रहने के लिए मजबूर किया जाता है जब तक कि वह खुद के लिए पंचायत सीट पर कब्जा न कर ले (एफ.ई.डी.ओ.– सितम्बर 2013)।

दलित महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति

मानव संसाधन विकास के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण बिंदु है और यह सामान्य रूप से महिलाओं और विशेष रूप से दलित महिलाओं को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह दलित महिलाओं की मुक्ति का एक बहुत ही शक्तिशाली साधन है। यह न केवल आर्थिक विकास की संभावनाओं में सुधार करता है बल्कि आत्मविश्वास को भी बढ़ावा देता है और बदलते आर्थिक सामाजिक परिदृश्य से आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए क्षमता निर्माण में मदद करता है। लेकिन, दलित समुदायों के ऐतिहासिक अनुभव विशेषकर शिक्षा के संदर्भ में अभाव और उत्पीड़न पर आधारित थे। भारतीय जाति व्यवस्था में तथाकथित प्रदूषित और निम्नतम स्थिति के कारण उन्हें पारंपरिक रूप से सीखने से वंचित कर दिया था। आजादी के पश्चात भारत सरकार ने दलितों के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए संविधान में कई सुरक्षात्मक उपाय किए हैं।

अस्पृश्यता निवारण अधिनियम (अनुच्छेद–17), भिछावृत्ति तथा बलातश्रम निषेध (अनुच्छेद–23)। सकारात्मक भेदभाव, सरकारी सेवाओं और पदों नियुक्तियों में आरक्षण (अनुच्छेद–335) आदि इसके कुछ उदाहरण है। इसी प्रकार से राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में स्पष्ट प्रावधान है। जैसे कि अनुच्छेद–46 राज्य विशेष रूप से अनुसूचित जातियों के लोगों के कमजोर वर्गों के शैक्षणिक और आर्थिक हितो को विशेष देखभाल के साथ बढ़ावा देगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा। इन

संवैधानिक निर्देशों को पूरा करने के लिए सरकार द्वारा छात्रवृत्ति, वजीफा, पाठ्यपुस्तकें, स्टेशनरी, वर्दी, मध्ययान भोजन, और छात्रावास की सुविधा प्रदान करके तथा शैक्षणिक सुविधाओं का विस्तार करके दलितों के शैक्षिक मानको में सुधार के प्रयास किए गए हैं। यद्यपि यह सच है कि दलित महिलाओं की साक्षरता दर में सुधार हुआ है फिर भी गैर–दलित महिलाओं की साक्षरता दर की तुलना में दलित महिलाओं की साक्षरता में दशकीय वृद्धि दर बहुत धीमी है।

सारिणी –2 दलित और गैर–दलित महिलाओं का साक्षरता दर (1971–20)

वर्ष	साक्षरता दर (%) दलित महिलाएं गैर–दलित महिलाएं ग्रामीण/शहरी					
	कुल	ग्रामीण	शहरी	कुल	ग्रामीण	शहरी
1971	6.00	5.00	17.80	18.70	13.00	42.00
1981	11.00	8.00	24.00	30.00	18.00	48.00
1991	24.00	19.00	42.00	39.00	31.00	64.00
2001	41.90	384.00	57.00	54.00	47.00	73.00
2011	57.00	53.00	68.60	65.00	59.00	80.00

दलित महिलाओं की आर्थिक स्थिति

दलितों के लिए रोजगार के अवसर पैदा करने के लिए सरकार ने आरक्षण नीति लागू की हालांकि आरक्षण प्रणाली से दलित महिलाओं को केवल न्यूनतम लाभ हुआ है। यह आंशिक रूप से इसलिए है क्योंकि यह प्रणाली केवल सरकारी क्षेत्रों पर लागू होती हैं, इसके अलावा इस प्रणाली के त्रुटिपूर्ण होने का भी दावा किया जाता है क्योंकि उच्च जाति के राजनेताओं के वर्चस्व वाली सरकार की ओर से प्रतिबद्धता की कमी के कारण कई नौकरियों में यह प्रावधान अधूरा छोड़ दिया गया है तथा अधिकांश आरक्षण कम कौशल और कम वेतन वाली नौकरियों में है। 2001 की जनगणना के आंकड़े बताते है कि 26% गैर–दलित कार्यबल की तुलना में आधे से अधिक दलित कार्यबल भूमिहीन खेतिहर मजदूर थे। जिनके पास जमीन है, उनमें से एक विशाल बहुमत, यानी लगभग 86% छोटे और सीमांत किसान है। 2011 की जनगणना में, 13.29 मिलियन दलित महिला मुख्य श्रमिकों में से, 8.83 मिलियन खेतिहर मजदूर के रूप में और 2.33 मिलियन कृषक के रूप में बताए गय थे। 3.93 मिलियन दलित महिलाओं को भी सीमांत श्रमिकों के रूप में सूचित किया गया (जनगणना–2011)। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (एन०एस०एस०–2014) रोजगार के लिए 200 व्यक्तियों पर अध्ययन आकड़े बताते है कि 60% से अधिक दलित श्रमिक ग्रामीण क्षेत्रों में रहते थे और रोजगार के लिए मजदूरी पर निर्भर थे। वर्ष 2006 से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार दर की वर्तमान दैनिक स्थिति (सी०डी०एस०) दलित महिला श्रमिको के लिए 21.2% थी, जबकि दललित पुरूष श्रमिकों के लिए 46.2% थी (एन०एस०एस०–2014)। इसी तरह शहरी क्षेत्रों में दलित महिला–श्रमिकों के लिए सी०डी०एस० रोजगार दर 14.0% थी जबकि अन्य परिवारों के लिए यह 45.8% थी। वर्ष 2004–2005 में 43.7% दलित महिलाएं स्व–नियोजित थीं, 5% नियमित वेतनभोगी कर्मचारी थीं और 52% अनौपचारिक श्रमिक थी। 2009–2010 में, 35.9% दलित महिलाएँ स्व–नियोजित थी, 6.5% नियमित वेतनभोगी कर्मचारी थीं और 57.6% अनौपचारिक श्रमिक थीं (GOI, NSSO, Employment and Unemployment Situation in India: July 2009- June 2010)। दलित महिलाओं और गैर–दलित महिलाओं के बीच असमानता बेरोजगारी दर में परिलक्षित होती हैं। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में अन्य गैर–दलित महिला श्रमिकों के लिए 14% की तुलना में दलित महिलाओं के लिए सी०डी०एस० पर आधारित बेरोजगारी दर लगभग 2.10% थी।

अल्प–रोजगार की उच्च दर और निम्न मजदूरी आय के साथ जुड़े मजदूरी–श्रम के उच्च अनुपात के साथ, दलित परिवार की निम्न आय और उच्च स्तर या गरीबी की मात्रा से पीड़ित है। यह गरीबी रेखा से नीचे आने वाले व्यक्तियों के अनुपात को भी दर्शाता है, और जिसे उपभोग व्यय का एक महत्वपूर्ण न्यूनतम स्तर भी कहा जाता है। इन समूहों में दलित महिला परिवारों का प्रतिनिधित्व अधिक था। कृषि और गैर–कृषि गतिविधियों में स्वरोजगार में लगे उन दलित परिवारों में गरीबी का उच्च स्तर इंगित करता है कि वे आम तौर पर छोटी खेती और कम आय वाले छोटे व्यवसायों में विशेष रूप से दलित महिलाएं केंद्रित थी (Dubey, Amaresh, 2003)। 1970 के दशक से, राज्य ने कई गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम शुरू किए हैं लेकिन दलित महिलाओं को इसका लाभ नहीं मिल पाया है। विभिन्न भूमि सुधारों जैसे कि सीलिंग और अधिशेष भूमि के वितरण से संबंधित कुछ हद तक दलितों की भूमि तक पहुंच में वृद्धि हुयी है, लेकिन से उपाय भी दलित

महिलाओं के लिए पर्याप्त नहीं है। बल्कि, इनमें दलितों और गैर–दलितों के बीच विभिन्न प्रकार के तनावो और संघर्षो को जन्म दिया है, और परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में दलितों द्वारा दलितों पर अत्याचार किए गए हैं। नई आर्थिक नीति के परिणामस्वरूप पिछले दो दशकों में समग्र रूप से बिगड़ती ग्रामीण आर्थिक स्थिति के कारण उनकी आर्थिक स्थिति खराब हो गई है।

इसके अलावा प्रवासी दलित महिलाओं के लिए उद्यमशीलता के अवसर बेहद सीमित हैं क्योंकि उनके पास ऋण सुरक्षित करने के लिए पूजीं और आनुषंगिक राशि दोनों की कमी है। दलित भले ही छोटे व्यवसाय खोलने में सफल हो जाते है, लेकिन गैर दलित उन दुकानों को संरक्षण नहीं देते है (Artis et al., 2003)। इन्हें शहरों में सामाजिक एकीकरण की समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। बड़ी संख्या में मानवाधिकारों के उल्लंघन की खबरें आ रही हैं। एक अन्य क्षेत्र जहां शोषण बड़े पैमाने पर होता है, वह है, जबरन श्रम जो अवैध भूमिगत अर्थव्यवस्था में होता है और इसलिए राष्ट्रीय आंकड़ों से बचने की प्रवृत्ति होती है। वे असुरक्षित कामकाजी परिस्थितियों के संपर्क में आने के उच्च जोखिम का सामना करते हैं। यह आबादी बीमारियों के लिए उच्च जोखिम में है और स्वास्थ्य सेवाओं तक कम पहुंच का सामना कर रही है। काम की आकस्मिक प्रकृति के कारण निवास का तेजी से परिवर्तन उन्हें निवारक देखभाल से बाहर कर देता है और शहर में अनौपचारिक कार्य व्यवस्था में उनकी काम करने की स्थिति उन्हें पर्याप्त उपचारात्मक देखभाल तक पहुंच से वंचित करती है।

स्वास्थ्य क्षेत्र में दलित महिलाओं की स्थिति

दलित महिलाओं के स्वास्थ्य के बारे में सांख्यिकीय जानकारी बहुत ही चिंताजनक है (Shahare, 2016)। एक सामाजिक समूह की स्वास्थ्य स्थिति जटिल रूप से सामाजिक–आर्थिक स्थिति से जुड़ी होती है, इस प्रकार किसी स्थान की स्वास्थ्य स्थिति उसके सामाजिक–आर्थिक विकास के आधार पर भिन्न होती है। भारत जैसे जाति–विभाजित समाज में स्वास्थ्य की स्थिति सभी क्षेत्रों भिन्न होती है, और यह खण्ड दलित और गैर–दलित महिलाओं के स्वास्थ्य परिणामें और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच का तुलनात्मक विश्लेषण प्रदान करता है (Mukerjee and Sabharwal, 2015)। समाज के किसी भी अनय वर्ग के विपरीत, दलित महिलाओं को सामाजिक बहिष्कार और भेदभाव के कारण सरकार द्वारा प्रदान किए गए अल्प स्वास्थ्य देखभाल लाभों से लाभान्वित होने की संभावना कम है। भारत सभी क्षेत्रों में वृद्धि के बावजूद लाखो दलित सबसे बुनियादी अधिकारों से बाहर है और सामूहिक भूख, निरक्षरता ओर अस्वस्थता के अत्याचारों के आधीन है।

अखिल भारतीय स्तर पर, राज्यों के साथ–साथ राज्यों के भीतर सामाजिक समूहों में मृत्यु दर और पोषण में असमानताएं बढ़ रही है। बाल और मातृ मृत्यु दर के आकड़े अनेक राज्यों में भिन्न हो सकते हैं लेकिन राज्य भर में गैर दलित महिलाओं की तुलना में दलित महिलाओं में मृत्यु दर अधिक है। हालांकि यूपी, बिहार, छत्तीसगढ़ और झारखण्ड जैसे खराब प्रदर्शन करने वाले राज्यों में अन्तर अधिक है। दुर्भाग्य से ये अनुसूचित जाति की पर्याप्त आबादी वाले भी हैं (Shahare, 2016)। दलित महिलाओं की स्वास्थ्य स्थिति खराब काम का माहौल, मानसिक तनाव, कार्य के लंबे घंटों, भारी वनज उठाने, खतरनाक और लंबी सामग्री से संपर्क, काम की असुविधाजनक स्थिति आदि से जुड़ी हुयी है। व्यापारिक खतरों के अलावे वे, कुपोषण, रक्ताल्पता, प्रसव के बाद की जटिलताओं, तपेदिक, आंखों की समस्याओं और उनके आहार श्रृखंला में पोषण का निम्न स्तर होने के कारण सामान्य दुर्बलता, बच्चे पैदा करने और लालन पालन करने से निरन्तर समस्याओं से पीड़ित हैं। 1998–1999 में दलित महिलाओं की कम से कम 56% महिलाएं एनीमिया से पीड़ित थी, और 70% से अधिक महिलाओं को प्रसव घर पर हुआ और कुल महिलाओं की आबादी में से केवल पांचवा हिस्सा का प्रसव स्वास्थ्य देखरेख संस्थानों में हुआ। इनमें से 40% से अधिक प्रसव टी०बी०ए० (विलेज दाई) द्वारा किया गया था।

निष्कर्ष

वैश्विक प्रक्रियाओं, बाजार अर्थव्यवस्था और विकास के राज्य प्रायोजित निजीकरण से पिछले दशकों में हाशिए पर रहने वाले लोगों को और अधिक हाशिए पर डाल दिया है। इसके अलावा, वैश्वीकरण समुदाय और भारत में विशेष रूप से दलितों के लोगों के पहचान आयामों पर अपना प्रभाव पैदा कर रहा है। वैश्वीकरण के प्रभावों के पैटर्न ने सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को आकार दिया है। इसलिए सरकार के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वह दलित महिलाओं के लिए कल्याणकारी उपाय शुरू करे और स्वस्थ वातावरण का निर्माण करे। साथ ही साथ दलित महिलाओं के पिछड़ेपन, असमानता, उनके साथ हो रहे

दुर्व्यवहार के लिए कई सामाजिक कारक भी जिम्मेदार हैं जैसे गरीबी, निरक्षरता, घर का माहौल, शिक्षा के प्रति उदासीन रवैया, पारिवारिक समर्थन की कमी, लिंग भेदभाव, जाति हिंसा आदि। लेकिन इन कारकों के बावजूद, दलित महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक, शैक्षिक प्रगति पहले से थोड़ा बेहतर है। इस मुद्दे पर खुद दलित महिलाओं की नारीवादी स्थिति पर काम करने की जरूरत है। दलित महिलाओं की भूमिका और रोजगार के अवसरों को प्रभावित करने वाली मूल समस्या पर्याप्त स्थिति की कमी के कारण उनकी असहाय निर्भरता से उत्पन्न होती है। दलित महिलाओं के उत्थान की कई योजनाएं राज्य और केन्द्र सरकार द्वारा बनायी गयी हैं, लेकिन ऐसी योजनाओं और कार्यक्रमों का लाभ शायद ही उन तक पहुंच पाता है। दलित महिलाओं का मुद्दा समकालीन भारतीय समाज में उनके लोकतांत्रिक स्थान को संकुचित करने के कारण आज खामोश किए गए नए सामाजिक आंदोलनों के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण महत्व रखता है। Simone de Beauvoir says "One is not born as a woman, but rather becomes a woman" अर्थात महिला पैदा नहीं होती अपितु बनायी जाती है। "Change your life today. Don't gamble on the future, act now, without delay" (Simone de Beauvoir). ठीक इसी तरह महिलाओं को अगर अपनी स्थिति समाज में सुधारनी है, अपने साथ हो रहे असमानताओं, भेदभाव, हिंसा के खिलाफ आवाज उठानी है तो उन्हें आज ही उठना पड़ेगा बिना किसी डेरी के।

संदर्भ सूची

1. सुमन (2004), दलित महिलाएं, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली 2004 पेज नं० 96।
2. पाण्डे, एस०, के०, (2004) प्राचीन भारत, प्रयाग एकेडमी पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद।
3. सिंह, वी० एन० (2012) जनमेजय, नारीवाद, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
4. Manorma, Ruth (2008) Background Information On Dalit Women in India.
5. Ghosal, (2014) Dalit And Backword Women, Anmol Publication Private Ltd. New Delhi.
6. एफ ई डी ओ नेपाल और इण्टरनेशनल दलित सालिडरिटी नेटवर्क–सितम्बर।
7. Proggya Ghatak (2011) Societal Status of Dalit Women in India. Women's Link 2011, XVII.
8. Shahare Virendra Empowerment of dalit Women: Policies Programmes and Perspectives, 2016.
9. Mukerjee Nidhi, Sabharwal Sadana, Status of Dalit Women in India. Indian Institute of dalit studies 2015, IX.
10. Census of India 2011.
11. National Crime Research Bureau Report of Vankkhi Yeos (19.07.2012).

मुगल काल के शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक के स्वरुप एवं कार्य का अध्ययन

कौशल किशोर*
डॉ. शत्रुघ्न कुमार पाण्डेय**

शिक्षक किसी भी समाज का दर्पण होता है जो समाज की दशा और दिशा को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से व्याख्यायित करता है। शिक्षक हर युग में पूजनीय रहे है समाज में इनका स्थान सर्वोपरी रहा है। हालाँकि युग के साथ-साथ इसके स्वरुप और कार्य में परिवर्तन आते रहे हैं। मुग़ल काल में शिक्षको के कार्य और स्वरुप को समझने के लिए इनसे हर शासकों के काल को टटोलना होगा तभी इनके कार्य और स्वरुप वास्तविक स्थिति हमारे सामने आ पायेगी।

जहाँ तक मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर का संबंध एक सुशिक्षित परिवार से था। उसके पूर्वज तैमूर और उनके नाना यूनुस अपने समय के उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति थे। उनके पिता उमर शेख मिर्जा को भी अध्ययन एवं पुस्तकों का बड़ा लगाव था। यदि इतिहासकारों की माने तो बाबर के प्रारंभिक गुरु या शिक्षक उमर शेख मिर्जा को माना जा सकता है। क्योंकि बाबर का आरंभिक जीवन बहुत ही संघर्ष में व्यतीत हुआ था। लेनपूल के अनुसार 5 वर्ष की आयु में बाबर को समरकंद लाया गया और अगले 6 वर्ष तक उसने वहां शिक्षा प्राप्त की थी। बाबर की शिक्षा दीक्षा पर उसके परिवार की महिलाओं का भी गहरा प्रभाव पड़ा था। यानी बाबर सिर्फ शिक्षकों के द्वारा शिक्षित नहीं हुआ बल्कि शिक्षिकाओं के द्वारा भी शिक्षित हुआ और उसकी पहली शिक्षिका उसकी माता जी थी। जो एक विद्वान महिला थी तथा तुर्की फारसी भाषा में दक्ष थी। उसकी दादी इंसान दौलत बेगम भी सुशिक्षित महिला थी। जिसका प्रभाव बाबर पर उसकी मां की अपेक्षा अधिक पड़ा था। यानी उनकी दादी उनकी माता से भी बड़ी शिक्षिका के रोल में बाबर के जीवन को बनाने में दिया। बाबर के पिता हनफी प्रणाली के अनुयायी थे, और उनकी इस प्रबल भावना ने बाबर के आदर्शों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि बाबर को नियमित शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त नहीं हो सका क्योंकि किसी ऐसे विशेष शिक्षक या प्रशिक्षक का उल्लेख नहीं मिलता है, जिनको स्वतंत्र रूप से यह दायित्व सोपा गया हो। वह सिर्फ अपने पिता के सूचित संगतियों से या सूचित माता-पिता से ही लाभान्वित हुआ। बाबर की आत्मकथा से ज्ञात होता है कि शेख मजीर, खुदा-ए-बिर्दी, बाबा कुली और मौलाना काजी उसके निजी शिक्षक थे। बाबर मौलाना काजी से बहुत प्रभावित हुआ था और आवश्यकता से अधिक उसका सम्मान करता था। उसने इन शिक्षकों से न केवल लिखना पढ़ना सीखा वर्णन जीवन जीने की शिक्षा भी प्राप्ति की। उसने फिरदौस का शाहनामा निजामी और अमीर खुसरो की कविताएं और सादी का नीति शास्त्र पढ़ा था। बाबर की आत्मकथा से यह भी पता चलता है कि सरफुद्दीन अली का जफरनामा अबु अल मिनहाज की तबकात ए नसिरी और पवित्र कुरान का उसने गहनता से अध्ययन किया था। बाबर ने अपने शिक्षा के लिए दो प्रसिद्ध उलमाओं को नियुक्त किया था जिनके नाम शेख फरीद बाबा कुली एवं मौलाना अब्दुल्लाह थे। उनके निर्देशन में बाबर ने कुछ ज्ञान प्राप्त किए थे। बाबर के जीवन काल में महत्वपूर्ण शिक्षकों के नाम के रूप में इन्हीं व्यक्तियों को लिया जा सकता है जिसका वर्णन ऊपर में किया गया है।

मुग़ल संस्थापक बाबर ने भी अपने शहजादों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया। राजकुमारों की शिक्षा हेतु राजमहलों में अतिरिक्त व्यवस्था की जाती थी। सबसे प्रिय शहजादे में हुमायूं का नाम प्रसिद्ध था, जो स्वयं बाबर द्वारा भी अभिव्यक्त किया गया है माहम यद्धपि मुझे अन्य पुत्र भी है परंतु मैं किसी से उतना प्यार

* पीएचडी स्कोलर विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखण्ड
** सहायक प्रोफेसर संत कोलंबस कोलेज, हजारीबाग, झारखण्ड

नहीं करता जितना हुमायूं को। इससे ऐसा विश्वास किया जा सकता है कि उसने अपने पुत्र की शिक्षा में कितनी गहरी रुचि रखता होगा। राजकुमार को 4 वर्ष 4 माह और 4 दिन के होने के बाद प्रचलित औपचारिकता के अनुरूप शिक्षक के सम्मुख लाया गया एवं उसका मकतब संस्कार संपन्न हुआ। बाबर ने हुमायूं को शिक्षा में अभिवृत्ति लेने हेतु प्रेरित किया। उसने अपने वंशानुक्रम के अनुसार राजकुमार हुमायूं को गणित, ज्योतिष सहित भूगोल एवम धर्म के अध्ययन में उसे सर्वोत्कृष्ट विद्यार्थी बनाने का आधार प्रदान करने के लिए अलग-अलग विषय के अलग-अलग शिक्षक नियुक्त किए। बाबर सदैव शिक्षकों की संगति में रहता था इसलिए हुमायूं भी इससे प्रभावित हुआ। शिक्षा के क्षेत्र में एक पिता के रूप में जो बेटे के प्रति उत्तरदायित्व होता है उसका बाबर ने पूर्ण निर्वहन किया।

बाबर युद्धों एवं विजयों में व्यस्त रहने के कारण हुमायूं की शिक्षा में गंभीर रुचि नहीं ले सका तथापि स्रोतों के माध्यम से ज्ञात होता है कि बाबर अपने पुत्रों में हुमायूं के लिए हिज्जे, व्याकरण, वाक्य विन्यास की गलतियों को सुधार करता था। इसे स्पष्ट होता है उसे अपने पुत्रों की शिक्षा में रुचि भी थी और वह उनके शैक्षिक विकास के लिए शिक्षक की भूमिका भी निभाता था। बाबर ने हुमायूं की शिक्षा और उसे योग बनाने हेतु यथासंभव प्रयास किए थे। समरकंद हाथ से निकल जाने के बाद जब काबुल में बाबर का जीवन स्थाई हो गया, तब हुमायूं का शैशव काल था। बाबर ने यहां हुमायूं की शिक्षा दीक्षा का समुचित प्रबंध किया और उसके लिए योग्य अध्यापकों को नियुक्त किया।

बाबर पुत्र हुमायूं जब कभी अपने पिता को पत्र लिखता था तो उसके पिता उसके पत्र को सूक्ष्मता के साथ पढ़ता था तथा छोटी-छोटी त्रुटियों का ध्यान पूर्वक निरीक्षण करता था। उसे पुनः हुमायूं के पास त्रुटिरहित पत्र को वापस भेजता और निर्देश देता था कि शब्दों,वाक्यों की त्रुटियों को पुनः सुधार करो। उसने स्पष्ट एवं स्वच्छ लेखन पर भी जोर दिया। इस तरह वह अपने पुत्र के सबसे अच्छे शिक्षक थे और उन्हें शिक्षक की भूमिका निभाई जो सिद्धांत ना होकर व्यावहारिक तौर पर हुमायूं को शिक्षित करने की कोशिश किए।

यह बहुत आश्चर्य की बात है कि बाबर ने अपनी आत्मकथा में हुमायूं के विद्यालय का उल्लेख नहीं किया है। किंतु यह जानकारी अवश्य मिलती है कि कासिम वेंग कूंची जैसे धार्मिक व्यक्ति को बाबर ने हुमायूं का अभिभावक नियुक्त किया था। हुमायूं के प्रारंभिक शिक्षकों में ख्वाजा किलान और शेख जैनुद्दीन प्रमुख थे, जिसे उसने जिसे उसने प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण की थी। हुमायूं ने इन शिक्षकों के अधीन लिखना पढ़ना, तुर्की, फारसी,अरबी भाषा, इतिहास और धर्म साहित्य में विशेष अध्ययन किया। महिउद्दीन रूहुल्ला और मौलाना इलियास भी उसके अध्यापक थे।

हुमायूं स्वयं बहुत बड़ा विद्वान एवं विद्यानुरागी था। अतः स्वाभाविक था कि उसने अपने पुत्र की शिक्षा दीक्षा की उत्कृष्ट व्यवस्था की होगा। वह अच्छे एवम् योग्य अध्यापकों की नियुक्ति भी करता था। मुस्लिम प्रथा के अनुसार 1547 में जब अकबर की उम्र 4 वर्ष 4 माह और चार दिन हुई तो उसकी शिक्षा के लिए व्यक्तिगत अध्यापक नियुक्त किया गया। अबुल फजल और बदायूंनी दोनों ने अकबर के व्यक्तिगत अध्यापकों के नाम इस प्रकार बताएं मुला जादा, मुल्ला असीमुद्दीन इब्राहिम, मौलाना सैजिद, मौलाना अब्दुल कादिर, बैरम खान और जमीर अब्दुल लतीफ कजबिनी इनमें से प्रथम तीन अध्यापक प्रमुख व्यक्तिगत अध्यापक थे और अंतिम उसे दीवान ए हाफिज पढाते थे। इन सभी लोगों ने इस बात को स्वीकार किया कि अकबर का मस्तिष्क संग्रहणशील और उसके स्वर्ण शक्ति अत्यंत अद्भुत थी। हालांकि मुगल सम्राट अकबर के शैक्षिक योग्यता को लेकर इतिहास में काफी विवाद है कि वह साक्षर था या निरक्षर मांसेरात और एक्सवियर आदि पुर्तगाली मिशनरियों ने बताया है कि अकबर लिख पढ़ नहीं सकता था। यह बात बहुत आश्चर्जनक है कि जो व्यक्ति साक्षर निरक्षर के ऐतिहासिक विवाद में फंसा है पूरे मुगल काल में अगर शैक्षिक विकास की बात की जाए तो अकबर का काल स्वर्ण काल माना जा सकता है।

हुमायूँ पुत्र अकबर के शासनकाल के विद्वान शिक्षकों की सूची अबुल फजल ने दी है इन विद्वान शिक्षकों की सूची को विभिन्न 5 वर्गों के आधार पर तैयार किया गया विद्वानों की सूची तैयार करते समय विद्वानों की योग्यता और ज्ञान को प्राथमिकता दी गई है।

अबुल फजल के विद्वान शिक्षकों की प्रथम श्रेणी में शेख मुबारक नागौरी, शेख निजाम नरनौली, शेख अधन, मियां वजुऊद्दीन,शेख रूकउद्दीन,शेख अब्दुल अज़ीज़ देहलवी ,शेख जलालुद्दीन, शेख इस्माइल, मौलाना हुसैनुद्दीन, शेख अब्दुल गफूर, मौलाना इस्माइल आदि को रखने के अतिरिक्त इस वर्ग में हिंदू विद्वान माधव सरस्वती, मधुसूदन, नारायण आश्रम हरि जी सूर,दामोदर भट्ट, रामतीर्थ, नरसिंह, परमिंदर आदि को स्थान दिया है। इसी प्रकार द्वितीय तृतीय चतुर्थ पंचम वर्ग के विद्वानों में मुस्लिम, हिंदू विद्वान शिक्षकों के साथ संस्कृत विद्वान शिक्षकों के भी नाम उल्लेखित किए गए जिनमें से रामभद्र, नरसिंह भट्ट, जगरूप, वासुदेव मित्र, बालभद्र मिश्र,रामकृष्ण,विश्वनाथ, काशीनाथ भट्टाचार्य आदि महत्वपूर्ण है।कुल विद्वानों की गणना अबुल फ़ज़ल ने एक सौ चालीस के लगभग दी है।यानी मुगल काल में गहराई से देखें तो अकबर के काल में मुस्लिम शिक्षक के साथ-साथ हिंदू शिक्षक हिंदी भाषा शिक्षण संस्कृत भाषा शिक्षण कवियों ने शिक्षा के विकास में इस काल में अपना योगदान दिया जो अतुलनीय है।

भले ही अकबर अनपढ़ था पर उसने अपने उत्तराधिकारी शेख सलीम की शिक्षा की समुचित व्यवस्था की क्योंकि सूफी संत शेख सलीम चिश्ती की मृत्यु के बाद ही सलीम का जन्म हुआ था। अकबर इस बात को पूर्णतया जानता था कि व्यक्तित्व के विकास के लिए शिक्षित होना आवश्यक है।उसने अपने पुत्र सलीम की शिक्षा की उत्तम व्यवस्था की। मुस्लिम परंपरा अनुसार 13 नवंबर 1573 को राजकुमार सलीम 4 वर्ष 4 मार्च 4 दिन का हुआ उसी दिन उसका मकतब संस्कार अत्यंत धूमधाम से संपन्न हुआ। उसके प्रथम शिक्षक के रूप में मौलाना अमीर कलम हार्वी के नियुक्ति हुई,जो कि अपने समय का महान विद्वान व्यक्ति था 78 वर्ष की अवस्था में होने के बाद भी उसने राजकुमार सलीम की शिक्षा का उत्तरदायित्व लिया था लेकिन 1 वर्ष बाद दुर्भाग्य वर्ष उसकी मृत्यु हो गई।

सलीम के प्रथम शिक्षक की मृत्यु के पश्चात अपने समय का प्रसिद्ध विद्वान से शेख अहमद को सलीम का अतालिक नियुक्त किया गया। परंतु इस विद्वान का लंबे समय तक सलीम लाभ नहीं उठा सके और 1577 में शेख अहमद की भी मृत्यु हो गई।इसके उपरांत कई अन्य शिक्षकों ने राजकुमार की शिक्षा का भारत अपने ऊपर लिया इसी में से एक उच्च कोटि का प्रशंसनीय एवम योग्य विद्वान कुतुबुद्दीन मुहम्मद खान आतका था। अब्दुरहीम खानखाना, मुर्तजा खान दुख्खनी,सुजायत खां और नकीब खान इत्यादि उसके शिक्षक नियुक्त किए गए थे। राजकुमार सलीम के लिए ईसाई मिशनरी और व्यक्तिगत अध्यापकों के माध्यम से पश्चिम कला और विज्ञान की शिक्षा की व्यवस्था भी की गई थी जो इनके ज्ञान के विकसित सोच को बताती है।

जहांगीर अपने उत्तराधिकारियों के लिए उचित रूप से शिक्षा प्रबंधन किया खुर्रम में जो गुण विद्यमान थे वह उसके अन्य भाइयों में नहीं थे। राजकुमार खुर्रम (शाहजहां) की प्रारंभिक शिक्षा पिता और पितामह के संरक्षण में शुरू हुई थी। अकबर एवं जहांगीर दोनों ने ही खुर्रम की शिक्षा में विशेष रुचि ली तथा शिक्षा की समुचित व्यवस्था की। स्वयं जहांगीर अपनी आत्मकथा में लिखता है कि मेरे पिता जितना खुर्रम को प्यार करते थे तथा विशिष्ट ध्यान देते थे उतना मेरे अन्य बच्चों पर कभी ध्यान नहीं दिया। जब खुर्रम 4 वर्ष 4 महीने और चार दिन का हुआ तब इस्लाम धर्म के अनुसार संस्कार किया गया प्रथम अध्यापक के रूप में मुला कासिम बेग तबरेजी को नियुक्त किया गया था। वह अपने समय के प्रतिष्ठित विद्वान एवं वैज्ञानिक थे। उसके अन्य शिक्षकों में हकीम अली गिलानी,शेख सूफी और अबुल खैर,मीर मुराद दक्कनी उल्लेखनीय है। शिक्षा में सैनिक शिक्षा पर भी इसे ध्यान दिया जाता था विभिन्न शाखाओं के सैन्य विज्ञान शिक्षक, तीरंदाजी शिक्षक,

बंदूक चलने वाले शिक्षक,घुड़सवारी शिक्षक,तलवार चलाने वाले शिक्षक आदि की व्यवस्था की जाती थी। मीर मुराद जुवेनी से तीरंदाजी की तालीम दी गई। इसके बाद राजा शालीवाहन ने घुड़सवारी और बंदूक चलाना शाहजहां को सिखाया। इस तरह योग्य अध्यापकों के संरक्षण में फारसी भाषा एवं कविता आदि का ज्ञान भी शाहजहां को प्रदान किया गया।

औरंगजेब शाहजहां के बाद मुगल सम्राट बना। शाहजहां ने अपने पुत्रों की शिक्षा के लिए उत्तम व्यवस्था की थी तथा प्रत्येक को अपने रुचि के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने की स्वतंत्रता दी।औरंगजेब की शिक्षा प्रारंभिक अवस्था में ही शुरू हो गई थी। जब उसकी व्यवस्था 10 वर्ष की होगी तभी उसके नियमित और व्यवस्थित शिक्षा प्रारंभ हो गई थी।उसके प्रथम शिक्षक के रूप में प्रतिष्ठित विद्वान सादुल्लाह खां को नियुक्त किया गया था। अपने अध्ययन काल में औरंगजेब ने अपने तीक्ष्ण बुद्धि और प्रतिभा का परिचय दिया और शीघ्र ही कुरान और हदीस के निपुणता प्राप्त कर लिया था। वह अरबी और फारसी साहित्य का विद्वान हो गया। उसके स्मरण शक्ति इस्लाम की संस्कृति के पवित्र और कुलशित दोनों ही प्रकार के साहित्य का भंडार थी। औरंगजेब में हिंदी भाषा का ज्ञान और बोलने की क्षमता भी विद्यमान थी।

औरंगजेब को जिन प्रारंभिक शिक्षकों ने शिक्षा दी उनसे उसे संतोष नहीं हुआ। पादशाहनामा से जानकारी मिलती है कि मेरे मोहम्मद हाशिम गिलानी औरंगजेब का अन्य शिक्षक था। उसने विभिन्न विद्वानों से अलग-अलग विषयों की शिक्षा प्राप्त किया था। उसके अन्य शिक्षकों में अब्दुल लतीफ सुल्तानपुरी, मुल्ला मोहन बिहारी,सैयद मोहम्मद कन्नौज, मुल्ला शेख अहमद,मुल्ला जीवन, दानिश खान, शेख अब्दुल कवि और मोहम्मद फरिश आदि थे। बर्नियर ने लिखा है कि मुल्ला सालेह भी औरंगजेब का एक शिक्षक था। जादुनाथ सरकार मुल्ला सालेह को औरंगजेब का शिक्षक मानते हैं। इस प्रकार देखें तो मुगल काल में बाबर के समय से लेकर औरंगजेब के समय तक अनेक विद्वान शिक्षकों की भिन्न-भिन्न क्षेत्र के भिन्न विषय ओके सूची को देखा जा सकता है और मुगल सम्राट विद्वान शिक्षकों के बहुत इज्जत करते थे और उनको उचित सम्मान प्रदान करते थे।

अनेक विद्वानों की भांति एस एम जाफर ने भी यह कहा है कि मुगलकालीन समाज में अध्यापकों का सम्मान होता था। विद्यार्थियों उनके प्रति विनम्र और भक्तिपूर्ण होते थे। शिक्षक सेवा करना है अपना परम कर्तव्य समझते थे।जिन मदरसे में छात्रावास की व्यवस्था थी वह शिक्षक शिक्षार्थी की दोनों एक साथ रहते थे और दोनों में घनिष्ठता के साथ-साथ आत्मीय लगाव उत्पन्न हो जाता था। शिक्षक ऐसा कोई भी कार्य नहीं करते थे, जिसके कारण उनके चरित्र पर बुरा प्रभाव पड़ता हो। समाज में उनका स्थान उच्च था। यद्यपि उसकी आय के स्रोत कम थे, किंतु उनमें आत्मविश्वास था और वे सभी जगहों पर आदर के पात्र थे।इतना होने के उपरांत शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच मधुर संबंधियों के ह्रास के चिन्ह भी दिखाई देते हैं। औरंगजेब ने अपने शिक्षक मुल्ला सालेह से मिलने से मना कर दिया था और बाद में मिलने पर कठोरता से व्यवहार करते हुए उसे अज्ञातवास की सजा दी थी।

मुग़ल काल में शिक्षक कुछ निश्चित सिद्धांतों से बना था शिक्षा का कर्तव्य अत्याचार धनी और निर्धन दोनों प्रकार के विद्यार्थी की सहायता करना तथा उनका सम्मान करना होता था शिक्षार्थी भी शिक्षक का सम्मान करते थे शिक्षक सदैव अपने वरिष्ठ शिष्यों से सहायक शिक्षकों की तरह काम लेते थे एस. ए. जाफर ने लिखा है कि गुरु शिष्य के बीच घनिष्ठ संपर्क का सजीव प्रमाण "अग्र शिष्य"परंपरा है। मुग़ल साम्राज्य के पतन का प्रभाव शिक्षको के स्वरुप और कार्य पर भी पड़ा और औपनिवेशिक काल में तो शिक्षकों की कार्य और स्वरुप के साथ इसकी परिभाषा में भी बदलाव आ गया ।

संदर्भ

- बेवरीज़ एच,लेख,बाबर बादशाही गाजी,कलकता रिव्यू,भाग,(105कलकता,1897)।
- बाबर,बाबरनामा,अँग्रेजी(अनु.ए॰एस.बेवरीज़)भाग-1,(दिल्ली,1970)
- लेनपूल स्टेनले, द एम्परर बाबर (ऑक्सफोर्ड,1899)
- गनी एम.ए.हिस्ट्री ऑफ पर्शियन लङ्ग्वेज एंड लिटरेचर एट दे मुग़ल कोर्ट (इलाहाबाद,1929-30),पृ-5.
- गनी एम.ए.हिस्ट्री ऑफ पर्शियन लङ्ग्वेज एंड लिटरेचर एट दे मुग़ल कोर्ट (इलाहाबाद,1929-30)
- बाबर,बाबरनामा,अँग्रेजी(अनु.ए॰एस.बेवरीज़)भाग-1,(दिल्ली,1970)
- बेगम गुलबदन, हुमायूँनामा,(अनु।बेवरीज़) लंदन,1902
- तजकिरात-उल-सलातीन,(मन्यूस्क्रिप्ट इन बोहार कलेक्सन ऑफ नेशनल लाइब्रेरी ,कलकता),भाग1
- गनी एम.ए.हिस्ट्री ऑफ पर्शियन लङ्ग्वेज एंड लिटरेचर एट दे मुग़ल कोर्ट (इलाहाबाद,1929-30),
- बेगम गुलबदन, हुमायूँनामा,(अनु।बेवरीज़),लंदन,1902
- प्रसाद,ईश्वरी,लाइफ एंड टाइम्स ऑफ हुमायूँ (बंबई,1955)
- बाबर,बाबरनामा,अँग्रेजी(अनु.ए॰एस.बेवरीज़)भाग-1,(दिल्ली,1970)
- सहाय,बी.के.,एडुकेशन एंड लेर्निंग अंडर द ग्रेट मुगल,(बंबई,1968)
- तबकात-ए-अकबरी (अनु.बी.डे), भाग-2
- ओझा, पी.एन, मुगलकालीन भारत का सामाजिक जीवन,(नई दिल्ली,1984)
- स्मिथ,वी.ए, अकबर दी ग्रेट मुगल(1542-1605),(नई दिल्ली,1958)
- तुजुक-ए-जहांगीरी,(अनु रोजर्स एंड बेवरिज),भाग-1
- आइन-ए-अकबरी,(अनु.ब्लैकमैन),भाग-1

वाराणसी के नगर सिक्के

डॉ. स्वस्तिक सिंह*

वास्तव में सिक्के एक जादूयी कालीन हैं, गूँगे रहते हुए भी वे अपनी मूक भाषा से अतीत में लुप्त उन घटनाओं को आलोकित करते हैं, जिनका कोई साहित्यिक अथवा अभिलेखीय प्रमाण प्राप्त नहीं होता है। ऐसा ही है वाराणसी नगर के सिक्कों द्वारा द्वितीय–प्रथम शताब्दी ई०पू० में इस नगर के गौरवमय और अद्‌भुत राजतन्त्र का नगर राज्य में परिवर्तन का उद्‌घाटन किया जाना।

अतः प्रस्तुत शोध लेख में वाराणसी नगर राज्य के सिक्कों की वस्तुनिष्ठ एवं विषय निष्ठ लेखन, पूर्वाग्रह रहित, प्रस्तुत करना है। नगरीकरण अध्ययन आधुनिक विषय है फिर भी नगर सभ्य जीवन का एक पुराना कलात्मक साधन है।[1] अब यह सर्वमान्य धारणा है कि मानव सभ्यता के विकास में नगर एक आधारभूत स्तर है और इसलिए नगरीय इतिहास के अध्ययन पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है।[2] परन्तु पाश्चात्य देशों में नगरीकरण का अध्ययन औद्योगिक क्रान्ति से प्रारम्भ होता है; प्रारम्भिक कालों में ध्यान इसलिए आकर्षित नहीं हुआ क्योंकि पाश्चात्य के कुछ महत्वपूर्ण राष्ट्रों का बहुत ही अल्प प्राचीन इतिहास है तथा व्यवहारिक रूप में नगरीकरण का इतिहास नगण्य ही रहा है। परन्तु भारत में परिस्थिति कुछ भिन्न रही है। सैन्धव घाटी से ही नगरीकरण प्रारम्भ हो गया था। अतः इस लेख में वाराणसी नगर तथा उसके नाम के सिक्कों के आधार पर द्वितीय–प्रथम शताब्दी ई०पू० में स्थिति की समीक्षा करने का प्रयत्न किया गया है।[3]

इस पृष्ठभूमि में 'वाराणसी' लेख युक्त ताँबे के दो सिक्कों की ओर ध्यान आकर्षित करना रोचक होगा। 1944 ई0 में सुभेन्दु सिंह राय ने राजघाट से इन सिक्कों के साथ कुछ ढलुए सिक्के, आहत सिक्के, अयोध्या के राजाओं के सिक्के तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय का ताम्र सिक्कों एवं एक मृण साँचा प्राप्त किया था।[4] लेखक के अनुसार पुरो भाग पर उत्कट अश्व का अंकन है। पृष्ठ भाग पर मालव चिन्ह के विभिन्न रूप अंकित हैं तथा लेख 'वाराणसी' है।[5] इन सिक्कों का विवरण निम्नलिखित है:

1. धातु–ताम्रः आकार–आयताकार 0.5'' x 4'' भार–20 ग्रेन
   पुरो भाग–बायीं ओर उत्कट अश्व
   पृष्ठ भाग मालव चिन्ह का केवल एक पिण्ड (वृत्त), इसके ऊपर
   लेख–बाराणस (सी)
2. धातु–ताम्रः आकार–वर्गाकार 0.5'' भार–20 ग्रेन
   पुरो भाग– बायीं ओर अश्व, ऊपर दाहिनी ओर मालव चिन्ह तथा बायीं ओर अधूरा लेख– केवल 'तस' पठनीय है।''
   पृष्ठ भाग– जैसा कि सिक्का नं0–1 पर, लेख 'वाराणसी' नीचे के मध्य से प्रारम्भ होता है तथा ऊपर दाहिने किनारे पर समाप्त होता है।

ए०एस० अल्तेकर[6] के अनुसार सिक्का संख्या 2 पर अंकित पशु की पहचान निश्चित नहीं है। सुभेन्दु सिंह राय के अनुसार इन सिक्कों पर अंकित अश्व वाराणसी के नरेशों के साथ अश्वों की भूमिका की ओर संकेत कर सकते हैं। उनके अनुसार प्राचीन धर्म पुस्तकों तथा अन्य स्रोतों से ज्ञात होता है कि वाराणसी के क्रमबद्ध राजा प्रसिद्ध अश्वमेध यज्ञ कर्ता थे।[7]

परन्तु यह विचार ग्राह्य नहीं है, क्योंकि अश्व के सम्मुख यूप का किसी भी प्रकार का अंकन नहीं है। सिक्कों के निर्माण शैली तथा लेख की लिपि के आधार पर इन सिक्कों की तिथि प्रथम शताब्दी ई०पू० निर्धारित की है।[8] निःसन्देह ये सिक्के कुषाणों के पूर्ववर्ती हैं। सुभेन्द्र सिंह राय के अनुसार वे इन सिक्कों को किसी कण्व राजा ने जारी किया था।[9]

I

नगरों को निर्दिष्ट करने वाले सिक्कों पर नगरों अथवा स्थानों के नाम उत्कीर्ण हैं जो उनके (सिक्कों के) उद्‌भव स्थल थे। ऐसे सिक्के, यद्यपि कम संख्या में प्राप्त हुये हैं, वे अनेक प्राचीन नगर स्थलों से सम्बन्धित हैं। निम्नलिखित नगरों से नामयुक्त सिक्के ज्ञात हुए हैं– एरण, कौशाम्बी, उज्जनी, ज्येष्ठपुर, महिष्मती, भगिला, त्रिपुरी, वाराणसी तथा कुरार। इसके अतिरिक्त कुछ सिक्कों, जिन पर उद्देहिकी, उषभे, वटस्वक तथा अजुधे लेखयुक्त मिलते

* एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास गाँधी शताब्दी स्मारक पी०जी० कालेज, कोयलसा, आजमगढ़

हैं, वे अक्सर श्रेणियों से सम्बन्धित किये जाते हैं। अतः वाराणसी नगर के सिक्कों के महत्व को समझने के लिए उपर्युक्त नगर सिक्कों की प्रकृति की समीक्षा आवश्यक है।

एलन[10] को एरण के दो सिक्के ज्ञात थे। परन्तु कालान्तर में कुछ और सिक्के प्रकाशित किये गये।[11] उनके अनुसार, द्वितीय शताब्दी ई०पू० के प्रथमार्द्ध के उज्जैनी सिक्के सम्भवतः मौर्य गवर्नरों के स्थानीय सिक्के थे।[12] एलन को कौशाम्बी के केवल दो सिक्के ज्ञात थे।[13] बाद में कुछ और अधिक सिक्के प्रकाशित किये गये।[14] ज्येष्ठपुर[15] के सिक्कों के पुरो भाग रिक्त (सादे) हैं। ए०एस० अल्तेकर[16] इन्हें 'टोकेन अथवा पासपोर्ट' अथवा 'काँसे की नगर मुहर पर छाप माना है।

एलन[17] तथा टी.एन. रामचन्द्रन[18] द्वारा प्रकाशित सिक्कों को पी.एल. गुप्त[19] ने महिष्मती का स्वीकार किया। कालान्तर में एच.वी. त्रिवेदी[20] ने भी महिष्मती का एक सिक्का प्रकाशित किया। उनका सुझाव है कि ये सिक्के महिष्मती के नगर राज्य द्वारा टंकित किये गये थे।

भगिला के नगर के सिक्कों के बारे में लिखते हुए एस.एल. कटारे[21] ने एक अन्य कुरार नगर के सिक्कों का उल्लेख किया है।[21] त्रिपुरी सिक्क[22] के विषय में कटारे[23] का कथन है कि त्रिपुरी का उदय एक स्वतन्त्र गणराज्य के रूप में, अशोक के बाद, अन्य नगरों के साथ हुआ। त्रिपुरी के चारों सिक्कों के पृष्ठ भाग सादे हैं।

वाराणसी नगर के सिक्कों का उल्लेख उपर्युक्त किया गया है। इसके अतिरिक्त नगर सिक्कों में कुछ सन्देहास्पद नामधारी सिक्के हैं, जिन पर लेख **'उदेहकी', 'उषभे', 'वटस्वक'** तथा **'अजुधे'** उत्कीर्ण है। दो उदेहकी सिक्के ज्ञात हैं।[24] एस.एल. कटारे[25] के अनुसार, ये नगर सिक्के हैं। उदेहकी के एक दूसरे सिक्के पर अतिरिक्त लेख 'सूयमितस' उत्कीर्ण है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्यमित्र स्थान अथवा जाति का राजा था।[26]

केवल एक सुवर्ण सिक्का, अभी तक ज्ञात है, जिस पर खराष्ठी लेख **'उषभे'** तथा यूनानी (ग्रीक) लेख **'टाउरॉस'**[27] पुष्कलावती से प्राप्त हुआ था। परन्तु यह उन सिक्कों से भिन्न है जिन पर नगरों के नाम उत्कीर्ण हैं।

अन्य क्षेत्रों के सिक्कों के साथ तक्षशिला से **'वटस्वक'** लेखयुक्त सिक्के प्राप्त हुए हैं। इसे स्थान का नाम स्वीकार किया गया, जिसे अश्वक के साथ सम्बन्धित किया गया। यह स्थल तक्षशिला के पड़ोस में था, निकटवर्ती होने के कारण इसके साथ इसका वाणिज्यिक सम्बन्ध था।[28] इलाहाबाद संग्रहालय में **'अजुधे'** लेखयुक्त सिक्के सुरक्षित हैं। इनकी तिथि प्रारम्भिक द्वितीय शताब्दी ई०पू० निर्धारित की गयी है। इनके पृष्ठ भाग मिट गये हैं। इन्हें अयोध्या नगर के सिक्के कहना अनिश्चित है।[29]

प्रारम्भिक भारतीय सिक्कों पर उत्कीर्ण लेखों के विकास का परीक्षण प्रदर्शित करता है कि नगरों के नाम वाले सिक्कों के पश्चात् ऐसे सिक्कों का प्रचलन हुआ, जिन पर नगरों तथा उनके राजाओं के नाम प्राप्त होते हैं। विकास क्रम की तृतीय अवस्था में नगरों के नामों को त्याग दिया गया[30] परन्तु राजा का नाम स्थिर बना रहा। इसकी पुष्टि उद्देहिकी[31] तथा वाराणसी[32] के सिक्कों से होती है। इन सिक्कों के स्थलों के साथ स्थानों के अकेले नाम तथा राजा और स्थानों के नाम के साथ, दोनों ज्ञात है। उद्देहिकी के सिक्कों पर सूर्यमित्र का नाम है वही वाराणसी के सिक्के पर अधूरा नाम..... **'तस'** उत्कीर्ण है। सूर्यमित्र के सिक्कों पर स्थान का नाम 'सुद्वाय' प्राप्त होता है।[33] 'सुद्वाय' से ही प्राप्त सिक्कों पर ध्रुवमित्र राजा का नाम ज्ञात होता है। इस राजा के दो प्रकार के सिक्के प्राप्त हुए हैं। इनमें से एक पर लेख–**सुदवाय ध्रुवमितस** और दूसरा केवल '**ध्रुवमितस'**।[34] उपर्युक्त सिक्कों पर उत्कीर्ण लेखों के विकास के तीन चरणों से प्रतीत होता है कि इसकी अधिक सम्भावना है कि इनके दो पीढ़ियों से अधिक समय नहीं लगा होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि द्वितीय शताब्दी ई०पू० के अन्त में सिक्कों पर केवल राजा के नाम का प्रयोग प्रारम्भ हुआ होगा। इस आलोक वाराणसी के नगर सिक्कों की तिथि द्वितीय शताब्दी ई०पू० के अन्तिम चरण में निर्धारित करना तर्क संगत होगा।

II

उपर्युक्त नगर राज्यों के सिक्कों की विवेचना से स्पष्ट होता है कि वाराणसी के नगर सिक्के द्वितीय शताब्दी ई०पू. में जारी हुए थे।यह काल शुंग साम्राज्य के विघटन का था।पुष्यमित्र के द्वारा स्थापित साम्राज्य के पतन के पश्चात कौशाम्बी, अयोध्या, पांचाल एवं मथुरा में स्थानीय राजतन्त्रात्मक राज्यों की स्थापना हुई।परन्तु राजनीतिक क्षितिज पर वाराणसी में नगर राज्य की स्थापना की पुष्टि राजघाट से प्राप्त वाराणसी नाम के लेखयुक्त सिक्कों से होती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि वाराणसी में सम्प्रभु अधिकार किसी एक राजा के हाथों में निहित नहीं था अपितु यह नगर की सरकार अथवा वाराणसी के नगर राज्य के हाथों में केन्द्रित था। नगर राज्य का राजनीतिक विषय प्राचीन यूनानियों के राजनीतिक जीवन की प्रमुख विशेषता थी। अभी तक विद्वानों का ध्यान यथोचित ढंग से प्राचीन भारत के नगर राज्यों के राजनीतिक विषय की ओर आकर्षित नहीं हुआ है। जबकि इस वास्तविकता की पुष्टि सिक्कों, ब्राह्मण, बौद्ध, जैन साहित्य तथा विशेष रूप से विदेशी लेखकों द्वारा प्रदत्त विवरणों से होती है। इन साक्ष्यों से अब लगभग भारत में इस राजनीतिक संगठन के अस्तित्व की प्राथमिकता सिद्ध होती है।

यह तथ्य रोचक है कि सिक्कों द्वारा वाराणसी के अतिरिक्त अन्य नगर राज्यों[35] की जानकारी हो चुकी है। इसकी चर्चा उपरोक्त हो चुकी थी। प्राचीन भारत में नगर राज्यों की पुष्टि विदेशी लेखकों द्वारा दी गयी सामग्री से होती है। डायोडोरस ने भारत के पश्चिमोत्तर क्षेत्र में शासन करने वाले डायोनीसस, उसके पुत्र तथा उत्तराधिकारियों का वृत्तान्त लिखते हुए कहता है कि कि अन्त में, अनेक पीढ़ियों के आने और जाने के बाद, यह कहा जाता है, सम्प्रभुता भंग (लुप्त) हो गयी और नगरों में प्रजातान्त्रिक सरकारें स्थापित हो गयी।[36] हेराक्लीज के विषय में परम्पराओं का वर्णन करते हुए वह कहता है कि, ''परन्तु अन्त में अनेक वर्ष व्यतीत हो गये, अधिकांश नगरों ने सरकार के लोकतान्त्रिक स्वरूप को ग्रहण कर लिया तथा सिकन्दर के भारत पर आक्रमण के समय तक कुछ राजतन्त्र बने रहे।''[37]

अतः डायोडोरस का कथन स्पष्ट रूप से आलोकित करता है कि प्राचीन भारत में राजतन्त्रात्मक राज्यों के साथ, वाराणसी जैसे नगरों का अस्तित्व था। एरियन के अनुसार सिकन्दर के आक्रमण के समय न्यासा एक स्वतन्त्र राज्य था, जहाँ शासन अपने कानूनों तथा उसके नागरिकों द्वारा संचालित होता थाय व्यवस्थित लोक समाज था तथा इसका अध्यक्ष अकौफिस कहलाता था, जो अपने तीस प्रतिनिधयों के साथ सिकन्दर से मिलने गया था। न्यासा नगर का शासन कुलीनतन्त्रात्मक था।[38]

यदि प्राचीन भारत में नगर राज्यों के बारे में यूनानी वृत्तान्त अद्‌भुत रूप से सत्य है तो इसके साथ ही बौद्ध साहित्यिक स्रोत के रोचक विवरण तथा सिक्कों द्वारा दी गयी सूचनायें नगर राज्यों के सरकारी तन्त्र की तस्वीर को उभारते हैं। नगर राज्यों के अधीन आस–पास के क्षेत्र रहते थे।[39] एस.एल. कटारे के अनुसार, नगर राज्यों की सम्प्रभुता के अन्तर्गत पड़ोसी छोटे राज्य तथा गाँव (**ग्रामनिगम**) आते थे।[40]परन्तु यूनानियों के नगर राज्यों के राजनीतिक जीवन में ग्राम महत्वपूर्ण अंग नहीं थे। वहाँ सम्प्रभुता कुछ कुलीन लोगों अथवा राजन्य वर्ग के हाथों में थी। एस.एल. कटारे[41] के इस मत से सहमत नहीं हुआ जा सकता है कि भारत में नगर राज्यों की सरकारें विभिन्न रूपों (प्रकारों) की थी. उनमें अत्यधिक महत्वपूर्ण राजतन्त्र, गण राज्य तथा जातीय कुलीन तंत्र थे। वास्तव में राजतन्त्रात्मक, गणतन्त्रात्मक, कुलीन तन्त्रात्मक,नगर राज्य प्राचीन भारतीय राज्य के विभिन्न प्रकार थे।[42]

वास्तव में द्वितीय शताब्दी ई०पू० के अन्तिम चरण में वाराणसी गंगा घाटी में, शुंग साम्राज्य के भग्नावशेषों पर नगरराज्य के रूप में उदित हुआ। वहीं दूसरी ओर कौशाम्बी, अयोध्या, पांचाल तथा मथुरा के राजतन्त्रात्मक राज्यों का उदय हुआ। वाराणसी के नगर राज्य के एक सिक्के के पुरो भाग पर अधूरा लेख '.....तस' प्राप्त होता है।[43] सुभेन्धु सिंह रॉय के अनुसार ये सिक्के किसी कण्व शासक द्वारा जारी किये गये थे। परन्तु यह ग्राह्य नहीं है क्योंकि मौद्रिक साक्ष्यों से प्रमाणित होता है कि शुंगों के पतन के बाद गंगा घाटी के कौशाम्बी, अयोध्या, पांचाल तथा मथुरा में अधिकांश राजाओं के नामों के अन्त में तस (त्रस) है। अतः मेरा विनम्र सुझाव है कि वाराणसी के नगर राज्य के सिक्कों का प्रचलन कर्ता कोई मित्र नामान्त वाला शासक था, न कि कण्व वंशीय। वाराणसी नगर राज्य के अन्तर्गत के भू–भाग थे। गाँव इसके अभिन्न और महत्वपूर्ण अंग थे, जिनसे प्राप्त राजस्व ने काशी की आर्थिक समृद्धि की होगी।

III

नगर राज्यों के सिक्कों के प्रचलनकर्ता और उनकी प्रकृति की विवेचना करना सुसंगत होगा। डी.सी. सरकार के अनुसार, नगर सिक्कों का टंकण स्थानीय संस्थाओं ने किया था।[44] परन्तु इनकी पहचान नेगम संस्थाओं से नहीं जा सकती है, जिन्होंने नगर सिक्कों को जारी किया था अथवा किसी अन्य अनाधिकारी संस्थाओं द्वारा जारी किये गये परन्तु यदि हम स्वीकार कर लें कि नगर सिक्कों के जारीकर्ता नगर के प्रशासकीय अधिकारी थे तब उनको अनाधिकारी टंकित सिक्के नहीं कहा जा सकता।[45]

के.डी. बाजपेयी ने डी.सी. सरकार के मार्ग का अनुसरण किया। उनका अभिमत है कि तृतीय–द्वितीय शताब्दी ई.पू. में व्यापारियों की अनेक श्रेणियाँ अस्तित्व में थीं, जिनको ऐसे सिक्कों को जारी करने का अधिकार था, जिन पर समर्थन में उत्कीर्ण विशिष्ट नाम प्राप्त होते हैं।[46] अपने मत के समर्थन में कौशाम्बी के **'गधिकनम्'** तथा **'कोसबिकनम्'** लेख युक्त सिक्कों का उल्लेख किया तथा पुनः यह कहा कि उसी नगर की एक की अपेक्षा अनेक श्रेणियों ने सिक्कों को जारी किया था। इस तथ्य की पुष्टि इन सिक्कों के निर्माण, चिन्हों और लेखों के प्रकारों से होती है।[47]

परन्तु जे०पी० सिंह ने बाजपेयी के विचारों से असहमति व्यक्त करते हुए उचित ही कहा है कि इन सिक्कों के केवल अस्तित्व के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि व्यापारियों की संयुक्त (संगठित) संस्थाओं ने वस्तुओं के लेन–देन की सुविधा हेतु इन सिक्कों को जारी किया था।[48] उन सिक्कों के विशिष्ट समूहों (ग्रुप) की विभिन्नताओं में कुछ परिवर्तन इस तथ्य का संकेत नहीं करते हैं कि इसी नगर की एक की अपेक्षा अनेक श्रेणियों ने इन सिक्कों को टंकित किया।[49]

उपरोक्त उल्लिखित नगर सिक्के विभिन्न कालों के हैं। यह लगभग निश्चित है कि इन्हें अनाधिकारी संस्थाओं द्वारा जारी नहीं किया गया था। इस सम्बन्ध में जे.पी. सिंह का मत है कि इनको नगर राज्य की अधिकारी प्रचलित मुद्रा कहना कठिन है।[50] क्योंकि उपरोक्त नगरों के सिक्कों पर उनके नाम तो अंकित हैं परन्तु वे विरल हैं। यदि उनको प्रचलन हेतु जारी कियाा गया होता तो उनकी संख्या अधिक होनी चाहिए थी। उन्होंने

उनको पहचान लक्षण (Identity Tokens) कहा है।[51] अपने विचारों के समर्थन में ज्येष्ठपुर तथा त्रिपुरी के सिक्कों की ओर ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया, जिनके पृष्ठ भाग सादे हैं तथा इन टोकनों (लक्षणों) को नगर के राजा अथवा नगर के प्रशासन के उत्तरदायी राजा के प्रतिनिधियों द्वारा जारी किया गया था।[52] जे.पी. सिंह के अनुसार इसकी पुष्टि वाराणसी के सिक्कों से होती है, जिन पर प्रचलनकर्ता के नाम का अंश अंकित है। अतएव नगर सिक्के या तो स्थानीय शासकों अथवा उनके गवर्नरों द्वारा जारी किये गये थे।[53] सम्भवतः इनका प्रयोग नगर के कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तियों अथवा अधिकारियों द्वारा पहचान लक्षण (Identity Tokens) के रूप में किया गया था।[54]

परन्तु जे.पी. सिंह के विचारों से सहमत होना कठिन है क्योंकि जहाँ तक वाराणसी के सिक्कों की संख्या कम है, इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि भविष्य में कौशाम्बी नगर सिक्कों की भांति और सिक्के प्राप्त हों। पुनः यह तथ्य रोचक है कि ये सिक्के राजघाट से आहत सिक्कों, अयोध्या के राजाओं के सिक्कों तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय के एक ताम्र सिक्के एवं एक मृण साँचे के साथ प्राप्त हुए। राजघाट एक टकसाल नगर था।[55] सिक्का कहलाने की शर्तें वाराणसी के नगर सिक्के पूरा करते हैं। क्योंकि इनकी निश्चित धातु ताँबा है, निश्चित भार 20 ग्रेन है, इसको प्रमाणित करने के लिए राजा (यद्यपि अधूरे लेख के अंत में **तस**) का नाम और उसके द्वारा टंकित चिन्ह अश्व तथा मालव चिन्ह टंकित किये गये थे। पुनः यह सर्वविदित है कि काशी (राजघाट) व्यापार और वाणिज्य का प्रमुख केन्द्र तथा टकसाल नगर था। मालव चिन्ह इस बात का द्योतक है कि उज्जैनी के साथ इसका व्यापारिक सम्बन्ध रहा होगा, इन सिक्कों के साथ अयोध्या के सिक्कों की प्राप्ति की भी अनदेखी नहीं की जा सकती है, स्पष्ट रूप से अयोध्या के साथ व्यापार का संकेत करते हैं। काशी, उज्जैनी तथा अयोध्या के साथ व्यापारिक मार्गों से जुड़ा था।[56] अतः वाराणसी के नगर सिक्के न तो राजा अथवा उसके गवर्नर के पहचान लक्षण (टोकेन) थे और न ही किसी संयुक्त संस्था द्वारा जारी किये गये थे। वास्तव में ये अधिकारी प्रचलित सिक्के थे। इनको वाराणसी नगर के मित्र शासक ने जारी किया होगा क्योंकि सिक्के पर उत्कीर्ण लेख के अन्त में **'तस'** शब्द अंकित है। अतः ये नियमित सिक्के थे, जिनकी शुंग साम्राज्य के पतन के बाद वाराणसी नगर राज्य के शासक ने जारी किया था।

उपर्युक्त सर्वेक्षण से वाराणसी नगर राज्य के सिक्कों से निम्न तथ्य उद्घाटित होते हैं–

(अ) प्राचीन भारत की गंगा घाटी में शुंगों के पतन के पश्चात् वाराणसी नगर राज्य का उदय लगभग द्वितीय शताब्दी ई०पू० के अन्तिम चरण में हुआ।

(ब) वाराणसी में नगर राज्य में आस–पास के भू–भाग सम्मिलित थे। आस–पास के भू–भागों के गांवों से राजस्व वसूली से आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि हुई होगी।

(स) इनको पहचान लक्षण (Identity Tokens) कहना तर्कसंगत नहीं होगा। वास्तव में ये नियमित सिक्के थे। भविष्य में और अधिक सिक्कों के प्राप्त होने की सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। विरल संख्या में प्राप्त होने के कारण इनको नियमित सिक्का न मानना अनुचित होगा।

(द) वाराणसी नगर राज्य को सिक्कों को किसी संयुक्त संस्था अथवा निगम या श्रेणी ने जारी नहीं किया था अपितु किसी मित्र नामान्त वाले शासक ने जारी किया था।

(ह) वाराणसी नगर राज्य के सिक्के उज्जैनी तथा अयोध्या के साथ व्यापारिक सम्बन्धों के सूचक हैं।

वास्तव में यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि विशेष स्थान पर नगरों के साथ–साथ सिक्कों की एक–दूसरे के साथ अनुरूपता दृष्टिगोचर होती है। परवर्ती युग व्यापार में वृद्धि का साक्षी बन गया। कुषाण–सात वाहन युग में विदेशी व्यापार पुष्पित एवं पल्लवित स्थिति में था। द्वितीय–प्रथम शताब्दी ई०पू० के अन्तिम चरण में वाराणसी नगर के साथ यहाँ के सिक्के केवल अनुरूपता ही नहीं प्रकट करते हैं अपितु इस नगर के व्यापारिक विकास का भी संकेत करते हैं।

सन्दर्भ सूची :–

1. रिचार्ड सेन्नेट्ट, सम्पादक, क्लासिकल एसेस ऑन दि कल्चर आफ दि सिटीज, (ऐन इन्ट्रोडक्शन), 1969, पृ० 3.
2. दि टाइम्स लिट्रेरी सप्लीमेण्ट, 27 दिसम्बर, 1974; अर्बन हिस्ट्री इयर बुक, 1976, पृ० 35.
3. केवल दो ग्रन्थ ए० घोष तथा उदयनरायण राय द्वारा प्रकाशित किये गये थे–ए० घोष, दि सिटी इन अर्ली हिस्टारिकल इण्डिया, 1973; उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, परन्तु दोनों विद्वानों ने इसकी अनदेखी की है परन्तु आर.एस. शर्मा तथा कामेश्वर प्रसाद ने नगरीकरण पर गहन अध्ययन किया है। आर.एस. शर्मा, लाईट ऑन अर्ली इण्डियन सोसायटी एण्ड इकोनॉमी, 1966; डिके आफ गंगेटिक टाउन इन गुप्त ऐण्ट पोस्ट–गुप्त टाइम्स, प्रोसीडिंग ऑफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, 33 सेसन, मुजफ्फरपुर, पृ० 93.
4. जर्नल आफ दि न्युमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया, XII, पार्ट 11, पृ० 134.
5. उपर्युक्त
6. उपर्युक्त, पाद टिप्पणी 1
7. उपर्युक्त
8. उपर्युक्त, पृ० 135. 8.
9. उपर्युक्त

10. जे.एलन, ब्रिटिश म्युजियम कटालाग ऑफ एन्शियण्ट इण्डिया, पृ० xci-xcii
11. तुलना कीजिए, जर्नल ऑफ दि न्यूमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया, XXV, पृ० 20.
12. जे.एलन, वही, पृ० cxiv.
13. उपर्युक्त, पृ० xcviii-ix
14. जर्नल ऑफ दि न्यूमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया, XXIVपृ०20,टिप्पणी 1; पृ० 139–140;XXV, पार्ट 1,पृ० 20–21.
15. उपर्युक्त, XIV, पृ० 5–8.
16. उपर्युक्त
17. जे.एलन, वही, पृ० 279.
18. जर्नल ऑफ दि न्यूमिस्मेटिक सोसायटी आफ इण्डिया, XIII, पृ० 74 संख्या 1.
19. उपर्युक्त, XV, पृ० 70 तथा आगे।
20. उपर्युक्त, XVII, पार्ट 11, पृ० 94–96.
21. उपर्युक्त, XIV, पृ० 9–14; डी.सी. सरकार के अनुसार कुछ सिक्कों पर लेख 'कुरराय' है।
22. देखिए जे.एलन, वही, पृ० cxli, 239, त्रिपुरी सिक्कों के लिए।
23. जर्नल ऑफ दि न्यूमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया, XIII, पृ० 41 तथा आगे।
24. जे.एलन, वही, पृ० cxli
25. जर्नल ऑफ दि न्यूमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया, XVIII, पार्ट 1, पृ० 41 तथा आगे।
26. तुलना कीजिए जे.पी सिंह, अर्ली इण्डियन इंडीजीनस क्वायन्स,(सम्पादक डी.सी. सरकार), कलकत्ता,1970.पृ० 109.
27. रैप्सन, जे.आर.ए.एस., 1905, 786–787.
28. जे.एलन, वही, cxivi–cxivii.
29. जे.पी. सिंह, वही, पृ० 109.
30. पी.एल. गुप्त. जर्नल ऑफ दि न्यूमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया, XV, पृ० 71.
31. जे.एलन, वही, पृ० 240.
32. जर्नल ऑफ दि न्यूमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया, XII, पृ० 134–135.
33. एक्सवेशन ऐट रेर्ह. पृ० 66–68, पी.एल. गुप्ता, वही, पृ० 71.
34. एक्सवेशन एट रैर्ह, पृ० 67–68.
35. जे.एलन, वही, पृ० xci-xcii, xcviii-xciv, cxiv, cxli;
36. मिक्रिक्रन्डिल, एन्शियण्ट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड बायी मेगस्थनीज एरियन, पृ० 38; डायोडोरस, 11, 38.
37. उपर्युक्त
38. मिक्रिक्रन्डिल, इन्वेजन ऑफ इण्डिया बाई अलेक्जेंडर दि ग्रेट, पृ० 78; एरियन, 1, 1.
39. प्राचीन भारतीय समाज एवं शासन, इलाहाबाद, अध्याय राज्यों के प्रकार।
40. जर्नल ऑफ दि न्यूमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया, XII, पार्ट 1, पृ० 44.
41. उपर्युक्त, पृ० 45.
42. ओ.पी. सिंह, वही; ए.एस. अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति
43. जर्नल ऑफ दि न्यूमिसमेटिक सोसायटी आफ इण्डिया, XII, पृ० 134.
44. जर्नल ऑफ दि न्यूमिसमेटिक सोसायटी आफ इण्डिया, XXIII, पृ० 298; स्टडीज इन इण्डियन क्वायन्स, 301.
45. तुलना कीजिए जे.पी. सिंह, अर्ली इंडियन इंडीजीनस क्वायन्स (सम्पादक डी.सी. सरकार), कलकत्ता,1970,पृ० 103.
46. जर्नल ऑफ दि न्यूमिसमेटिक सोसायटी आफ इण्डिया, XXV, पार्ट 1, पृ० 18.
47. उपर्युक्त, पृ० 20.
48. जे.पी. सिंह, वही, पृ० 103.
49. तुलना कीजिए, उपर्युक्त
50. उपर्युक्त, पृ० 109.
51. उपर्युक्त
52. उपर्युक्त
53. उपर्युक्त, पृ० 110.
54. उपर्युक्त
55. यू.ठाकुर, मिन्ट्स एण्ड मिन्टिंग इन इण्डियाय ओ.पी. सिंह, इकनामिक ग्लीनिंग्स फ्राम अर्ली इण्डियन क्वायन्स, वाराणसी
56. देखिए मोतीचन्द्र, ट्रेण्ड ऐण्ड ट्रेड रुट्स इन एन्शियण्ट इण्डिया, दिल्ली, 1977.

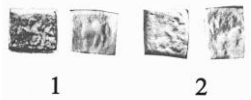

1 2

वाराणसी नगर के सिक्के

मिशन शक्ति योजना का वाराणसी महानगर के महिलाओं पर प्रभाव : एक अध्ययन

डॉ. नागेन्द्र कुमार सिंह*

भारत में महिलाओं की स्थिति को सशक्त बनाने के लिए अनेक प्रयास किए गए हैं। परंतु सामाजिक असमानता, लिंग भेद, अशिक्षा, हिंसा, और आर्थिक निर्भरता जैसी समस्याएँ आज भी अनेक महिलाओं को उनके अधिकारों से वंचित रखती हैं। ऐसे वातावरण में यह आवश्यक हो गया कि सरकार ऐसे ठोस कदम उठाए जिससे महिलाओं को न केवल अधिकार मिले बल्कि वे आत्मनिर्भर और सशक्त भी बन सकें। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए ''मिशन शक्ति योजना'' की शुरुआत की गई। मिशन शक्ति, महिला सुरक्षा, संरक्षण और सशक्तिकरण के लिए एक योजना है। इसका उद्देश्य महिलाओं और लड़कियों को उनके समग्र विकास और सशक्तिकरण के लिए अल्पकालिक और दीर्घकालिक सेवाएं प्रदान करना है, जिसमें देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले कमजोर समूह भी शामिल हैं। यह योजना महिलाओं के जीवन में बदलाव लाने और उन्हें राष्ट्र निर्माण में समान भागीदार बनाने पर केंद्रित है।[1] मिशन शक्ति योजना का मूल थीम नारी सुरक्षा, नारी सम्मान और नारी स्वावलम्बन है। मिशन शक्ति के दो मुख्य घटक हैं:[2]

संबल: यह महिलाओं की सुरक्षा और संरक्षण के लिए है, जिसमें वन स्टॉप सेंटर (ओएससी), महिला हेल्पलाइन (डब्ल्यूएचएल), बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ (बीबीबीपी) और नारी अदालत जैसी योजनाएं शामिल हैं।

सामर्थ्य: यह महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए है, जिसमें प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना (पीएमएमवीवाई), शक्ति सदन, सखी निवास, पालना और संकल्प: महिला सशक्तिकरण केंद्र (एचईडब्ल्यू) जैसी योजनाएं शामिल हैं।

मिशन शक्ति के तहत पालना योजना : पालना योजना 6 महीने से 6 वर्ष की आयु के बच्चों को सेवाएं प्रदान करने पर केंद्रित है। यह योजना बचपन की देखभाल, विकास और पोषण में सहायता के लिए मिशन पोषण 2.0 के साथ मिलकर काम करती है। इसके अतिरिक्त श्रम और रोजगार मंत्रालय ने मातृत्व लाभ अधिनियम में संशोधन किया है, जिसके तहत 50 या अधिक कर्मचारियों वाले सभी प्रतिष्ठानों के लिए क्रेच सुविधा उपलब्ध कराना अनिवार्य कर दिया गया है।[3] मिशन शक्ति का उद्देश्य देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले दिव्यांगों, सामाजिक और आर्थिक रूप से हाशिए पर पड़े और कमजोर समूहों सहित सभी महिलाओं और लड़कियों को उनके समग्र विकास और सशक्तिकरण के लिए अल्पकालिक और दीर्घकालिक सेवाएं और जानकारी प्रदान करना है । मिशन शक्ति के अंतर्गत आने वाले घटकों का व्यापक उद्देश्य हिंसा की शिकार या कठिन परिस्थितियों में रहने वाली महिलाओं की सुरक्षा या सहायता करना या महिलाओं को सशक्त बनाना है। मिशन के उद्देश्य हैं:[4]

- हिंसा से प्रभावित महिलाओं और संकटग्रस्त लोगों को देखभाल, समर्थन और सहायता की तत्काल और व्यापक निरंतरता प्रदान करना।
- सहायता की आवश्यकता वाली महिलाओं तथा अपराध और हिंसा की शिकार महिलाओं के बचाव, संरक्षण और पुनर्वास के लिए गुणवत्तापूर्ण तंत्र स्थापित करना।
- विभिन्न स्तरों पर महिलाओं के लिए उपलब्ध विभिन्न सरकारी सेवाओं तक पहुंच में सुधार करना।
- विभिन्न योजनाओं/विधानों के अंतर्गत पदाधिकारियों/कर्तव्यधारियों का क्षमता निर्माण एवं प्रशिक्षण।

उत्तर प्रदेश सरकार ने इस योजना की शुरूआत 17 अक्टुबर 2020 में प्रारंभ किया था। इसका मुख्य उद्देश्य महिलाओं एवं बालिकाओं को सुरक्षित, सशक्त और आत्मनिर्भर बनाना है। यह योजना के माध्यम से महिलाओं और बालिकाओं की सुरक्षा और

* निदेशक, म.मो.मा. हिन्दी पत्रकारिता संस्थान
विभागाध्यक्ष, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
जनसम्पर्क अधिकारी, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उ.प्र. एवं
संस्थापक विभागाध्यक्ष, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, इ. गां. रा. जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकटंक, मध्य प्रदेश–484887
मो. न. : 09407047751, 07772999893
ई–मेल : snkmediavns@gmail.com

जागरूकता पर जोर दिया जाता है और इसमें महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए प्रशिक्षण, स्वरोजगार, और सहायता उपलब्ध कराई जाती है। मिशन शक्ति योजना के तीन चरण हैं:

- प्रथम चरण : महिला सुरक्षा और गरिमा पर जागरूकता फैलाने पर केन्द्रीत था।
- द्वितीय चरण : महिलाओं के सशक्तिकरण और आत्मनिर्भरता पर केन्द्रीत था।
- तृतीय चरण : पुरूषों को संवेदनशील बनाने और महिलाओं के अधिकारों के बारे में जागरूकता बढ़ाने पर केन्द्रीत है।

मिशन शक्ति योजना की सेवाएँ और गतिविधियाँ : यह योजना लक्षित महिलाओं को तत्काल और दीर्घकालिक देखभाल और सहायता प्रदान करने के लिए सेवा वितरण और तकनीकी/अन्य आवश्यक जनशक्ति की भर्ती के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करेगी। मिशन शक्ति के अंतर्गत आने वाले घटकों का व्यापक उद्देश्य हिंसा की शिकार या कठिन परिस्थितियों में रहने वाली महिलाओं की सुरक्षा या सहायता करना या महिलाओं को सशक्त बनाना है। सेवाओं में शामिल हैं :[5]

- **आपातकालीन/तत्काल सेवाएं और अल्पकालिक देखभाल** - हिंसा से प्रभावित महिलाओं और संकटग्रस्त महिलाओं को राष्ट्रीय टोल-फ्री नंबर द्वारा समर्पित 24 घंटे हेल्पलाइन और अस्थायी आश्रय, कानूनी सहायता, मनोवैज्ञानिक-सामाजिक परामर्श जैसी एकीकृत सेवाओं के माध्यम से निरंतर सहायता और देखभाल प्रदान करने के लिए तंत्र स्थापित करना ।
- **दीर्घकालिक सहायता के लिए संस्थागत देखभाल:** दीर्घकालिक संस्थागत देखभाल घटक में अन्य बातों के साथ-साथ, गर्भधारण के चरण से लेकर उस समय तक महिलाओं की आवश्यकताओं की देखभाल करना शामिल है, जब तक उन्हें विभिन्न कारकों के कारण उनकी शारीरिक, वित्तीय और सामाजिक स्थिति के कारण ऐसी देखभाल और सहायता की आवश्यकता होती है ।
- **महिलाओं के सम्मान और उनके विरुद्ध अपराध एवं हिंसा की रोकथाम के लिए व्यवहार परिवर्तन संचार:** इसमें अंतर-मंत्रालयी अभिसरण के माध्यम से सभी कर्तव्यधारकों, सेवा प्रदाताओं और हितधारकों के लिए लैंगिक संवेदनशीलता, वकालत, प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण के लिए बड़े पैमाने पर जागरूकता कार्यक्रम और सामुदायिक सहभागिता शामिल होगी।

वाराणसी महानगर में नारी वंदन अधिनियम पारित होने के उपलक्ष्य में वाराणसी के नारियों द्वारा देश के प्रधानमंत्री का अभिनंदन किया था। उसके साथ ही प्रदेश के मुख्यंत्री योगी आदित्यनाथ का भी अभिनंदन वाराणसी के नारियों द्वारा किया गया था। यह मिशन शक्ति योजना का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। नारी वंदन कार्यक्रम में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा कि, ''काशी माता कुष्मांडा, माता शृंगार गौरी, मां अन्नपूर्णा और मां गंगा की पावन नगरी है। यहां के कण कण में मातृ शक्ति की महिमा जुड़ी है। विंध्यवासिनी देवी भी बनारस से दूर नहीं हैं। काशी नगरी देवी अहिल्याबाई होल्कर के पुण्य कार्यों और प्रबंध कौशल की साक्षी रही है। नारी शक्ति वंदन अधिनियम ने इस बार नवारात्रि के उत्साह को कई गुना बढ़ा दिया है। इस कानून से देश में महिला विकास के रास्ते खुलेंगे। लोकसभा और विधानसभाओं में महिलाओं की उपस्थिति बढ़ेगी। न्होंने कहा कि नारी का नेतृत्व बाकी दुनिया के लिए आधुनिक व्यवस्था हो सकती है। हम तो महादेव से पहले मां पार्वती और गंगा को प्रणाम करने वाले लोग हैं। हमारी काशी रानी लक्ष्मीबाई जैसी विरांगना की जन्मभूमि है। आजादी की लड़ाई में लक्ष्मीबाई जैसी विरांगनाओं से लेकर मिशन चंद्रयान को लीड करने वाली महिला वैज्ञानिकों तक नारी नेतृत्व के सामर्थ्य को हर कालखंड में हमने साबित किया है। उन्होंने कहा कि तीन दशक से ये कानून लटका था। आज संसद के दोनों सदनों में उन पार्टियों को भी इसके समर्थन में आना पड़ा जो पहले इसका विरोध करते थे। प्रधानमंत्री ने कहा कि नारी शक्ति वंदन अधिनियम एक व्यपक विजन वाला कार्यक्रम है। हम ऐसी व्यवस्था बनाना चाहते हैं कि महिलाओं को आगे बढ़ने के लिए किसी की जरूरत न पड़े। इसके लिए कानून के साथ- साथ सांस्कृतिक मूल्यों को भी मजबूत करना जरूरी है। इसलिए इस कानून का नाम नारी शक्ति वंदन अधिनियम रखा गया है। कुछ लोगों को इसमें भी वंदन शब्द से परेशानी है। माताओं बहनों को वंदन नहीं करेंगे तो क्या करेंगे। ये लोग नहीं समझ पाते कि नारी शक्ति के वंदन का अर्थ क्या है। हमें ऐसी नकारात्मक सोच से बचते हुए विकास पथ पर आगे बढ़ना है। देश आगे बढ़ता रहेगा, और ऐसे बड़े निर्णय लेते रहेगा।''[6]

इस अवसर पर मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने अपने उद्बोधन में कहा, "नास्ति मातृसमा छाया नास्ति मातृसमा गतिः, नास्ति मातृसमं त्राणं नास्ति मातृसमा प्रया।" मां के समान कोई छाया नहीं, मां के समान को सहारा नहीं, मां के समान कोई रक्षक नहीं, मां के समान कोई प्रिय नहीं हो सकता है। उन्होंने कहा कि प्रधानमंत्री के नेतृत्व में पिछले 9 साल में पूरी दुनिया ने बदलते हुए भारत को देखा है। भारत की आधी आबादी और मातृ शक्ति को सशक्त करने के लिए नारी शक्ति वंदन अधिनियम को संसद में पारित कराने के बाद आज

प्रधानमंत्री का आगमन अपनी काशी में हुआ है। 2014 के उपरांत महिला सशक्तिकरण की दिशा में अनेक कदम उठाये गये हैं। बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ और मिशन इंद्रधनुष के जरिए महिलाओं को सुरक्षा कवच देने का कार्य हुआ है।[7] यह योजना भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा 1 अप्रैल 2022 में लागू हुई थी। मिशन शक्ति योजना केन्द्र सरकार द्वारा 15 वें वित्त आयोग अवधि 2021–22 से 2025–26 के दौरान महिलाओं की सुरक्षाए संरक्षण और सशक्तिकरण के लिए विशेष योजना के रूप में चला रहा है।

वाराणसी महानगर जहाँ परंपरा और आधुनिकता का संगम है वहाँ की महिलाओं की सामाजिक स्थिति, सुरक्षा, और आत्मनिर्भरता का स्तर भिन्न है। इस योजना ने उन्हें किस प्रकार सशक्त किया, उनका आत्मविश्वास कैसे बढ़ा, और क्या वे योजना के संसाधनों तक पहुँच प्राप्त कर सकीं। इन सभी विषयों का अध्ययन इस विषय का मूलआधार है।

मुख्य शब्द : नारी सुरक्षा, सम्मान, स्वाभिमान, आत्मनिर्भरता, सशक्तिकरण, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, सरकारी योजना का मूल्यांकन, जागरूकता, महिला स्वास्थ्य, मातृत्व स्वास्थ्य, किशोरी स्वास्थ्य, और मासिक धर्म स्वच्छता।

शोध महत्व : शोध अध्ययन के उद्देश्य निम्न हैं :

1. शोध से नारी सशक्तिकरण भूल भावना को समझा जा सकता है।
2. सरकार द्वारा संचालित मिशन शक्ति योजना के जमीनी हकिकत का पता चलेगा।
3. नारी सुरक्षा भावना का बोध विकसित होगा।
4. मिशन शक्ति योजना नारियों में शिक्षा, सेवा भाव और नीति निर्णयों में उनकी भागीदारी को मूल्य बढ़ेगा।
5. नारी में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं ग्रामीण और शहरी स्त्रियों के बीच असमनाता के भाव को मिटाने में सहयोग प्रदान करेगा।

उद्देश्य : इस शोध का प्रमुख उद्देश्य मिशन शक्ति योजना के अंतर्गत वाराणसी महानगर क्षेत्र की महिलाओं पर पड़ने वाले प्रभावों का समग्र रूप से अध्ययन करना है। शोध विषय के प्रमुख उद्देश्य है :

- वाराणसी महानगर की नारियों पर मिशन शक्ति योजना से उनके जीवन में आये बदलाबों को समझना।
- महिलाओं में स्वाभिमान, सम्मान और समृद्धि में मिशन शक्ति योजना का योगदान को समझना।
- महिलाओं को मिली सुरक्षा, शिक्षा और रोजगार की सुविधाओं का मूल्यांकन करना।

शोध की उपकल्पना : प्रस्तुत शोध पत्र की उपकल्पना निम्न है :–

- मिशन शक्ति योजना के प्रभावों को समझने का प्रयास किया गया है।
- मिशन शक्ति योजना की कार्यान्वयन प्रक्रिया प्रभावशाली है।
- यह महिलाओं को सशक्त बनाने में सहायक रही है।
- शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सुरक्षा जैसे प्रमुख क्षेत्रों में मिशन शक्ति योजना के तहत महिलाओं को प्रभावी सुविधाएँ प्राप्त हुई हैं।
- शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं पर मिशन शक्ति योजना का प्रभाव भिन्न रहा है।
- वाराणसी क्षेत्र में योजना के कार्यान्वयन की प्रक्रिया में आई समस्याओं और सफलताओं की पहचान करना।
- वाराणसी महानगर में मिशन शक्ति योजना के माध्यम से महिला सुरक्षा, संरक्षण और सशक्तिकरण के मुल्यांकन का अध्ययन करना।
- मिशन शक्ति योजना के मूल थीम नारी सुरक्षा, सम्मान और स्वावलंबन के प्रयोग को देखना है।

प्रस्तुत शोध पत्र में अन्वेषणात्मक और वर्णनात्मक अभिकल्प का प्रयोग हुआ है। आगनात्मक, ऐतिहासिक, अवलोकन, सर्वेक्षण और तुलनात्मक पद्धतियों का प्रयोग हुआ है। अध्ययन के क्षेत्र की समग्रता वाराणसी महानगर है जबकि इकाई वाराणसी महानगर की चयनित 100 महिलाएं है। तथ्य संकलन प्राथमिक एवं द्वितीय स्रोत के माध्यम से हुआ है। अनुसूची के माध्यम से प्राप्त तथ्यों के आधार पर मिशन शक्ति योजना के प्रभाव का अध्ययन और परिणाम प्राप्त किया गया है। प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण सारणीयन के माध्यम से किया है जो निम्न हैं :–

सारणी – 1

नारी सम्मान, सुरक्षा एवं स्वावलंबन का संदर्भ

उत्तरदाता	संख्या	प्रतिशत
हां	85	85%
नहीं	15	15%
कुल	**100**	**100%**

सारणी के अध्ययन से स्पष्ट है कि अध्ययन में सम्मलित 100 नारियों में से 85 महिला मिशन शक्ति योजना का नारियों पर नारी सम्मान, सुरक्षा एवं स्वावलंबन का प्रभाव पड़ा है जबकि 15 महिलाएं ऐसा नहीं मानती है। सारणी से यह भी स्पष्ट है कि 85 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि मिशन शक्ति योजना स्त्रियों में सम्मान, सुरक्षा एवं स्वावलंबन की भावना को विकसित किया है जबकि 15 प्रतिशत स्त्रियां ऐसा नहीं मानती है।

अतः सारणी के अध्ययन से स्पष्ट है मिशन शक्ति योजना नारियों में सम्मान, सुरक्षा एवं स्वावलंबन की भावना को विकसित किया है।

सारणी – 2

मिशन शक्ति योजना जानने का संदर्भ

उत्तरदाता	संख्या	प्रतिशत
हां	80	80%
नहीं	20	20%
कुल	**100**	**100%**

सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि अध्ययन में सम्मलित 100 नारियों में से 80 स्त्रियां मिशन शक्ति योजना को जानती है जबकि 20 महिलाएं नहीं जानती है। सारणी से यह भी स्पष्ट है कि 80 प्रतिशत स्त्रियां मिशन शक्ति योजना को जानती है जबकि 20 प्रतिशत स्त्रियां नहीं जानती है।

अतः स्पष्ट है बहुसंख्यक महिलाएं मिशन शक्ति योजना से अवगत हैं।

सारणी – 3

मिशन शक्ति योजना का महिलाओं के सशक्तिकरण में योगदान का संदर्भ

उत्तरदाता	संख्या	प्रतिशत
हां	82	82%
नहीं	18	18%
कुल	**100**	**100%**

सारणी 03 से स्पष्ट है कि अध्ययन में सम्मलित 100 स्त्रियों में से 82 स्त्रियां यह मानती है कि मिशन शक्ति योजना नारी सशक्तिकरण में अहंम् भूमिका निभाती है जबकि 18 स्त्रियां ऐसा नहीं मानती है। सारणी से यह भी स्पष्ट है कि 82 प्रतिशत स्त्रियां मिशन शक्ति योजना के माध्यम से नारीयों का सशक्तिकरण हुआ है जबकि 18 प्रतिशत ऐसा नहीं मानती है।

अतः स्पष्ट है बहुसंख्यक महिलाएं मानती है कि मिशन शक्ति योजना से नारियों का सशक्तिकरण हुआ है।

सारणी – 4

वाराणसी में मिशन शक्ति योजना के कार्यान्वन का संदर्भ

उत्तरदाता	संख्या	प्रतिशत
हां	62	62%
नहीं	38	38%
कुल	**100**	**100%**

सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि अध्ययन में सम्मलित 100 महिलाओं में से 62 महिलाओं का मानना है कि वाराणसी महानगर में मिशन शक्ति योजना का कार्यान्वन हुआ है जबकि 38 महिलाओं ऐसा नहीं मानती है। सारणी से यह भी स्पष्ट है कि 62 प्रतिशत महिलाएं मिशन शक्ति योजना के कार्यान्वन की भूमिका को स्वीकार करती है जबकि 38 प्रतिशत ऐसा नहीं मानती है।

अतः स्पष्ट है सामान्यतौर पर वाराणसी महानगर की महिलाएं यह मानती है मिशन शक्ति योजना का कार्यान्वन हुआ है।

सारणी – 5

शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सुरक्षा में मिशन शक्ति योजना से महिलाओं को प्रभावी सुविधाओं का संदर्भ

उत्तरदाता	संख्या	प्रतिशत
हां	78	78%
नहीं	22	22%
कुल	**100**	**100%**

सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि अध्ययन में सम्मलित 100 महिलाओं में से 78 महिलाओं का मानना है कि वाराणसी महानगर में मिशन शक्ति योजना शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सुरक्षा में महिलाओं को सुविधा प्रदान किया है जबकि 22 महिलाओं ऐसा नहीं मानती है। सारणी से यह भी स्पष्ट है कि 78 प्रतिशत महिलाएं मिशन शक्ति योजना से शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सुरक्षा की भावना महसुस किया है जबकि 22 प्रतिशत महिलाएं ऐसा नहीं मानती है।

अतः स्पष्ट है कि वाराणसी महानगर की अधिकांश महिलाएं यह मानती है मिशन शक्ति योजना स्त्रियों में शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सुरक्षा की भावना विकसित किया है।

सारणी – 6

शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं पर मिशन शक्ति योजना के प्रभाव का संदर्भ

उत्तरदाता	संख्या	प्रतिशत
हां	60	60%
नहीं	40	40%
कुल	**100**	**100%**

सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि अध्ययन में सम्मलित 100 महिलाओं में से 60 महिलाएं यह मानती हैं कि मिशन शक्ति योजना शहर की अपेक्षा ग्रामीण अंचल में कम प्रभावी है जबकि 40 महिलाएं ऐसा नहीं मानती है। सारणी से यह भी स्पष्ट है कि 60 प्रतिशत महिलाएं मिशन शक्ति योजना शहर की अपेक्षा ग्रमीण अंचल में कम प्रभावी है जबकि 40 प्रतिशत महिलाएं ऐसा नहीं मानती है।

अतः स्पष्ट है कि वाराणसी महानगर की महिलाएं यह मानती है मिशन शक्ति योजना शहरों की अपेक्षा ग्रामीण अंचल में कम है।

सारणी – 7

मिशन शक्ति योजना के पुलिस हेल्पलाइन नम्बर (109 और 1090) के प्रयोग का संदर्भ

उत्तरदाता	संख्या	प्रतिशत
हां	54	54%
नहीं	46	46%
कुल	**100**	**100%**

सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि अध्ययन में सम्मलित 100 महिलाओं में से 54 महिलाएं मिशन शक्ति योजना के अर्न्गत पुलिस हेल्पलाइन नम्बर का प्रयोग किया है जबकि 46 महिलाएं नहीं किया है। सारणी से यह भी स्पष्ट है कि 54 प्रतिशत महिलाएं मिशन शक्ति योजना के अन्तर्गत संचालित पुलिस हेल्पलाइन का प्रयोग किया है जबकि 46 प्रतिशत महिलाओं ने नहीं किया है।

अतः स्पष्ट है कि मिशन शक्ति योजना के अन्तर्गत पुलिस सहायता नम्बर प्रयोग महिलाएं सामान्य रूप से किया है।

सारणी – 8

मिशन शक्ति योजना का महिला सुरक्षा के अनूभवों के प्रभाव का संदर्भ

अनुभव	संख्या	प्रतिशत
स्वयं को सुरक्षित	46	46%
महिला थानों का लाभ	30	30%
सुरक्षा की स्थिति	24	24%
कुल	**100**	**100%**

सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि अध्ययन में सम्मलित 100 महिलाओं में से 46 महिलाएं मिशन शक्ति योजना से स्वयं को सुरक्षित महसुस करती है, 30 महिलाओं को महिला थाना को लाभ मिला और 24 महिलाओं का मानना है कि इस योजना से महिलाओं में सुरक्षा की भावना विकसित हुआ है। सारणी से यह भी स्पष्ट है कि 46 प्रतिशत महिलाएं मिशन शक्ति योजना के कारण स्वयं में सुरक्षित, 30 प्रतिशत महिलाएं महिला थाने की उपयोगिता और 24 प्रतिशत महिलाएं सुरक्षा की भावना विकसित हुई है।

अतः स्पष्ट है कि मिशन शक्ति योजना से महिलाओं सुरक्षा की भावना विकसित हुई है।

सारणी – 9

मिशन शक्ति योजना द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में किए गये पहल का संदर्भ

शिक्षा का क्षेत्र	संख्या	प्रतिशत
बेटी पढ़ाओ जैसे अभियानों से प्रेरणा	46	46%
शिक्षा शिविरों में प्रतिभाग	15	15%
किशोरियों में आत्मविश्वास	24	24%
शिक्षा को लेकर जागरूकता	15	15%
कुल	**100**	**100%**

सारणी के अध्ययन से स्पष्ट है कि 100 महिलाओं में से 46 महिलाएं मिशन शक्ति योजना द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में किए जा रहे पहल को सार्थक मानती है, 15 महिलाएं मिशन शक्ति योजना द्वारा आयोजित शिक्षा शिविरों में प्रतिभाग किया है, 24 महिलाएं यह मानती है कि इस योजना से किशोरियों में आत्मविश्वास बढ़ा है और 15 महिलाएं यह मानती है कि इस योजना से शिक्षा की जागरूकता बढ़ी है। सारणी से यह भी स्पष्ट है कि 46 प्रतिशत महिलाएं मिशन शक्ति योजना द्वारा बेटी बढ़ाओं से प्रभावित हुई है, 15 प्रतिशत मिशन शक्ति योजना द्वारा आयोजित शिक्षा शिवरों में प्रतिभाग किया है, 15 प्रतिशत महिलाएं यह मानती है कि इस योजना से किशोरियों में आत्मविश्वास बढ़ा है और 15 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि इस योजना से स्त्रियों में जागरूकता बढ़ी है।

अतः स्पष्ट है कि मिशन शक्ति योजना द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में किए गए कार्यो से महिलओं में जागरूता बढ़ी है। बेटी पढ़ओं..... जैसे स्लोगन का प्रभाव अधिक पड़ा है।

सारणी – 10

मिशन शक्ति योजना द्वारा आयोजित स्वास्थ्य शिविर कार्यक्रम का संदर्भ

स्वास्थ्य शिविर	संख्या	प्रतिशत
स्वास्थ्य शिविरों से लाभान्वित	32	32%
महिला विशेष स्वास्थ्य जांच में भाग लिया	24	24%
प्रसव पूर्व/बाद स्वास्थ्य जानकारी	34	34%
सेवाओं की उपलब्धता से असंतुष्ट	10	10%
कुल	**100**	**100%**

सारणी के अध्ययन से स्पष्ट है कि 100 महिलाओं में से 32 महिलाएं मिशन शक्ति योजना द्वारा आयोजित स्वास्थ्य शिविरों से लाभान्वित हुई, 24 महिलाएं मिशन शक्ति योजना द्वारा आयोजित जांच स्वास्थ्य शिविर में प्रतिभाग किया है, 34 महिला इस योजना द्वारा प्रसव संबंधी जानकारी प्राप्त की हैं और 10 मिशन शक्ति द्वारा स्वास्थ्य शिविर से असंतुष्ट हैं। सारणी से यह भी स्पष्ट है कि 32 प्रतिशत महिलाएं मिशन शक्ति योजना द्वारा आयोजित स्वास्थ्य शिविरों से लाभान्वित हुई, 24 प्रतिशत महिलाएं मिशन शक्ति योजना द्वारा आयोजित जांच स्वास्थ्य शिविर में प्रतिभाग किया है, 34 प्रतिशत महिला इस योजना द्वारा प्रसव संबंधी जानकारी प्राप्त की हैं और 10 प्रतिशत मिशन शक्ति द्वारा स्वास्थ्य शिविर से असंतुष्ट है।

अतः स्पष्ट है कि मिशन शक्ति योजना द्वारा आयोजित स्वास्थ्य शिविर के विभिन्न कार्यक्रमों से बहुसंख्यक महिलाएं संतुष्ट है।

सारणी – 11

मिशन शक्ति योजना से महिला स्वरोजागर और आत्मनिर्भरता का संदर्भ

स्वरोजागर और आत्मनिर्भरता	संख्या	प्रतिशत
स्वरोजगार प्रशिक्षण प्राप्त किया	34	32%
प्रशिक्षण के बाद आय अर्जन कर रही हैं	32	32%
महिला उद्यमिता में रुचि	26	26%
योजना से रोजगार की सीधी मदद नहीं मिली	08	10%
कुल	**100**	**100%**

सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि 100 महिलाओं में से 34 महिलाएं मिशन शक्ति योजना द्वारा आयोजित स्वरोजगार प्रशिक्षण प्राप्त किया है, 32 महिलाएं प्रशिक्षण प्रश्चात आय अर्जन कर रही है, 26 महिलाओं का उद्यमिता में रूचि नहीं है जबकि 08 महिलाएं इस योजना की सीधी लाभ नहीं लिया हैं। सारणी से यह भी स्पष्ट है कि 34 प्रतिशत महिलाएं मिशन शक्ति योजना द्वारा आयोजित स्वरोजगार प्रशिक्षण प्राप्त किया है, 32 प्रतिशत महिलाएं प्रशिक्षण प्रश्चात आय अर्जन कर रही है, 26 प्रतिशत महिलाओं का उद्यमिता में रूचि नहीं है जबकि 08 प्रतिशत महिलाएं इस योजना की सीधी लाभ नहीं लिया हैं

अतः स्पष्ट है कि स्वरोजगार एवं आत्मनिर्भरता के क्षेत्र से मिशन शक्ति योजना बहुसंख्यक महिलाओं संबल प्रदान किया है।

सारणी – 12

मिशन शक्ति योजना के प्रभावशीलाता का संदर्भ

उत्तरदाता	संख्या	प्रतिशत
हां	80	**80%**
नहीं	20	**20%**
कुल	100	**100%**

सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि अध्ययन में सम्मलित 100 महिलाओं में से 80 महिलाएं मिशन शक्ति योजना को प्रभावशाली मानती है जबकि 20 महिलाएं इसे प्रभावशाली नहीं मानती है। सारणी से यह भी स्पष्ट है कि 80 प्रतिशत महिलाएं मिशन शक्ति योजना से महिलाओं के जीवन में प्रभावशीलता प्रदान की है जबकि 20 प्रतिशत महिलाएं ऐसा नहीं मानती है।

अतः स्पष्ट है कि मिशन शक्ति योजना से महिलाओं में प्रभावशीलता अत्यधिक बढ़ा है।

मिशन शक्ति योजना वाराणसी महानगर की महिलाओं के जीवन में महत्वपूर्ण और सकारात्मक परिवर्तन लाने में भूमिका निभाई है। विशेष रूप से महिला सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के क्षेत्रों में इसका प्रभाव देखा गया है। मिशन शक्ति योजना महिलाओं में आत्मविश्वास, जागरूकता, सामाजिक, राजनीतिक और स्वालंबन की प्रवृत्ति को बढ़या है। इस योजना की कुछ सीमाओं की बाधाएं है परन्तु इसे थोड़े प्रयास से अत्यधिक सफल बनाया जा सकता है। प्रशासानिक कमियों के कारण यह योजना नगरों की अपेक्षा ग्रामीण अंचलों में इसकी पहुंच कम है। अतः यह स्पष्ट है कि यह योजना नारी के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है, जिसके उपयोग से उनके सामाजिक जीवन में अमूल–चूल परिवर्तन हुआ है। नारी के

लिए यह योजना सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम बनी है। निश्चय ही यह योजना विकसित भारत के लक्ष्य को सुनिश्चित कराने में महिलाओं की भूमिका के मार्ग प्रशस्त करेगी।

संदर्भ :

1. https://missionshakti.wcd.gov.in/about
2. https://missionshakti.wcd.gov.in/about
3. https://missionshakti.wcd.gov.in/about
4. https://missionshakti.wcd.gov.in/about
5. https://missionshakti.wcd.gov.in/about
6. https://livevns.news/Top-Headlines/women-felicitate-pm-modi-at-nari-shakti-vandana-abhinandan/cid12277805.htm
7. Ibid

प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता

डॉ अशोक कुमार मिश्रा*

सहभागिता प्रजातन्त्रीय सामाजिक व्यवस्थाओं की एक अभिन्न विशेषता है। आधुनिक राज्य सरकार परम्परागत राज्य व्यवस्थाओं से इस अर्थ में भिन्न है कि सामान्य व्यक्ति को सहभागि होने का अवसर प्राप्त हुआ । मानवीयकरण तथा सामाजिक सम्बन्धों की जो समझा प्राप्त हुई है उसमें औपचारिक संगठनों में इन्टरव्यू के द्वारा किये गये अध्ययनों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अभौतिक कारकों के रूप में उच्च स्तर की मानवीय आकयकताओं की पूती में यह एक महत्वपूर्ण घटक है यद्यपि आर्थिक प्रोत्साहनों का यह विकल्प नहीं हो सकता है लेकिन आर्थिक प्रोत्साहनों के साथ मिलकर यह जहां एक ओर उत्पादन के स्तर में वृद्धि ला सकता है वहीं दूसरी ओर श्रभिक्तों में कार्य सन्तोष को भी बढ़ा सकता है और अध्ययनों से यह बात पुष्ट हुई है। मार्क्स के अनुसार पूंजीवाद व्यवस्था में श्रमिकों व प्रबन्धकों में कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रहता है श्रमिक केवल अपना श्रम बेचता है उत्पादन की प्रक्रिया व उत्पादन के सम्बन्धों पर उसका कोई नियन्त्रण नहीं रहता है अनिवार्य रूप से उत्से उन सम्बन्धों को स्वीकार करना पड़ता है। वर्तमान समय में साम्यवादी विचारधारा द्वारा श्रमिक संघर्ष और श्रमिक क्रान्ति की जो सम्भावनायें व्यक्त कि गयी थी उन्हें समाप्त करने में कार्य के स्वरूप में रुचिपूर्ण परिवर्तन और नये उद्योगिक सम्बन्ध जिनका एक पक्ष सहभागिता भी है ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है ।

आज का श्रमिक और परम्परागत श्रमिक दोनों में पर्याप्त अन्तर है तुलनात्मक रूप से आज का श्रमिक अभी शिक्षित नगरीय अनुभव प्राप्त उच्च आय वर्ग और समाज के सभी वर्गों का सदस्य होता है वह अशिक्षित पिछड़ा हुआ वह अपने घर परिवार से निकाला गया विस्थापित सदस्य नहीं है

यह जागरूकं श्रमिक उन सभी क्रियाओं में जो उसके कार्य जीवन को प्रभावित करते हैं सहभागिता चाहता है। उन्हें पूरी तरह से प्रबन्धकों या सरकार के उपर छोड़ने को तैयार नहीं है। इसलिये सहभागिता उस श्रमिक की बदली हुई परिस्थिति की मांग है ।

अन्तराष्ट्रिय स्तर पर जो वैचारिक परिवर्तन हुये हैं अन्तराष्ट्रीय श्रम संगठन के बनने के पश्चाद श्रमिकों को बराबरी के स्तर पर लाने का प्रयाप्त निरन्तर जारी रहा। समाजवादी देशों में खासकर यूगोस्लाविया, चेकोस्लाविया, रूस इत्यादी देशों में श्रम स्वप्रबन्ध और श्रम सहभागिता की जो व्यवस्था चल रही थी उसमें भी भारतीय समाज व्यवस्था को प्रभावित किया व श्रम सहभागिता उद्योगिक सम्बन्धों की एक महत्वपूर्ण विशेषता बन गयी ।

भारत सरकार ने अनेक अध्ययन सम्बद्ध उन देशों में भेजे वहां की व्यवस्था का अध्ययन किया एवं विभिन्न देशों की अध्ययनों के आधार पर भारतीय उद्योगों में अधिनियम बनाकर सहभागिता को अनिवार्य कर दिया एक प्रकार से राज्य सरकारों के दबाव व अधी नियमों के कारण सहभागिता की प्रक्रिया भारतीय प्रबन्ध व्यवस्था में प्रारम्भ हुई । श्रम अधी नियमों ने परोक्ष रूप से इसमें सहयोग दिया। लेकिन इसका कोई निश्चित स्वस्थ न तो निर्धारित हो पाया न ही ऐसा करना सम्भव है क्योंकि उद्योगों की प्रकृती उनके प्रबन्धों, उनके संगठन और स्थानीय करण की विशेषतायें अलग-अलग रहीं हैं। इसलिये यह उद्योग विशेष पर छोड़ दिया गया कि वे सहभागिता की इस आवश्यकता पर किस रूप में क्रियान्वित करता है, परिणाम स्वरूप अलग-अलग उपक्रमों में अपने अनुसार सहभागिता की व्यवस्था का निर्माण किया । भारतीय उद्योग में कोई समान प्रकार की व्यवस्था लागू नहीं है ।

प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता की योजना का उद्भव व्ही टले कमेटी "यू. के. 1917" से मानते हैं जिसने यह सुझाव दिया कि उद्योग के उन पक्षों के साथ अनुकूलन के विचार विमर्श में श्रमिकों को सहभागिता के अधिकतम अवसर दिये जाने चाहिए। जिससे वे सर्वाधिक प्रभा वित होते हैं "कुल श्रेष्ठ-1979" एक और विद्वान प्रो० सी. एस. वालपोल 1944 का

* प्राचार्य, वाल्थर डिग्री कॉलेज, रामपुर, जौनपुर

कहना है कि श्रमिक एक कर्मचारी होने के नाते प्रबन्ध में सहभागी होता है क्योंकि भले ही वह पैसा उद्योग में नहीं लगाता हो लेकिन अपने श्रम का विनिमय उसमें अवश्य करता है। उद्योगिक संघर्ष अधिनियम 1947 के अन्तर्गत वटकर्स कमेटी की स्थापना अनिवार्य कर दी गयी । जिसमें बैंक तथा उन सभी उद्योगिक संस्थानों मैं जिसमें 100 या 100 से अधिक कर्मचारी काम करते हैं प्रबन्धकों तथा श्रमिकों के समान संख्या में प्रतिनिधियों से वरकर्स कमेटी गठित की जाय। 1969 में राष्ट्रीय श्रम संगठनों ने अपने सुझाव दिये कि श्रमिकों के प्रतिनिधियों उन संगठनों में से चुने जायें जिनमें श्रमिक काम करते हैं और यह चयन पंजी कृत यूनियन से विचार विमर्श के द्वारा किया जाय। लेकिन संवैधानिक वाध्यताओं और आदर्शों की पूर्ति के लिये निर्मित इन वरकर्स कमेटी यों के गठन से कोई सफलता प्राप्त नहीं हुयी है। तत्पश्चात् 1956 में उद्योगिक पालिसी घोषणा-पत्र में संयुक्त प्रबन्ध काउन्सिल के निर्माण पर बल दिया गया और श्रमिक नेता इस प्रबन्ध में सहभागिता के प्रति क्या विचार रखते हैं इन विषयों पर विस्तार से विवेचन आगे हैं। लेकिन यह प्रबन्ध समी तियां एक प्रकार से सुझाव देने वाली इकाईयां बन गयी । इनके निर्णय व हस्तक्षेप से श्रमिकों की स्थिति में कोई गहरा व वास्तविक परिवर्तन नहीं आया ।

बैंकों के राष्ट्री यकरण के पश्चात् निर्देशक मंडल में श्रमिक प्रतिनिधियाँ को स्थान दिया गया। जहां प्रतिनिधि यूनियन नहीं है अर्थवा निश्चित तिथि तक प्रतिनिधित्व के लिए नहीं आता है तो ऐसी स्थिति में सरकार किसी को स्वयं निर्देशक मंडल में नियुक्त कर सकती है दिसम्बर 1972 से कर्मचारी निर्देशक की नियुक्ति बोर्ड स्तर पर बैंक उद्योग में की जाने लगी है अन्य निर्देशक की तरह इन प्रतिनिधियों को सभी अधिकार समान रूप से दिये जाते हैं लेकिन नीति श्रमिक निर्देशक का चयन के लिए निर्माण करने में सहभा गिता उनकी सी मित है। निम्नलिखित बातें महत्वपूर्ण है -

1. उद्योग में कार्य कर रही यूनियन प्रतिनिधियों के नाम का प्रस्ताव करती है।
2. यूनियन तीन नाम प्रस्तुत करती है सरकार उनमें से किसी एक को नामांकित करती है लेकिन इसके लिए नामांकित व्यक्ति की निम्नलिखित विशेषताओं का होना आवश्यक है -
   - अ- कम से कम तीन वर्ष का अनुभव ।
   - ब- उसी उद्यम का कर्मचारी हो ।
   - स- कम से कम 25 वर्ष की आयु प्राप्त हो ।
   - द- उसके विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही न चल रही हो ।
3. किसी विशेष शैक्षणीक बाध्यता की आवश्यकता नहीं है। लेकिन उसे उद्यम के कार्य करने के विभिन्न पक्ष की जानकारी होनी चाहिए ।
4. श्रमिक निर्देशक मूल रूप से बैंक का कर्मचारी भी होता है। और कर्मचारी के लिए निर्मित सभी नियमों से प्रतिबन्धित रहता है ।
5. बोर्ड की बैठकों में शामिल होने के लिए अन्य निर्देशकों की तरह अती रिक्त भत्ता तथा सुविधाएं प्राप्त होंगी ।
6. ये नियुक्ति प्रारम्भिक स्तर पर दो वर्ष के लिए होती है। लेकिन वह संस्थान में कर्मचारी रहता है और फीर यूनियन उसका नाम प्रस्तावीत करता है तो उसका नामांकन अगले दो वर्षों के लिए बढ़ सकता है ।

ऐसे उद्यम जिनमें एक से अधिक इकाईयां होती है प्रत्येक पृथक इकाईयों से क्रमवार श्य से श्रमिक प्रतिनिधि या श्रमिक निर्देशक का चुनाव होगा। जो अध्ययन सामने आये उनमें यह देखा गया कि ये कर्मवारी निर्देशक बैंक व्यवस्था में अपेक्षा-अनुसार कार्य नहीं कर पाये इसकी असफलता के अनेक कारणं रहे हैं-

1. सरकार के सहभागिता की व्यवस्था कई स्तर पर प्रारम्भ की है। लेकिन ब्रान्च स्तर पर या क्षेत्रीय स्तर पर यह व्यवस्था न होने से श्रमिकों की रूची इस व्यवस्था में नहीं रह पाती ।
2. बोर्ड के 15 निर्देशक में केवल दो निर्देशक श्रमिक प्रतिनिधि अल्प संख्या होने के कारण प्रभावी नहीं हो पाते 15 निर्देशकों में एक कर्मचारी में से होता है और एक गैर कर्मचारियों में से होता है ।
3. श्रमिक प्रतिनिधि निर्देशक किसी ट्रेड यूनियन का प्रतिनिधित्व होता है । अतः वह व्यक्तिक रूप से तटस्थ नहीं रहता है।

4. यह श्रमिक निर्देशक प्रबन्ध के प्रकार्यों में प्रशिक्षित नहीं होते हैं ।
5. बैंकों में इतनी यूनियनें होती हैं और इतने नेता होते हैं इनमें आपसी खींच-तान होती है कि किसी एक व्यक्ति को सबका प्रतिनिधि मान लेना व्यवहारिक रूप से उचित प्रतीत नहीं होता। इसके प्रति संकायें और अनिश्चिततायें निरन्तर बनी रहती है ।

इसके अतिरिक्त ट्रेड यूनियन नेताओं की यह मान्यता है कि प्रतिनिधि श्रम यूनियनेंर्ने आन्दोलन को कमजोर करते हैं उसका प्रबन्धकों को सहयोग देना निरन्तर संदेह उत्पन्न करता रहता है और वह स्वयं प्रबन्धक मण्डल में आगे हो जाने के कारण श्रमिकों की विशिष्ट समस्याओं के प्रति उसकी सोच कमजोर पड़ जाती है। लेकिन इन सारी कमियों के बावजूद सहभागिता, प्रजातन्त्रिय, वैचारिकी और व्यवस्था का अभिन्न अंग होने के कारण सभी प्रकार के उद्योगों में महत्वपूर्ण एवं समान रहती है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Pandey, S.M. - "Government Employees Strikes: A Study in White Unionism in India", Meenakshi Prakashan, Meerut, 1969.
2. Punekar, Deodhar & Shankaran "Labour Welfare, Frade Unionism and Industrial Relations", Himalaya Publishing House, Bombay, 1978.
3. Punekar, S.D. "Trade Unionism in India", New Book Co., Bombay, 1948.
4. Punekar, S.D. & Manoroma G. Savur "Management White Collar Relations", Res Soca Popular, Gujrat, 1969.
5. Singh, V.B. -"An Introduction to the Study of Indian Labour Problem",
6. Sood, Santosh "Trade Union Leadership in India". Deep & Deep Publications, New Delhi, 1984.
7. Srivastava, R.M. "Management of Banks", Rastogi Prakashan, Meerut, 1979.
8. Kahn, V.B. 1960, 1966, 1978 "Edition Indian Trade Unionism A Survey" Manak Talash, Bombay.
9. Mohan, Das 1975 "Officer Association in India Their Role in Democrearcy "Frends & Guide A Journal of Canara Bank Officer Association.
10. Singh, V.B. 1967 An Introduction the Study of Indian Labour Problem, Shivalal Agrawal & Co. Agra.
11. Goyal, R.M. 1968 White Coller Trade Unionissm, Indian Journal of Labour Economicas, Vol. 10, No. 4, P. 107.
12. Goldsteinve B1954 Unions and Professional Employeer Journal of Buissness Vol. 27, No. 4.
13. Goyal, P.C. 1968 An Estimate of White Coller Work Force and Unionization of India Indian Journal of Labour Economics Vol. 10, No. 4, P. 122.

बाल विवाह के स्वास्थ्य परिणाम : एक व्यापक समीक्षा

कुमारी शोभा*

परिचय :–

बाल विवाह, जिसे 18 वर्ष से कम उम्र के बच्चे के औपचारिक या अनौपचारिक मिलन के रूप में परिभाषित किया गया है, विशेष रूप से बालिकाओं के लिए दूरगामी परिणामों वाला एक प्रचलित वैश्विक मुद्दा है। यूनिसेफ के अनुसार, हर साल 18 वर्ष से कम उम्र की लगभग 12 मिलियन बालिकाओं की शादी होती है, यानी हर मिनट 23 बालिका (1) बाल विवाह सामाजिक मानदंडों, गरीबी और लैंगिक असमानता में गहराई से निहित है, और यह युवा बालिकाओं के शारीरिक, मानसिक और प्रजनन स्वास्थ्य के लिए एक महत्वपूर्ण खतरा पैदा करता है।

शारीरिक स्वास्थ्य परिणाम :–

बाल विवाह से बालिकाओं को विभिन्न शारीरिक स्वास्थ्य जोखिमों का सामना करना पड़ता है। प्रारंभिक गर्भावस्था एक प्राथमिक चिंता है, क्योंकि 15 वर्ष से कम उम्र की बालिकाओं की प्रसव के दौरान मृत्यु की संभावना 20–24 वर्ष की महिलाओं की तुलना में पांच गुना अधिक होती है। इसके अतिरिक्त, बाल वधुओं को प्रसूति संबंधी जटिलाताओं, जैसे फिस्टुला, बाधिक प्रसव और प्रसवोत्तर रक्तस्राव का अधिक खतरा होता है। ये जटिलताएँ दीर्घकालिक स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म दे सकती हैं, जिनमें बांझपन, दीर्घकालिक दर्द और सामाजिक अलगाव शामिल हैं।

इसके अलावा, बढ़ती पोषण संबंधी मांगों और पर्याप्त भोजन और स्वास्थ्य देखभाल तक सीमित पहुँच के कारण बाल वधुओं में कुपोषण और एनीमिया की आशंका अधिक होती है। जल्दी यौन संबंध शुरू करने और अपने प्रजनन स्वास्थ्य पर नियंत्रण की कमी के कारण उनमें एचआईवी सहित यौन संचालित संक्रमण (एसटीआई) होने की संभावना अधिक होती है।

मानसिक स्वास्थ्य परिणाम :–

बाल विवाह के मानसिक स्वास्थ्य परिणाम समान रूप से चिंताजनक है। बाल वधुओं को बढ़ते अलगाव, शिक्षा की हानि और व्यक्तिगत विकास के सीमित अवसरों का सामना करना पड़ता है। वे सामाजिक कलंक, घरेलू हिंसा और भावनात्मक संकट का अनुभव कर सकते हैं, जिससे अवसाद, चिंता और अभिघातजन्य तनाव विकार (PTSD) हो सकता है। बाल विवाह के मनोवैज्ञानिक आघात के परिणाम आजीवन हो सकते हैं, जिससे स्वस्थ्य रिश्ते बनाने, अपने लक्ष्यों को आगे बढ़ाने और अपने समुदायों में योगदान करने की उनकी क्षमता प्रभावित हो सकती है।

प्रजनन स्वास्थ्य परिणाम :–

बाल विवाह बालिकाओं के प्रजनन स्वास्थ्य के सामान्य प्रक्षेप पथ को महत्वपूर्ण रूप से बाधित करता है। जल्दी और बार–बार गर्भधारण करने से मातृ मृत्यु और रूग्णता का खतरा बढ़ा जाता है, साथ ही उनके नवजात शिशुओं के लिए जटिलताएँ भी बढ़ जाती हैं। बाल वधुओं के कम वजन वाले बच्चे पैदा होने और मृत बच्चे के जन्म की संभावना अधिक होती है। उन्हें गर्भनिरोधक और प्रसवपूर्ण देखभाल तक पहुँचने में भी चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है, जिससे उनके प्रजनन स्वास्थ्य को और अधिक खतरा हो सकता है।

सामाजिक आर्थिक परिणाम :–

बाल विवाह के कारण अक्सर समय से पहले स्कूल छोड़ना पड़ता है, जिससे बालिकाओं की शैक्षिक उपलब्धि और आर्थिक अवसर सीमित हो जाते हैं। उनके गरीबी और निर्भरता में फंसे रहने की अधिक संभावना है, जिससे उनके और उनके परिवारों के लिए नुकसान का चक्र जारी रहेगा। बाल विवाह लैंगिक असमानता में भी योगदान देता है, क्योंकि यह पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं को मजबूत करता है और बालिकाओं की स्वायत्तता और निर्णय लेने की शक्ति को प्रतिबंधित करता है।

* समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

मुद्दे को संबोधित करना :–

बाल विवाह को संबोधित करने के लिए एक बहु–आयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो इस प्रथा के मूल कारणों से निपट सके। शिक्षा और आर्थिक अवसरों के माध्यम से बालिकाओं को सशक्त बनाना महत्वपूर्ण है। लैंगिक समानता को बढ़ावा देना और हानिकारक लिंग मानदंडों को चुनौती देना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, कानूनी ढांचे को मजबूत करना और बाल विवाह पर प्रतिबंध लागू करना इस हानिकारक प्रथा को खत्म करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

संदर्भ सूची –

1. United Nations Children's Fund (UNICEF), (2023) Child Marriage, Retrieved from https://data.unicef.org/topic/child-protection/
2. Girls Not Bides. (2023) Child Marriage Facts and Figures. Retrieved from https://www.girlsnotbrides.org/
3. World Health Organization (WHO) (2023), Child Marriage, Retrieved from https://www.who.int/news/item/07-03-2013-child-marriages-000-every-day-more-than-140-million-girls-will-marry-between-2011-and-2020.
4. The United Nations Population Fund (UNFPA). (2023). Child marriage. Retrieved from https://www.unfpa.org/child-marriage.
5. International Center for Research on Woman (ICRW), (2023). Child Marriage. Retrieved from https://www.icrw.org/issues/child-marriage/
6. Plan International. (2023). Child Marriage. Retrieved from https://plan-international.org/publications/global-policy-child-early-and-forced-marriages-and-unions/

हिंदी आलोचना की विकास धारा : एक संक्षिप्त अध्ययन

डॉ. जीतेन्द्र ठाकुर*

सारांश

हिन्दी आलोचना का इतिहास रीतिकाल से थोड़ा पहले प्रारम्भ होता है। रीतिकाल का रीतिबद्ध साहित्य लक्षणों एवं उदाहरणों के रूप में रचा जाता था। हालाँकि हिन्दी आलोचना का प्रारम्भ गद्य के अन्य विधाओं के साथ भारतेन्दु युग से प्रारम्भ होता है। समय बदलते परिवेश के अनुसार आलोचना की प्रविधि एवं प्रवृत्ति भी बदलती चली गयी। आलोचना का मुख्य उद्देश्य किसी भी रचना का सभी दृष्टिकोण से पाठक तक सही रूप में पहुँचाना तथा उसके पक्ष–प्रतिपक्ष तथ्यात्मक तार्किक ढंग से विचार करना होता है। यह हिन्दी साहित्य में शुक्लपूर्व, शुक्लकालीन एवं शुक्ल परवर्ती हिन्दी आलोचना की दशा एवं दिशा निरन्तर परिवर्तित हुई है। हिन्दी आलोचना के इस विकास धारा का विश्लेषण इस शोध पत्र के माध्यम से विस्तारपूर्वक करबद्ध रूप से प्रस्तुत किया गया है।

बीज शब्द : लोकमंगल, कवि कर्त्तव्य, केलि–कौतूहल, परकीया, स्वकीया, साहित्येतिहास, टीमटाम, संवादधर्मिता, साहित्यालोचन, परमुखापेक्षिता, परदुःखकातर इत्यादि।

परिचय

प्रेमचंद के विचार से, 'साहित्य का उद्देश्य' और उसकी सर्वोत्तम परिभाषा "जीवन की आलोचना है।"[1] उनके पूर्व प्रसिद्ध अँग्रेजी आलोचक मैथ्यू आर्नल्ड ने भी उसे 'जीवन की आलोचना' कहकर ही परिभाषित किया था। इस पद्धति से सोचें, तो आलोचना 'जीवन की आलोचना की आलोचना' हुई। किंतु आलोचना को ऐसी किसी परिभाषा में बाँधना उसके स्वरूप को सीमित और सरलीकृत रूप में समझना होगा। वस्तुतः आलोचना एक ऐसे बिंदु पर स्थित होती है, जहाँ से उसे जीवन और 'जीवन की आलोचना' यानी साहित्य–दोनों दृष्टिगत होते हैं और उसका काम इन दोनों के संश्लिष्ट अंतर्संबंध को समझना और विश्लेषित करना होता है। इस तरह आलोचना का काम कठिन हो जाता है।

बावजूद इसके, हिंदी में आलोचना की समृद्ध परंपरा रही है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामविलास शर्मा एवं डॉ. नामवर सिंह–इन चार स्तंभों के साथ ही ऐसे कई आलोचक रहे हैं, जिन्होंने हिंदी आलोचना के जीवनधर्मी विकास, उसके मानवीय चरित्र के निर्माण और उसके लोकतांत्रिक स्वरूप के प्रसार में गंभीर योगदान दिया है।

मुख्य भाग

भारतेंदु–युग में पं. बालकृष्ण भट्ट लिखते हैं : "साहित्य जनसमूह के हृदय का विकाश है।"[2] द्विवेदी–युग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी 'कवि–कर्त्तव्य' के रूप में अपने आलोचकीय कर्त्तव्य का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जिसमें कहते हैं कि "यमुना के किनारे केलि–कौतूहल का अद्‌भुत–अद्‌भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओं पर प्रबंध लिखने की अब कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के 'गतागत' की पहेली बुझाने की।"[3] क्योंकि उनके 'साहित्यालाप' का उद्देश्य यह है कि "काव्यों की रचना और उनका विषय ऐसा होना चाहिए जो देश और काल के अनुकूल हो।"[4]

आचार्य शुक्ल एक ओर 'कविता क्या है' लिखते हैं, तो दूसरी ओर 'आलोचना क्या है' इसे अपने कृतित्व से आलोकित करते चलते हैं। आचार्य शुक्ल की तुलसी, सूर और जायसी पर लिखी गई आलोचना सशक्त आलोचना–कर्म की कसौटी है, इसमें किसे संदेह हो सकता है? आचार्य शुक्ल अपने लेखन से गंभीरता–मंडित आलोचना–कर्म को शीर्ष पर स्थापित करते हुए भी न केवल लोक और लोकमंगल की भावना को अपने हृदय से सदैव लगाए रखते हैं, बल्कि गंभीर किस्म की सर्जनात्मकता के बावजूद अपनी आलोचना–भाषा को जन–विरोधी, जीवन–विरोधी या अबूझ होने की कभी आजादी नहीं देते। अपने समय की रचनाशीलता पर प्रकाश डालना उनका मुख्य कार्य नहीं था, फिर भी उन्होंने भरसक उसे देखा और उस पर महत्त्वपूर्ण एवं मार्मिक टिप्पणियाँ कीं। वे जितनी हैं, मूल्यवान् हैं।

* बड़का गाँव, केशरी नगर, मड़वन, मुजफ्फरपुर

आचार्य द्विवेदी ने अपनी आलोचना के द्वारा आचार्य शुक्ल की ही परंपरा का अपनी तरह से विकास किया। इस प्रक्रिया में वे अनेक स्थलों पर उनसे असहमत होते रहे, टकराते रहे और अपनी मौलिक मान्यताएँ प्रस्तुत करते रहे। यद्यपि उनका मुख्य क्षेत्र साहित्येतिहास और अनुसंधान था, तथापि उनके आलोचना–कर्म से हिंदी में 'दूसरी परंपरा की खोज' संभव हो सकी और 'कबीर' एवं 'आदिकाल' का सशक्त ढंग से प्राकट्य हो सका। उनके लिए 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है'। उनका कथन है : "मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदुःखकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।"[5] उनकी दृष्टि में 'साहित्य का प्रयोजन–लोककल्याण' है। कहते हैं : "जिस पुस्तक से यह उद्देश्य सिद्ध नहीं होता; जिससे मनुष्य का अज्ञान, कुसंस्कार और अविवेक दूर नहीं होता; जिससे मनुष्य शोषण और अत्याचार के विरुद्ध सिर उठाकर खड़ा नहीं हो जाता; जिससे वह छीना–झपटी, स्वार्थपरता और हिंसा के दलदल से उबर नहीं पाता, वह पुस्तक किसी काम की नहीं है।"[6] कहने की आवश्यकता नहीं कि आचार्य शुक्ल के 'लोकमंगल' और आचार्य द्विवेदी के 'लोककल्याण' में कोई तात्त्विक अथवा उद्देश्यगत भेद नहीं है।

इसके आगे हिंदी के जिन साहित्यकारों ने मध्यवर्ग की विचारधारा को त्यागकर मजदूर–वर्ग के क्रांतिकारी दर्शन मार्क्सवाद को स्वीकार किया, उनमें डॉ. रामविलास शर्मा प्रमुख हैं। डॉ. शर्मा ने आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी की आलोचना को वैज्ञानिक ढंग से विकसित किया। उन्होंने अपने देशकाल की साहित्यभूमि के साथ–साथ उसकी निकट पृष्ठभूमि को अपनी आलोचना के केंद्र में रखते हुए उसकी जनपक्षीय व्याख्या प्रस्तुत की। वस्तुतः आलोचना–कर्म में उनके प्रवृत्त होने का मुख्य आधार ही उनके समय की रचनाशीलता और आलोचना का द्वंद्व है। उन्होंने कहा भी है कि "यदि मेरे प्रिय कवि पर प्रहार न किए गए होते तो मैं आलोचना के क्षेत्र में संभवतः उतरता ही नहीं।"[7] इस आलोचकीय दायित्व की मूल्यवत्ता शब्दों और सम्मानों से नहीं आँकी जा सकती। उनकी आलोचना–दृष्टि रचना को रचनाकार के व्यक्तित्व से अलग करके नहीं देखती। इस दृष्टि की अपनी सीमा है, किंतु सच्चाई है कि बीसवीं शताब्दी की हिंदी आलोचना को शुक्लजी के बाद निहायत ही नवीन और वैज्ञानिक ढंग से विकसित करने की सबसे पहली, गंभीर और व्यवस्थित कोशिश उन्होंने ही की। अनावश्यक विशेषणों, व्यर्थ पदावलियों और अनुचित 'टीमटाम' से मुक्त उनकी आडंबरहीन आलोचना–भाषा हिंदी साहित्य की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

डॉ. शर्मा की आलोचना का केंद्रीय विषय जहाँ मुख्य रूप से आजादी के पहले का आधुनिक हिंदी साहित्य है, वहीं डॉ. नामवर सिंह की आलोचना का मुख्य विषय आजादी के बाद का हिंदी साहित्य रहा है। 'कहानी : नई कहानी' और 'कविता के नए प्रतिमान'–जैसी कृतियों में अपने समय की रचनाशीलता के विश्लेषण और मूल्यांकन के बहाने उन्होंने रचना और आलोचना के लिए नए प्रतिमान निर्धारित किए। वे अपने साहित्यिक विमर्शों की तेजस्विता और अपनी आलोचना–भाषा की सर्जनात्मकता के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस आलोचना–भाषा में ज्ञान और अनुभूति की संश्लिष्टता से उद्भूत प्रायः एक उच्च कोटि की विदग्धता, जीवंतता और किंचित् वक्रता मिलती है। वे "आलोचना के एकेडमिक ढाँचे को तोड़कर उसे एक पठनीय विधा बनाते हैं। यह पठनीयता दरअसल उन्होंने गहरे अध्यवसाय और आत्मसंघर्ष के बाद परस्पर वाद–विवाद के जरिए आलोचना में संवाद की ताकत के साथ हासिल की है। यह संवादधर्मिता हिंदी आलोचना की अन्यतम उपलब्धि है।"[8] ध्यातव्य है कि 'पठनीयता' और 'संवादधर्मिता'–जैसे गुण जीवनधर्मी आलोचना के ही तत्त्व हैं।

हिंदी आलोचना की विकास–धारा बताती है कि उसका मूल चरित्र क्या है। उक्त सभी आलोचकों की पद्धतियाँ भले अलग–अलग रही हों, उनके मुहावरे और बीज–शब्द भिन्न–भिन्न रहे हों, उनकी आलोचना के क्षेत्र और व्याख्या के स्रोत एक–दूसरे से मेल न खाते रहे हों, पर निश्चित तौर पर वे सभी एक ही प्रगतिशील भूमि पर खड़े थे, जो कभी 'लोकवाद' कहलाई, तो कभी 'मानववाद' और कभी 'जनवाद'। नामवरजी ने प्रलेस द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में 'धर्मनिरपेक्षता और साहित्य' विषय पर व्याख्यान देते हुए कहा था : "एक धर्मनिरपेक्षता कबीर ने दी और एक धर्मनिरपेक्षता कबीर से भिन्न जायसी से मिली, एक और धर्मनिरपेक्षता है जो सूर से मिली है, एक और धर्मनिरपेक्षता तुलसी से मिली है।"[9] आशय यह कि जैसे ये सारे भक्त कवि अपनी अलग–अलग विशेषताओं के साथ धर्मनिरपेक्ष थे, वैसे ही उक्त सभी आलोचक अपनी तरह से प्रगतिशील हैं। हिंदी आलोचना के स्वभाव में मौजूद इस प्रगतिशीलता को सींचकर जरखेज बनाने में कई और महत्त्वपूर्ण आलोचकों ने भी अपना काफी खून–पसीना एक किया है।

सवाल उठता है कि क्या समकालीन आलोचना अपनी इस परंपरा का वहन कर रही है? क्या नामवर–युग के बाद उसमें कोई गुणात्मक परिवर्तन दिख रहा है? क्या आज की बदली हुई परिस्थितियों और प्रश्नों के बीच वह अपने दायित्व के निर्वहन में सक्षम लग रही है? क्या उसके भीतर से अपने समय के शब्द की पहचान करानेवाला कोई सशक्त प्रतिनिधि स्वर उभर रहा है? इन प्रश्नों के उत्तर में प्रायः हमें मिश्रित प्रतिक्रिया सुनने को मिलती है।

बहरहाल, यहाँ थोड़ा ठहरें और हिंदी आलोचना के समकालीन परिप्रेक्ष्य पर नजर डालें, जिसमें एक साथ कई पीढ़ियों के आलोचक मौजूद हैं। नामवरजी ने आलोचना को अपना पूरा जीवन दिया। वे अत्यंत उत्साह और संलग्नता के साथ नए–से–नए लेखक से समानता के स्तर पर विचार–विमर्श करते थे, बिना उसे आतंकित किए हुए या उसमें हीनभाव जगाए हुए। इस संदर्भ में नवलजी ने उनके विषय में सही लिखा था कि "वे उसकी बातें सुनते हैं, उसका लिखा हुआ पढ़ते हैं और उसमें कोई नई बात होती है, तो उसे मुक्त भाव से ग्रहण कर लेते हैं।"[10] यद्यपि तब उनका लिखना प्रायः बंद हो चुका था, तथापि उनकी चेतना चुकी नहीं थी। इसका सबूत उनके व्याख्यान थे, जो गंभीरता और शालीनता से युक्त होते थे, साथ ही उनमें सांकेतिक रूप से तीक्ष्ण व्यंग्यात्मकता और आक्रामकता भी दिखाई देती थी। बावजूद इसके, साहित्यालोचन में जो महत्त्व लेखन का है, वह व्याख्यान का नहीं हो सकता। अतः तब नामवरजी का व्यक्तित्व भले हिंदी के केंद्र में रहा हो, पर उनकी आलोचना उसकी पृष्ठभूमि में जा चुकी थी।

स्वाभाविक तौर पर आज के अधिकतर आलोचकों की विचारधारा मार्क्सवादी है। वे अपनी विचारधारा को लेकर पूरी तरह आश्वस्त दिखाई देते हैं और उसी के अंतर्गत अपना आलोचनात्मक लेखन करते हैं। "पक्ष को लेकर चलने के नाते उनके लेखन में 'हम' और 'वे' की टकराहट चलती रहती है, इस सहज आशा के साथ कि इस वाद–प्रतिवाद में से संवाद उभरेगा।"[11]

विश्वनाथ त्रिपाठी वरिष्ठ आलोचक हैं। प्रगतिशील विचारधारा से युक्त होने के बावजूद उनकी आलोचना कट्टरता–मुक्त, सर्जनात्मक और गहन अंतर्दृष्टि से संयुक्त है। उन्होंने 'संदेश–रासक' का संपादन किया है। 'हिंदी आलोचना', 'लोकवादी तुलसीदास', 'प्रारंभिक अवधी', 'मीरा का काव्य', 'हिंदी साहित्य का सरल इतिहास' (पूर्व में 'हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' नाम से प्रकाशित), 'देश के इस दौर में' (परसाई–केंद्रित), 'हरिशंकर परसाई' (विनिबंध), 'कुछ कहानियाँ : कुछ विचार', 'पेड़ का हाथ' (केदारनाथ अग्रवाल–केंद्रित), 'केदारनाथ अग्रवाल का रचना–लोक', 'उपन्यास का अंत नहीं हुआ है', 'कहानी के साथ–साथ', 'आलोचक का सामाजिक दायित्व' आदि उनकी महत्त्वपूर्ण आलोचना–पुस्तकें हैं। 'संदेश–रासक' के अलावा उन्होंने इन पुस्तकों का भी संपादन किया है–'कविताएँ 1963', 'कविताएँ 1964', 'कविताएँ 1965' (तीनों अजित कुमार के साथ), 'हिंदी के प्रहरी : रामविलास शर्मा' (अरुण प्रकाश के साथ), 'चंद्रधर शर्मा गुलेरी : प्रतिनिधि संकलन', 'केदारनाथ अग्रवाल : संकलित कविताएँ' एवं 'मध्यकालीन हिंदी काव्य'।

निर्मला जैन ने काव्यशास्त्र तथा मध्यकालीन साहित्य का विशेष अध्ययन किया है, जिससे लाभ उठाती हुई वे अपना विवेचन प्रस्तुत करती हैं। 'रस–सिद्धांत और सौंदर्यशास्त्र' में उन्होंने दो भिन्न प्रकृति के साहित्यानुशासनों की तुलनात्मक विवेचना इसी रूप में की है। उनकी अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं–'आधुनिक हिंदी काव्य में रूप विधाएँ', 'आधुनिक साहित्य : मूल्य और मूल्यांकन', 'हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी', 'आधुनिक हिंदी काव्य : रूप और संरचना', 'पाश्चात्य साहित्य–चिंतन', 'प्लेटो के काव्य–सिद्धांत', 'कविता का प्रति संसार', 'कथाप्रसंग–यथाप्रसंग' आदि। उन्होंने साहित्यालोचन–संबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण अनुवाद भी किए हैं, यथा–'उदात्त के विषय में', 'बंगला साहित्य का इतिहास', 'समाजवादी साहित्य : विकास की समस्याएँ' एवं 'साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन'।

परमानंद श्रीवास्तव की आलोचना वैसे तो विविध विधाओं से संबंधित होती है, लेकिन उसका मुख्य क्षेत्र कविता है। 'नई कविता का परिप्रेक्ष्य', 'हिंदी कहानी की रचना–प्रक्रिया', 'कवि कर्म और काव्यभाषा', 'उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा', 'जैनेंद्र के उपन्यास', 'समकालीन कविता का व्याकरण', 'समकालीन कविता का यथार्थ', 'जायसी', 'निराला', 'शब्द और मनुष्य', 'उपन्यास का पुनर्जन्म', 'कविता का अर्थात्', 'कविता का उत्तरजीवन' आदि पुस्तकें उन्हें एक समर्थ और सतत सक्रिय आलोचक के रूप में स्थापित करती हैं। उनकी 'समकालीन कविता का व्याकरण' नामक पुस्तक एक विवादास्पद विषय पर सहज ढंग से लिखी हुई पुस्तक है और 'कविता का अर्थात्' में कविता को जानने–समझने का उनका गंभीर प्रयास दिखता है। उनकी आलोचना से कवियों को बराबर एक गहरा संतोष मिलता रहा है। वे पाठ की संरचना में अर्थ की 'कई झंकृतियों' और 'कई गूँजों' का अस्तित्व मानते हैं, इसे हम पाठक का जनतंत्र कह सकते हैं। उनके विषय में डॉ. शंभुनाथ की

राय है : "आलोचना की सार्थकता मध्यस्थता में नहीं है, इसलिए पाठ को न छोड़ते हुए उससे बाहर भी विचरण करना होगा। पाठ की व्याख्या तक आलोचना की समाप्ति नहीं है। इस मामले को परमानंद श्रीवास्तव ने 'कविता में समय और समय में कविता को देखने की कोशिश' कहा है।"[12]

नंदकिशोर नवल हिंदी के यशस्वी आलोचक हैं। उनकी सक्रियता समकालीन हिंदी आलोचना के ज्ञान–गरिष्ठ और बुद्धि–बोझिल संसार में ताजगी की नई–हरी फड़फड़ाहट की तरह रही है। उनकी लेखकीय यात्रा कितनी अथक रही है, इसका पता इस बात से भी चलता है कि उनके द्वारा लिखित आलोचनात्मक पुस्तकों की संख्या तीन दर्जन के करीब है। उनके नाम हैं–'कविता की मुक्ति', 'हिंदी आलोचना का विकास', 'महावीरप्रसाद द्विवेदी' (विनिबंध), 'प्रेमचंद का सौंदर्यशास्त्र', 'शब्द जहाँ सक्रिय हैं', 'यथाप्रसंग', 'निराला और मुक्तिबोध : चार लंबी कविताएँ', 'आधुनिक हिंदी कविता', 'समकालीन काव्य–यात्रा', 'मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदना', 'दृश्यालेख', 'मुक्तिबोध' (विनिबंध), 'निराला : कृति से साक्षात्कार' (पहला खंड 1997 में सारांश प्रकाशन, दिल्ली से और दूसरा खंड 2000 में वहीं से प्रकाशित। इन दोनों का संयुक्त संस्करण 2009 में राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित), 'रचना का पक्ष', 'शताब्दी की कविता', 'पार्श्वच्छवि', 'निराला–काव्य की छवियाँ', 'कविता के आर–पार', 'कविता : पहचान का संकट', 'मुक्तिबोध की कविताएँ : बिंब–प्रतिबिंब', 'क्रमभंग', 'निकष', 'पुनर्मूल्यांकन', 'उत्तर–छायावाद और रामगोपाल शर्मा 'रुद्र'', 'हाशिया', 'मैथिलीशरण', 'तुलसीदास', 'आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास', 'रचनालोक', 'सूरदास', 'रीतिकाव्य', 'दिनकर : अर्धनारीश्वर कवि', 'कवि अज्ञेय', 'नागार्जुन का काव्य' एवं 'हिंदी कविता : अभी, बिल्कुल अभी'। इसके अलावा उन्होंने दो दर्जन से अधिक पुस्तकों का संपादन भी किया है, जिनमें 'असंकलित कविताएँ : निराला', 'निराला रचनावली' (आठ खंड), 'रामावतार शर्मा : प्रतिनिधि संकलन', 'कुरुक्षेत्र–विमर्श', 'कामायनी–परिशीलन', 'राकेश समग्र', 'मुक्तिबोध : कवि–छवि', 'मैथिलीशरण संचयिता', 'नामवर संचयिता', 'हिंदी साहित्यशास्त्र, 'निराला : कवि–छवि', 'बीसवीं शती : हिंदी की कालजयी कृतियाँ', 'स्वतंत्रता पुकारती', 'संधि–वेला', 'हिंदी की कालजयी कहानियाँ', 'दिनकर रचनावली' (आरंभिक पाँच काव्य–खंड) नामक पुस्तकें नितांत पठनीय ही नहीं, अवश्यमेव संग्रहणीय भी हैं।

एक आलोचक के रूप में नवलजी की अपनी विशेषताएँ हैं। हिंदी आलोचना में उनका विकास एक भिन्न सारणी पर हुआ है, जो प्रायः मौलिक और मुक्त है। यह उनकी ऐसी विशेषता है, जो अपनी परंपरा से बँधे प्रगतिशील आलोचकों की भीड़ से उन्हें अलग करती है और गौरतलब बनाती है। उनकी आलोचना साहित्यिक पिष्टपेषण और चर्वितचर्वण की प्रवृत्ति, यानी वैचारिक जड़ता का विरोध करती रही है। वह अपने आरंभकाल से ही आत्मसंघर्ष, आत्मालोचन और आत्मसुधार की प्रक्रिया से गुजरती रही है। उन्होंने मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के प्रभाव में लिखना शुरू किया था, लेकिन धीरे–धीरे वे उसकी सीमाओं से वाकिफ होते गए। बहुत सहज भाव से उन्होंने हिंदी में मार्क्सवादी आलोचना को अपनी तरह से विकसित करने और उसे वैचारिक पूर्वग्रहों से मुक्त बनाने की कोशिश की है। हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना को अत्युच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करनेवाले आलोचक डॉ. नामवर सिंह ने 4 सितंबर, 1983 को दिल्ली में आयोजित 'जनवादी लेखक संघ' के सम्मेलन में दिए अपने भाषण में कहा था कि "मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र को यदि परंपरावाद की लकीर का फकीर होने से मुक्त होना है, तो फिर उन लेखकों के पास जाना होगा, जिन्होंने इस परंपरावाद को चुनौती देने का साहस किया है।" नामवरोत्तर हिंदी आलोचना में यह साहस जिस शिद्दत, साफगोई और ईमानदारी के साथ नवलजी में दिखाई देता है, किसी अन्य आलोचक में नहीं। स्वयं मार्क्स भी साहित्य की कसौटी विचार को न मानते हुए उसे एक स्वतंत्र कला मानते थे, जिसका आधार रचनात्मक कल्पना और मुक्त सृजनात्मकता होती है। गेटे का प्रसिद्ध कथन है कि "सैद्धांतिकी मुरझा जाती है, जबकि जीवन का वृक्ष हरा रहता है।"

नवलजी साहित्य को किसी खास सैद्धांतिकी या विचारधारा से बद्ध होकर देखना उचित नहीं मानते, क्योंकि इससे उसके महत्त्व और सौंदर्य की पंखुड़ियाँ पूर्णतः प्रस्फुटित नहीं हो पातीं। उनकी दृष्टि में, विचारधारा एक पूरी व्यवस्था होती है, जबकि जरूरी नहीं कि कोई रचना उस व्यवस्था को मानकर ही चले। विचारधारा कितनी भी वैज्ञानिक, कितनी भी व्यापक और कितनी भी मानवीय क्यों न हो, जीवन उससे बड़ा होता है और बेशक रचना का वास्तविक संबंध जीवन से होता है, विचारधारा से नहीं। साहित्य अपने स्वभाव से ही मानववादी होता है और उसकी प्रकृति में जो मानवीयता है, उसका मार्क्सवाद से कोई विरोध नहीं है। दूसरे, नवलजी का मानना है कि साहित्य में भिन्न–भिन्न धाराओं और प्रवृत्तियों के रचनाकार होते हैं, जिनकी संवेदना और अभिव्यक्ति में बहुत ज्यादा फर्क होता है। यदि किसी खास विचारधारा में बँधकर उन सभी का

मूल्यांकन किया गया, तो इसका मतलब होगा एकांगी दृष्टि लेकर चलना, जिससे साहित्य में वैविध्य का सौंदर्य नष्ट हो जाएगा या अनदेखा रह जाएगा। यद्यपि इसका मतलब यह कतई नहीं है कि आलोचक के पास कोई दृष्टिकोण नहीं होना चाहिए। वह बिलकुल होना चाहिए, लेकिन 'साहित्येतर' न होकर उसे 'साहित्यिक' होना चाहिए। प्रायः यह देखने में आता है कि आलोचक कुछ कहते हैं और कृति का अपना संदेश कुछ और होता है। यही कारण है कि नवलजी काफी पहले से 'कृति से साक्षात्कार' का प्रयास करते आ रहे हैं–इस सह–प्रयास के साथ कि उस प्रयास का निष्कर्ष आत्मपरक न होकर वस्तुपरक हो।

मैनेजर पांडेय समकालीन हिंदी आलोचना के प्रमुख आलोचकों में अग्र–पांक्तेय हैं। उन्होंने भक्तिकाव्य के साथ–साथ आधुनिक हिंदी साहित्य से संबंधित गंभीर और विचारोत्तेजक आलोचनात्मक लेखन किया है। उनकी मौलिक आलोचनात्मक कृतियाँ हैं–'शब्द और कर्म', 'साहित्य और इतिहास दृष्टि', 'भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य', 'सूरदास' (विनिबंध), 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' (नवीन संस्करण 'साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि' नाम से प्रकाशित), 'आलोचना की सामाजिकता', 'उपन्यास और लोकतंत्र', 'हिंदी कविता का अतीत और वर्तमान', 'आलोचना में सहमति–असहमति', 'भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा', 'साहित्य और दलित दृष्टि', 'शब्द और साधना'। 'अनभै साँचा' उनकी प्रकाशित मौलिक पुस्तकों से चयनित आलेखों एवं दो साक्षात्कारों का संग्रह है। इसके अलावा, उन्होंने मुख्य रूप से कुछ विदेशी लेखकों के चुनिंदा साक्षात्कारों एवं आलेखों का अनुवाद, चयन और संपादन किया है, जो 'संकट के बावजूद' नाम से प्रकाशित है। निस्संदेह रूप से संपादन के क्षेत्र में भी उनका योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उनकी संपादित पुस्तकें इस प्रकार हैं–'देश की बात' (सखाराम गणेश देउस्कर की प्रसिद्ध बांग्ला पुस्तक 'देशेर कथा' के हिंदी अनुवाद की लंबी भूमिका के साथ प्रस्तुति), 'मुक्ति की पुकार', 'सीवान की कविता', 'नागार्जुन : चयनित कविताएँ', 'सूर संचयिता', 'पराधीनों की विजय–यात्रा : छत्तीस पराधीन देशों के स्वतंत्रता आंदोलनों का इतिहास' (मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव की पुस्तक का संपादन एवं प्रस्तुतीकरण), 'आचार्य द्विवेदी की स्मृति में' (द्विवेदी अभिनंदन–ग्रंथ), 'मुगल बादशाहों की हिंदी कविता', 'लोकगीतों और गीतों में 1857'। मैनेजर पांडेय के साहित्यिक विवेचन में विचारधारा की नियामक भूमिका के कारण समाज–पक्ष पर अधिक बल है।

पुरुषोत्तम अग्रवाल पर उत्तर–आधुनिकता का प्रभाव है। उनके अनुसार, समूची उत्तर–आधुनिकता को मनुष्य–विरोधी घोषित करना मूर्खता होगी। जरूरी यह है कि उन महत्त्वपूर्ण सवालों पर ठीक ढंग से विचार किया जाए, जो उत्तर–आधुनिक बहस के कारण बौद्धिक एजेंडे पर प्रबल रूप में आ गए हैं। हालाँकि वे उत्तर–आधुनिक प्रभाव में बहुकेंद्रिकता या बहुवचनात्मकता का पक्ष लेने के साथ समग्रता का भी पक्ष लेते हैं और आलोचना का धर्म मानते हैं–संवाद। कविता यदि सांस्कृतिक प्रक्रिया है, तो उनके लिए, आलोचना सांस्कृतिक रणनीति है। उनकी प्रमुख प्रकाशित कृतियों के नाम हैं–'संस्कृति : वर्चस्व और प्रतिरोध', 'तीसरा रुख', 'विचार का अनंत', 'शिवदान सिंह चौहान', 'निज ब्रह्म विचार', 'कबीर : साखी और सबद', 'मजबूती का नाम महात्मा गाँधी' (गाँधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली के वार्षिक भाषण का पुस्तकाकार प्रकाशित रूप), 'कौन हैं भारत माता?', 'पद्मावत : मानुस पेम भएउ बैकुंठी', 'अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय'। पुरुषोत्तम अग्रवाल की प्रसिद्धि का आधार है–'अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय'। इस पुस्तक ने उन्हें दुनिया–भर में कबीर के मर्मभेदी आलोचक के रूप में प्रसिद्ध कर दिया। कबीर पर अनगिनत पुस्तकें और लेख लिखे गए हैं, लेकिन ऐसा माना जाता है कि हजारीप्रसाद द्विवेदी की पुस्तक 'कबीर' के बाद उनकी यह पुस्तक कबीर को नए ढंग से समझने में सबसे अधिक सहायक साबित होती है। पुरुषोत्तम अग्रवाल की पहचान भक्तिकाल, खासतौर से कबीर के मर्मज्ञ आलोचक की है। यही कारण है कि राजकमल प्रकाशन ने उन्हें अपनी संपूर्ण 'भक्ति शृंखला' का संपादक नियुक्त किया है।

निष्कर्ष

समकालीन आलोचना में हस्तक्षेप करनेवाले प्रमुख नाम हैं : शिवकुमार मिश्र, रामस्वरूप चतुर्वेदी, विजयमोहन सिंह, विजयबहादुर सिंह, खगेंद्र ठाकुर, नित्यानंद तिवारी, चंद्रभूषण तिवारी, प्रभाकर श्रोत्रिय, रमेश कुंतल मेघ, मधुरेश, नंदकिशोर आचार्य, शंभुनाथ, रामचंद्र तिवारी, अजय तिवारी, सुधीश पचौरी, तरुण कुमार, गोपेश्वर सिंह, वीर भारत तलवार, राजेंद्र कुमार, विजय कुमार, अरविंद त्रिपाठी, राजनाथ, विनोद शाही, ओमप्रकाश सिंह, देवशंकर नवीन, रोहिणी अग्रवाल, अपूर्वानंद, ए. अरविंदाक्षन, देवेंद्र चौबे, विनोद तिवारी, सुवास कुमार, अमरनाथ, गोविंद प्रसाद, मदन सोनी, वागीश शुक्ल, आशीष त्रिपाठी, अरुण होता आदि। निस्संदेह हिंदी आलोचना की विकासधारा बताती है कि इसकी प्रकृति और संवेदना आरंभ से लेकर अब तक प्रगतिधर्मी, जनधर्मी और संवादधर्मी रही है।

संदर्भ–सूची :

1. कुछ विचार–प्रेमचंद; डायमंड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली; संस्करण, 2002 ई.; पृ. सं. 8
2. हिंदी आलोचना का विकास–नंदकिशोर नवल; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; पहला संस्करण, 1981 ई.; पृ. सं. 15
3. महावीरप्रसाद द्विवेदी (विनिबंध)–नंदकिशोर नवल; साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली; पहला संस्करण, 1992 ई.; पृ. सं. 84
4. वही
5. अशोक के फूल–हजारीप्रसाद द्विवेदी; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद; उनतीसवाँ पेपरबैक संस्करण, 2013 ई.; पृ. सं. 143
6. हजारीप्रसाद द्विवेदी (विनिबंध)–विश्वनाथ प्रसाद तिवारी; साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली; पहला संस्करण, 1989 ई.; पृ. सं. 29
7. वर्तमान साहित्य (शताब्दी आलोचना पर एकाग्र–2)–सं. अरविंद त्रिपाठी; अंक–जून, 2002; पृ. सं. 267
8. पहल–सं. ज्ञानरंजन; अंक–64–65; पृ. सं. 158
9. उत्तरशती–सं. खगेंद्र ठाकुर; अंक–अक्तूबर–दिसंबर, 1994; पृ. सं. 35
10. मैं पढ़ा जा चुका पत्रा–सं. नंदकिशोर नवल; आधार प्रकाशन, पंचकूला; पहला संस्करण, 1997 ई.; पृ. सं. 17
11. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास–रामस्वरूप चतुर्वेदी; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद; पच्चीसवाँ संस्करण, 2011 ई.; पृ. सं. 265
12. कसौटी–11–सं. नंदकिशोर नवल; अंक–अक्तूबर–दिसंबर, 2001; पृ. सं. 137

◀◀ ▶▶

ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की शारीरिक क्रियाओं पर सामाजिक–आर्थिक प्रभावः एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. अच्छे लाल यादव*

सारांश :

यह शोध पत्र विद्यार्थियों की शारीरिक गतिविधियों पर उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति के प्रभाव का विश्लेषण करता है। आज के यांत्रिक और प्रतिस्पर्धात्मक युग में शारीरिक क्रियाएं विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। परंतु यह देखा गया है कि विद्यार्थियों की पारिवारिक आर्थिक स्थिति, सामाजिक परिवेश, संसाधनों की उपलब्धता तथा अभिभावकों का दृष्टिकोण उनकी शारीरिक गतिविधियों में भागीदारी को सीधे प्रभावित करता है।

इस अध्ययन में यह पाया गया कि उच्च वर्ग के विद्यार्थी बेहतर खेल सामग्री, पोषण और प्रशिक्षकों की उपलब्धता के कारण अधिक सक्रिय होते हैं, वहीं निम्न वर्ग के विद्यार्थी संसाधनों के अभाव में इन गतिविधियों से वंचित रह जाते हैं। इस असमानता का प्रभाव विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास पर परिलक्षित होता है।

शब्द कुंजी – शारीरिक गतिविधि, सामाजिक, आर्थिक, विद्यार्थी, खेलकूद इत्यादि

परिचयः

शिक्षा केवल पठन–पाठन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और नैतिक विकास का समग्र माध्यम है। शारीरिक क्रियाएं, जैसे– खेलकूद, योग, व्यायाम, दौड़ आदि, न केवल शरीर को स्वस्थ बनाती हैं, बल्कि आत्मविश्वास, अनुशासन, नेतृत्व क्षमता एवं सहयोग की भावना भी विकसित करती हैं।

बच्चों के शारीरिक विकास में भागीदारी के लिए उनका सामाजिक–आर्थिक परिवेश अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किसी भी विद्यार्थी की खेलों में भागीदारी इस बात पर निर्भर करती है कि उसे किस प्रकार का पारिवारिक सहयोग, आर्थिक संसाधन, पोषण, और सामाजिक वातावरण प्राप्त है।

आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में, जहाँ अकादमिक प्रदर्शन को अत्यधिक महत्व दिया जाता है, वहीं शारीरिक गतिविधियों की उपेक्षा देखने को मिलती है। यह उपेक्षा सामाजिक–आर्थिक असमानताओं के चलते और भी गहराई ले लेती है, जिससे एक बड़ा वर्ग इन गतिविधियों से वंचित रह जाता है।

यह शोध पत्र इस बात का विश्लेषण करता है कि कैसे विद्यार्थियों की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि उनकी शारीरिक गतिविधियों में भागीदारी को प्रभावित करती है और इसके कारण उनके शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है।

पद्धति :

आंकड़ों के स्रोत –

वर्तमान अध्ययन में आंकड़ों के स्रोत के रूप में विदर्भ क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् सभी विद्यार्थियों (लड़के तथा लड़कियाँ) थे।

जनसंख्या

वर्तमान अध्ययन के लिए विदर्भ क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले 11 जिलों के माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में 9वीं सं 12वीं कक्षा में अध्ययनरत छात्र व छात्राएँ जनसंख्या हैं।

न्यादर्श की विधि

वर्तमान अनुसंधान कार्य करने के लिए विदर्भ क्षेत्र के 5 जिलों में से प्रत्येक जिले के 6 शासकीय व 6 अशासकीय विद्यालयों को यादृच्छिक न्यादर्श विधि (Random Sampling Method) द्वारा चुना गया। इस प्रकार के प्रत्येक जिले से 12 विद्यालयों को न्यादर्श के रूप में सम्मिलित किया गया था।

* असिस्टेंट प्रोफेसर, पं. दीनदयाल उपाध्याय राजकीय महाविद्यालय, सैदपुर, गाजीपुर

प्रत्येक जिले के शासकीय व अशासकीय विद्यालयों में से 3 शहरी एवं 3 ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों का चुनाव यादृच्छिक न्यादर्श द्वारा किया गया था।

चुने हुए 60 विद्यालयों में से प्रत्येक विद्यालय के 9वीं से 12वीं कक्षा तक के 20 छात्र व 20 छात्राओं को यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा न्यादर्श में सम्मिलित किया गया था। इस प्रकार कुल 2400 विद्यार्थियों को न्यादर्श में सम्मिलित किया गया था।

सारणीयन तथा सांख्यिकीय विश्लेषण

विभिन्न प्रश्नावली एवं AAHPER Youth Fitness Test के माध्यम से अनुसन्धानकर्ता ने आँकड़ों को एकत्रित किया।

आंकड़ों के एकत्रीकरण के पश्चात मार्गदर्शक के मार्गदर्शन में उन्हें सारणी बद्ध किया गया और प्रतिशत, कोईफिशिएन्ट ऑफ कोरिलेशन (r), काई–स्कवेयर (χ^2), मध्यमान, मानक विचलन, तथा टी–वेल्यू जैसी सांख्यिकीय तकनीकों के द्वारा उनका विश्लेषण तथा आकलन किया गया।

काई स्क्वेअर (χ^2) का सूत्र

$$\chi^2 = \sum \left[\frac{(fo - fe)^2}{fe} \right]$$

fo = निरिक्षित बारंबारिता

fe = अपेक्षित बारंबारिता

स्वाधीनता मात्रा (Degree of Freedom)

d.f. = (C – 1) x (R – 1)

C = No. of columns

R = No. of rows

Coefficient of Correlation :

$$r = \frac{\sum xy}{\sqrt{\sum x^2 . \sum y^2}}$$

where,

$\sum xy$ = Sum of product of deviation of group I and group II

$\sum x^2$ = Sum of square of deviation of the group I

$\sum y^2$ = Sum of square of deviation of the group II

Interpretation of Correlation Coefficient

Coefficient (r)	Relationship
.00 to .20	Negligible
.20 to .40	Low
.40 to .60	Moderate
.60 to .80	Substantial
.80 to 1.00	High to very high

टी–मूल्य का सूत्र

मध्यमान (Mean)

$$M = \frac{\sum x}{N}$$

M = मध्यमान

$\sum x$ = प्राप्तांक का जोड़

N = न्यादर्श

मानक विचलन (Stadard Deviation)

$$\sigma = \sqrt{\frac{N\sum x^2 - (\sum x)}{N(N-1)}}$$

σ = मध्यमान

$\sum x$ = प्राप्तांक का जोड़

$\sum x^2$ = प्राप्तांक के वर्ग का जोड़

N = न्यादर्श

स्तरीय त्रुटी (Standard Error)

$$SE_D = \sqrt{\frac{\sigma_1^2}{N_1} + \frac{\sigma_2^2}{N_2}}$$

SE_D = स्तरीय त्रुटी

σ_1^2 = पहले समूह के मानक विचलन का वर्ग़

σ_2^2 = दूसरे समूह के मानक विचलन का वर्ग

N_1 = पहले समूह का न्यादर्श

N_2 = दूसरे समूह का न्यादर्श

मध्यमान का अन्तर (Difference between Mean)

$$D = M_1 - M_2$$

D = दोनों समूहों के मध्यमान का अंतर

M_1 = पहले समूह का मध्यमान

M_2 = दूसरे समूह का मध्यमान

टी – परीक्षण ('t' Value)

$$t = \frac{\text{Difference between two means}}{\text{Standard error ofthe difference}}$$

$$t = \frac{M_1 - M_2}{SE_D}$$

t = 't' मूल्य

$M_1 - M_2$ = दोनों समूहों के मध्यमान का अंतर

SE_D/σ_D = दोनों समूहों के मध्यमान की स्तरीय त्रुटी

स्वाधीनता मात्रा (Degree of Freedom)

$$df = (N_1 - 1) + (N_2 - 1)$$

df = स्वाधीनता स्तर

N_1 = पहले समूह का न्यादर्श

N_2 = दूसरे समूह का न्यादर्श

प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ों को सारणीबद्ध करके उनका सांख्यिकीय विश्लेषण का उसके आधार पर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। आलेख का प्रयोग करके भी परिणात दर्शाने का प्रयास किया गया है।

सामाजिक–आर्थिक स्तर के अनुसार विद्यार्थियों का वर्गीकरण

क्र.सं.	स्तर	ग्रामीण	शहरी	कुल	काई–स्क्वेअर (χ^2)
1.	उच्च	34 (1.42)	358 (14.92)	**392 (16.33)**	**432.896***
2.	मध्यम	836 (34.83)	768 (32.00)	**1604 (66.83)**	
3.	निम्न	330 (13.75)	74 (3.08)	**404 (16.83)**	
	कुल	**1200 (50.00)**	**1200 (50.00)**	**2400 (100.00)**	

(कोष्ठक में दिए गए अंक प्रतिशत दर्शाते हैं)

स्वाधीनता मात्रा 2 एवं 0.05 सार्थकता का स्तर पर χ^2 सारणी मूल्य = 5.99

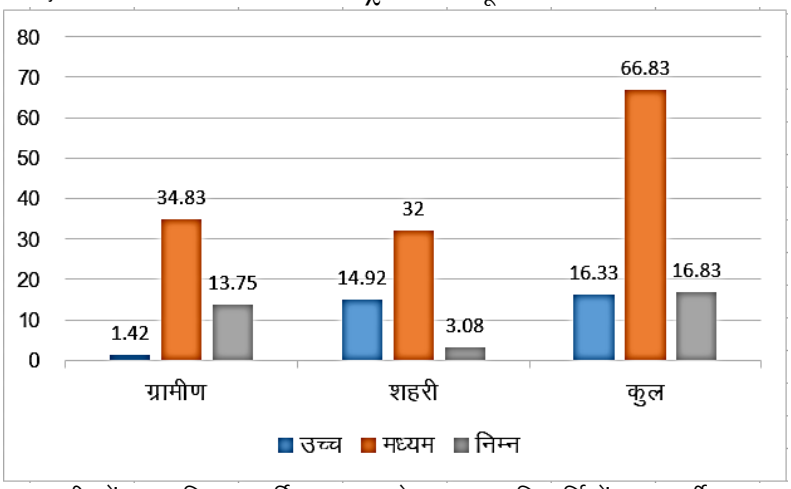

उपरोक्त सारणी में सामाजिक–आर्थिक स्तर के अनुसार विद्यार्थियों का वर्गीकरण दर्शाया गया है। सारणी से यह पता चलता है कि, कुल विद्यार्थियों में सर्वाधिक 66.83% विद्यार्थी मध्यम सामाजिक–आर्थिक स्तर में दिखाई दिए। उच्च तथा निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर में क्रमशः 16.33% तथा 16.83% विद्यार्थियों का समावेश था।

सारणी से दिखाई देता है कि, स्वाधीनता मात्रा 2 एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर प्राप्त χ^2 मूल्य 432.896 यह मानक सारणी χ^2 मूल्य 5.99 से अधिक है इसका अर्थ ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के सामाजिक–आर्थिक स्तर में सार्थक अन्तर है।

सारणी से यह भी पता चलता है कि ग्रामीण क्षेत्र के सर्वाधिक 33.83% विद्यार्थी मध्यम सामाजिक–आर्थिक स्तर में तथा 13.75% विद्यार्थी निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर में समाविष्ट थे। उच्च तथा सामाजिक–आर्थिक स्तर के केवल 1.42% विद्यार्थी दिखाई दिये। शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों में भी सर्वाधिक 32. 00% मध्यम सामाजिक–आर्थिक स्तर में तथा 14.92% उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर में दिखाई दिए। निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर में स्तर के विद्यार्थियों का प्रमाण केवल 3.08% दिखाई दिया।

सारणी से यह स्पष्ट होता है कि, अध्ययन समाविष्ट अधिकांश विद्यार्थी मध्यम सामाजिक–आर्थिक स्तर में समाविष्ट थे। ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के सामाजिक–आर्थिक स्तर में सार्थक अन्तर दिखाई दिया। उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर में शहरी क्षेत्र तथा निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर में ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों का प्रमाण अधिक दिखाई दिया।

निष्कर्ष :

शारीरिक क्रियाएं विद्यार्थियों के जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं, जो उनके संपूर्ण विकास को सुनिश्चित करती हैं। यह अध्ययन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि सामाजिक–आर्थिक स्थिति विद्यार्थियों की शारीरिक गतिविधियों में भागीदारी को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है।

इस असमानता का प्रभाव केवल शारीरिक स्वास्थ्य तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक व्यवहार और आत्म–विश्वास पर भी असर डालता है। यदि समाज को संतुलित और समग्र विकास की ओर ले जाना है, तो इस असमानता को समाप्त करने की दिशा में ठोस कदम उठाने होंगे।

संदर्भ सूची –

1. बालायन देवेन्द्र व पाठक नवराज, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा, खण्ड 4, नई दिल्ली, खेल साहित्य केन्द्र, 7/26, अनसारी रोड, दरियागंज, 2006
2. कंसल देवेन्द्र कुमार, शारीरिक शिक्षण में प्रायोगिक मापन मूल्यांकन तथा खेल चयन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, सितम्बर 2011, दिल्ली
3. पाण्डे योगेन्द्र, क्रीड़ा मनोविज्ञान, नागपुर, अमृत प्रकाशन, 1999
4. शर्मा एन.पी., शारीरिक शिक्षा, नई दिल्ली, खेल साहित्य रोड, दरियागंज, 2006
5. शर्मा आर.के., व्यायाम क्रिया विज्ञान एवं खेल चिकित्साशास्त्र, नई दिल्ली, क्रीड़ा साहित्य प्रकाशन, 1999
6. वालीया, जे.एस., शिक्षा मनोविज्ञान की बुनियादें, पंजाब, पाल पब्लिशर्स, 2004
7. शर्मा आर.के., खेल ट्रेनिंग के वैज्ञानिक सिद्धांत, नई दिल्ली, क्रीड़ा साहित्य प्रकाशन, 2000
8. सिंह अजमेर व साथी, ओलम्पिक अभियान, लुधियाना, कल्याणी पब्लिशर्स, 2004

आधुनिक भारत में हिंदी डिजिटल मीडिया और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद सहित राष्ट्रवाद का पुनर्जनन

पवन कुमार मिश्रा*
डॉ. अभिषेक मिश्र**

सारांश (Abstract)

21वीं सदी में डिजिटल क्रांति ने भारत में सूचना प्रसार और राष्ट्रीय चेतना को नए आयाम प्रदान किए हैं। हिंदी डिजिटल मीडिया, जिसमें न्यूज़ पोर्टल्स, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स, यूट्यूब चैनल्स, और ब्लॉग्स शामिल हैं, ने भारतीय राष्ट्रवाद को पुनर्जनन और व्यापक प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह शोध पत्र हिंदी डिजिटल मीडिया के माध्यम से सांस्कृतिक, राजनीतिक, और सैन्य राष्ट्रवाद के पुनर्जनन, इसके सामाजिक-राजनीतिक प्रभाव, और चुनौतियों का गहन विश्लेषण करता है। विशेष रूप से, यह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पर केंद्रित है, जो हिंदी डिजिटल मीडिया द्वारा भारतीय परंपराओं, इतिहास, और सांस्कृतिक गौरव को पुनर्जनन करने में महत्वपूर्ण रहा है। अध्ययन तर्क देता है कि हिंदी डिजिटल मीडिया ने राष्ट्रीय पहचान को मजबूत किया है, लेकिन ध्रुवीकरण, फर्जी खबरें, और क्षेत्रीय असमानता जैसी चुनौतियों ने इसके प्रभाव को जटिल बनाया है। गुणात्मक विश्लेषण के माध्यम से, यह पेपर हिंदी डिजिटल मीडिया की दोहरी भूमिका को उजागर करता है और नैतिक पत्रकारिता की आवश्यकता पर बल देता है।

परिचय (Introduction)

भारत में डिजिटल क्रांति ने सूचना तक पहुँच को लोकतांत्रिक बनाया है, और हिंदी डिजिटल मीडिया इस परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है। हिंदी, भारत की सबसे व्यापक रूप से बोली जाने वाली भाषा, डिजिटल युग में राष्ट्रीय पहचान, सांस्कृतिक गौरव, और राजनीतिक एकता को प्रोत्साहित करने का एक शक्तिशाली माध्यम बन गई है। औपनिवेशिक काल में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने स्वतंत्रता संग्राम में जनजागरण का कार्य किया था; उसी तरह, आधुनिक युग में हिंदी डिजिटल मीडिया राष्ट्रवाद को पुनर्जनन और पुनर्परिभाषित कर रहा है। विशेष रूप से, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, जो भारतीय संस्कृति, परंपराओं, और इतिहास पर आधारित है, हिंदी डिजिटल मीडिया के माध्यम से एक नया रूप ले रहा है।

यह शोध पत्र निम्नलिखित प्रश्नों की पड़ताल करता है:

1. हिंदी डिजिटल मीडिया ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद सहित राष्ट्रवादी विचारधारा को कैसे पुनर्जनन किया है?
2. इसके सामाजिक, सांस्कृतिक, और राजनीतिक प्रभाव क्या हैं?
3. हिंदी डिजिटल मीडिया की प्रमुख सीमाएँ और चुनौतियाँ क्या हैं?
4. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने में हिंदी डिजिटल मीडिया की भूमिका को कैसे समझा जा सकता है?

उद्देश्य:

- हिंदी डिजिटल मीडिया के माध्यम से सांस्कृतिक, राजनीतिक, और सैन्य राष्ट्रवादी नैरेटिव्स के प्रसार का विश्लेषण करना।

* शोध छात्र, पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज
** असिस्टेंट प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज

- हिंदी भाषा की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक पहचान को मजबूत करने में डिजिटल मीडिया के योगदान का मूल्यांकन करना।
- डिजिटल युग में राष्ट्रवाद के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों की जाँच करना।
- हिंदी डिजिटल मीडिया के लिए नीतिगत और नैतिक सुझाव प्रस्तुत करना।

साहित्य समीक्षा (Literature Review)

हिंदी पत्रकारिता का ऐतिहासिक महत्व कई अध्ययनों में रेखांकित किया गया है। Orsini (2002) ने औपनिवेशिक काल में हिंदी प्रेस को राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में महत्वपूर्ण माना, विशेष रूप से भारतेंदु हरिश्चद्र की *कविवचनसुधा* और *सरस्वती* जैसी पत्रिकाओं के संदर्भ में। Dalmia (1997) ने हिंदी को राष्ट्रीय पहचान के प्रतीक के रूप में स्थापित करने में प्रेस की भूमिका पर प्रकाश डाला। डिजिटल युग में, Chopra (2020) ने तर्क दिया कि हिंदी डिजिटल मीडिया ने हिंदी को "डिजिटल जन भाषा" के रूप में पुनर्जनन किया, जिससे इसकी पहुँच ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों तक बढ़ी। Banaji (2018) ने डिजिटल मीडिया के ध्रुवीकरण और सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने की आलोचना की, विशेष रूप से सोशल मीडिया पर भ्रामक नैरेटिव्स के प्रसार के संदर्भ में।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पर शोध (जैसे, Anderson, 1983; Bhabha, 1990) ने इसे राष्ट्रीय पहचान के निर्माण में एक केंद्रीय तत्व माना है, जो साझा इतिहास, परंपराओं, और सांस्कृतिक प्रतीकों पर आधारित है। भारत में, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को हिंदू पुनर्जागरण और स्वदेशी आंदोलन से जोड़ा गया है। हालांकि, डिजिटल युग में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और हिंदी डिजिटल मीडिया के बीच संबंध पर सीमित शोध उपलब्ध है। यह पेपर इस अंतर को भरने का प्रयास करता है, विशेष रूप से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के पुनर्जनन और इसके सामाजिक प्रभावों पर ध्यान केंद्रित करते हुए।

पद्धति (Methodology)

यह शोध गुणात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है। निम्नलिखित स्रोतों का विश्लेषण किया गया:

1. **हिंदी डिजिटल न्यूज़ पोर्टल्स**: *Navbharat Times*, *Dainik Jagran*, *The Quint Hindi*, *Scroll.in Hindi*, और *Amar Ujala* के 2014-2024 के बीच प्रकाशित लेख।
2. **सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स**: X पर #BharatEkHai, #RamMandir, #AtmanirbharBharat, और #VandeMataram जैसे हैशटैग्स और प्रमुख हिंदी न्यूज़ हैंडल्स (@ZeeNewsHindi, @AajTak) के पोस्ट्स।
3. **यूट्यूब चैनल्स**: *The Lallantop*, *Aaj Tak*, *Zee News Hindi*, और *India TV Hindi* की वीडियो सामग्री।
4. **ब्लॉग्स और स्वतंत्र प्लेटफॉर्म्स**: हिंदी ब्लॉग्स जैसे *Hindi Khabar* और *Swarajya Hindi*।
5. **समय-सीमा**: विश्लेषण 2014-2024 की अवधि पर केंद्रित है, क्योंकि इस दौरान डिजिटल मीडिया का प्रभाव और सरकारी नीतियों (जैसे, मेक इन इंडिया, राम मंदिर निर्माण) का राष्ट्रवादी नैरेटिव्स के साथ घनिष्ठ संबंध रहा।

विश्लेषण के लिए नैरेटिव विश्लेषण (Narrative Analysis) और थीमैटिक कोडिंग (Thematic Coding) का उपयोग किया गया। प्रमुख थीम्स में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, राजनीतिक राष्ट्रवाद, सैन्य राष्ट्रवाद, भाषाई योगदान, और डिजिटल मीडिया की चुनौतियाँ शामिल हैं। डेटा संग्रह के लिए, 100 से अधिक लेख, 50 X पोस्ट्स, और 20 यूट्यूब वीडियोज का विश्लेषण किया गया।

विश्लेषण (Analysis)

1. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का पुनर्जनन

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, जो भारतीय संस्कृति, परंपराओं, और इतिहास पर आधारित है, हिंदी डिजिटल मीडिया का एक केंद्रीय तत्व रहा है। हिंदी न्यूज़ पोर्टल्स और यूट्यूब चैनल्स ने भारतीय सांस्कृतिक प्रतीकों को पुनर्जनन और लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उदाहरण के लिए:

- **राम मंदिर निर्माण (2020-2024)**: *Navbharat Times*, *Dainik Jagran*, और *Zee News Hindi* ने राम मंदिर को सांस्कृतिक पुनर्जागरण और राष्ट्रीय एकता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया। X पर #RamMandir हैशटैग ने लाखों यूजर्स को एक मंच पर लाया, जिसने धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान को राष्ट्रीय गौरव के साथ जोड़ा।
- **सांस्कृतिक उत्सव**: *The Lallantop* और *Aaj Tak* ने योग दिवस, कुम्भ mela, और दीवाली जैसे अवसरों को वैश्विक मंच पर भारत की सांस्कृतिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया। X पर #YogaDay और #KumbhMela जैसे ट्रेंड्स ने सांस्कृतिक गौरव को डिजिटल रूप से बढ़ावा दिया।
- **ऐतिहासिक पुनर्परिभाषा**: हिंदी डिजिटल मीडिया ने भारतीय इतिहास को राष्ट्रीय गौरव के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया। उदाहरण के लिए, *India TV Hindi* ने चंद्रगुप्त मौर्य और शिवाजी जैसे ऐतिहासिक नायकों को "भारतीय शक्ति" के प्रतीक के रूप में चित्रित किया।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ने हिंदी डिजिटल मीडिया के माध्यम से न केवल सांस्कृतिक पहचान को मजबूत किया, बल्कि इसे वैश्विक मंच पर भी प्रस्तुत किया। हालांकि, यह प्रायः हिंदू-केंद्रित नैरेटिव्स पर आधारित रहा, जिसने समावेशी राष्ट्रीय पहचान को चुनौती दी।

2. राजनीतिक और सैन्य राष्ट्रवाद का प्रसार

हिंदी डिजिटल मीडिया ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के साथ-साथ राजनीतिक और सैन्य राष्ट्रवाद को भी बढ़ावा दिया:

- **राजनीतिक राष्ट्रवाद**: 2014 के बाद, हिंदी न्यूज़ पोर्टल्स ने सरकारी नीतियों जैसे मेक इन इंडिया, स्वच्छ भारत अभियान, और आत्मनिर्भर भारत को राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से प्रचारित किया। *Amar Ujala* और *Dainik Jagran* ने इन नीतियों को "नए भारत" की आधारशिला के रूप में प्रस्तुत किया। X पर #AtmanirbharBharat जैसे हैशटैग्स ने इन नीतियों को जनता के बीच लोकप्रिय बनाया।
- **सैन्य राष्ट्रवाद**: भारत-पाकिस्तान (पुलवामा हमला, 2019) और भारत-चीन (गलवान संघर्ष, 2020) सीमा विवादों पर हिंदी न्यूज़ चैनल्स और X पोस्ट्स ने सैन्य शक्ति को राष्ट्रीय गौरव के साथ जोड़ा। *Aaj Tak* और *Zee News Hindi* ने सैन्य कार्रवाइयों को "भारत की ताकत" के रूप में चित्रित किया, जिससे जनता में राष्ट्रवादी उत्साह बढ़ा।

3. भाषाई योगदान और राष्ट्रीय एकता

हिंदी डिजिटल मीडिया ने हिंदी भाषा को डिजिटल युग में प्रासंगिक और जीवंत बनाए रखा है। *The Quint Hindi* और *Scroll.in Hindi* जैसे पोर्टल्स ने युवा पीढ़ी के लिए बोलचाल और आधुनिक हिंदी का उपयोग किया, जिससे हिंदी को "कूल" और समावेशी बनाया गया। यूट्यूब चैनल *The Lallantop* ने मनोरंजक और सूचनात्मक सामग्री के माध्यम से ग्रामीण और शहरी दर्शकों को आकर्षित किया।

हिंदी डिजिटल मीडिया ने क्षेत्रीय बोलियों (जैसे, भोजपुरी, अवधी, और ब्रज) को शामिल कर समावेशिता को बढ़ावा दिया। उदाहरण के लिए, *The Lallantop* के कुछ वीडियोज में क्षेत्रीय लहजे और शब्दावली का उपयोग देखा जा सकता है, जो दर्शकों के साथ गहरे स्तर पर जुड़ता है। X पर हिंदी में पोस्ट्स और हैशटैग्स ने हिंदी को डिजिटल संवाद का प्रमुख माध्यम बनाया, जिससे राष्ट्रीय एकता को बल मिला।

4. चुनौतियाँ और नकारात्मक प्रभाव

हिंदी डिजिटल मीडिया के राष्ट्रवाद पर प्रभाव के साथ-साथ कई चुनौतियाँ हैं:

- **ध्रुवीकरण और सांप्रदायिकता**: सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के प्रचार में, कुछ हिंदी न्यूज़ पोर्टल्स और X हैंडल्स ने सांप्रदायिक मुद्दों को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया। उदाहरण के लिए, X पर #LoveJihad और #GharWapsi जैसे हैशटैग्स ने धार्मिक आधार पर विभाजनकारी नैरेटिव्स को बढ़ावा दिया।
- **फर्जी खबरें (Fake News)**: हिंदी डिजिटल मीडिया में गलत सूचनाओं का प्रसार तेजी से हुआ। कोविड-19 महामारी के दौरान, व्हाट्सएप फॉरवर्ड्स और X पोस्ट्स में भ्रामक उपचारों के दावों ने जनता में भ्रम पैदा किया।
- **क्षेत्रीय असमानता**: हिंदी डिजिटल मीडिया मुख्य रूप से उत्तर भारत पर केंद्रित रहा, जिससे दक्षिण और पूर्वी भारत में इसकी पहुँच सीमित रही। यह राष्ट्रीय एकता के लिए एक चुनौती है।
- **सनसनीखेज पत्रकारिता**: कुछ हिंदी न्यूज़ चैनल्स (जैसे, *Sudarshan News*) ने सनसनीखेज और अतिशयोक्तिपूर्ण सामग्री पर ध्यान दिया, जिससे रचनात्मक और समावेशी राष्ट्रवाद कमजोर हुआ।

चर्चा (Discussion)

हिंदी डिजिटल मीडिया ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को पुनर्जनन करने में दोहरी भूमिका निभाई है। एक ओर, इसने भारतीय संस्कृति, परंपराओं, और इतिहास को गौरवान्वित कर राष्ट्रीय पहचान को मजबूत किया है। उदाहरण के लिए, राम मंदिर और योग दिवस जैसे मुद्दों ने सांस्कृतिक गौरव को डिजिटल मंचों पर वैश्विक स्तर तक पहुँचाया। दूसरी ओर, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का हिंदू-केंद्रित स्वरूप समावेशी राष्ट्रीय पहचान को चुनौती देता है, विशेष रूप से अल्पसंख्यक समुदायों के लिए।

राजनीतिक और सैन्य राष्ट्रवाद के साथ सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का समन्वय हिंदी डिजिटल मीडिया की एक अनूठी विशेषता है। उदाहरण के लिए, आत्मनिर्भर भारत अभियान को सांस्कृतिक गौरव (स्वदेशी) और राजनीतिक एकता (नया भारत) के साथ जोड़ा गया। हालांकि, यह समन्वय प्रायः सनसनीखेज और एकपक्षीय नैरेटिव्स की ओर बढ़ा है, जो सामाजिक ध्रुवीकरण को बढ़ाता है।

औपनिवेशिक काल की हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की तुलना में, डिजिटल मीडिया की पहुँच और प्रभाव बहुत व्यापक है, लेकिन इसकी विश्वसनीयता और निष्पक्षता पर सवाल उठते हैं। जहाँ *कविवचनसुधा* और *सरस्वती* ने सामाजिक सुधार और बौद्धिक चेतना पर जोर दिया, वहीं आधुनिक हिंदी डिजिटल मीडिया में व्यावसायिक और राजनीतिक हितों का प्रभाव स्पष्ट है।

निष्कर्ष (Conclusion)

हिंदी डिजिटल मीडिया ने आधुनिक भारत में सांस्कृतिक, राजनीतिक, और सैन्य राष्ट्रवाद को पुनर्जनन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विशेष रूप से, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ने भारतीय परंपराओं, इतिहास, और प्रतीकों को डिजिटल मंचों पर पुनर्जनन कर राष्ट्रीय गौरव को बढ़ाया है। हिंदी भाषा को डिजिटल युग में प्रासंगिक बनाए रखने और राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहित करने में डिजिटल मीडिया का योगदान उल्लेखनीय है। हालांकि, ध्रुवीकरण, फर्जी खबरें, क्षेत्रीय असमानता, और सनसनीखेज पत्रकारिता इसके प्रभाव को जटिल बनाती हैं। भविष्य में, हिंदी डिजिटल मीडिया को नैतिक पत्रकारिता, तथ्य-जाँच, और समावेशी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है ताकि यह रचनात्मक और समावेशी राष्ट्रवाद को बढ़ावा दे सके।

सुझाव (Recommendations)

1. **नैतिक पत्रकारिता**: हिंदी डिजिटल मीडिया को तथ्य-जाँच और पारदर्शिता पर ध्यान देना चाहिए। स्वतंत्र तथ्य-जाँच संगठनों (जैसे, *Alt News*) के साथ सहयोग बढ़ाया जा सकता है।

2. **समावेशी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद**: सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को सभी समुदायों और क्षेत्रों को शामिल करने वाला बनाया जाना चाहिए, ताकि यह समावेशी राष्ट्रीय पहचान को प्रोत्साहित करे।
3. **क्षेत्रीय सहयोग**: क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों के साथ सहयोग बढ़ाकर हिंदी डिजिटल मीडिया को राष्ट्रीय स्तर पर अधिक समावेशी बनाया जा सकता है।
4. **शैक्षिक सामग्री**: सांस्कृतिक और शैक्षिक सामग्री पर जोर देकर सकारात्मक और रचनात्मक राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित किया जा सकता है।
5. **नियामक ढांचा**: गलत सूचनाओं और सनसनीखेज पत्रकारिता को नियंत्रित करने के लिए नीतिगत ढांचा विकसित किया जाना चाहिए।

संदर्भ (References)

1. Anderson, B. (1983). *Imagined Communities: Reflections on the Origin and Spread of Nationalism*. Verso.
2. Banaji, S. (2018). *Vigilante Publics: Indian Digital Media and the Politics of Hate*. Polity Press.
3. Bhabha, H. K. (1990). *Nation and Narration*. Routledge.
4. Chopra, R. (2020). *The Virtual Hindu Rashtra: Saffron Nationalism and New Media*. HarperCollins India.
5. Dalmia, V. (1997). *The Nationalization of Hindu Traditions: Bharatendu Harishchandra and Nineteenth-century Banaras*. Oxford University Press.
6. Orsini, F. (2002). *The Hindi Public Sphere 1920-1940: Language and Literature in the Age of Nationalism*. Oxford University Press.
7. *Navbharat Times*. (2020-2024). डिजिटल संग्रह। https://navbharattimes.indiatimes.com/
8. *The Quint Hindi*. (2020-2024). ऑनलाइन लेख। https://hindi.thequint.com/
9. *The Lallantop*. (2020-2024). यूट्यूब वीडियोज। https://www.youtube.com/@TheLallantop
10. X Platform. (2020-2024). #BharatEkHai, #RamMandir, #AtmanirbharBharat, #VandeMataram हैशटैग्स।

परसाई की लेखनी में सामाजिक विकृतियों का चित्रण

ओनम साहू*

हरिशंकर परसाई ने अपनी रचनाओं में समाज की विभिन्न विकृतियों पर खुलकर तीखा व्यंग्य किया है। उनकी लेखनी समाज की वास्तविकता का चित्रण है, जिनमें वे समाज में भ्रष्टाचार, असमानता, धार्मिक अंधविश्वास जैसे तमाम सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालता है। समकालीन समाज के यथार्थ को समझने के लिए परसाई जी ने अपनी रचनाओं बहुत ही बारीकी से समाज के विकृतियों को उजागर किया है। वे सामाजिक व सांस्कृतिक सरोकारों से संबंधित विसंगतियों व कुरीतियों पर बहुत ही तीखा व्यंग्यात्मक प्रहार करते हैं। परसाई जी आज़ाद भारत के उस चेहरे से अपने पाठकों की पहचान कराते हैं जो मोह-भंग से गुजरते हुए अंतर्द्वन्द्व का शिकार है। इस चेहरे में वह पढ़ा-लिखा, सुविधाभोगी, अवसरवादी, सामाजिक मर्यादाओं की झूठी चिंता करने वाला मध्यमवर्ग भी है, तथा वह आदमी भी है जो निरन्तर संघर्षशील है। वह अपने अस्तित्व को बचाने की जुझारू लड़ाई लड़े जा रहा है। अर्थात एक ओर ज़िंदा रहने की लड़ाई है तो वही दूसरी ओर संपन्नता कायम रखने की लड़ाई है। परसाई जी ने अपने लेखनी में भारत के इसी यथार्थ-तस्वीरों को उजागर करने का प्रयास किया है।

परसाई जी को आम लोगों के दैनिक जीवन के संघर्ष की भलीभाँति पहचान थी। उन्हीं लोगों के जीवन-संघर्ष को अपने लेखनी का विषय वस्तु बनाते हैं। किराये के मकान, गेहूँ, चावल, चीनी, गंदी नाली, टेलीफोन, चंदा, बीमारियाँ, विज्ञापन आदि को देखा जाए तो यह आम आदमी से जुड़े महत्वपूर्ण मुद्दे हैं। परसाई जी अपने रचना में इन्हीं तमाम मुद्दे को बार-बार उठाते हैं जिससे आम आदमी के संघर्ष को महत्व मिल सके। अपने निबंध 'गेहूँ का सुख' में परसाई जी यह देखने का प्रयास करते हैं कि असुविधाओं में जीने वाले परिवार के लिए तीन बोरे गेहूँ कितने महत्वपूर्ण है और उन्हें कितना सुरक्षा प्रदान करते हैं। जब घर में गेहूँ आता है तो उस घर का पूरा माहौल ही बदल जाता है –"गेहूँ की मात्रा के उस महत्ता के सामने हम अपने आप को कितना हीन समझने लगे। मेरे मन में प्रार्थना के भाव उठे –पधारो देव! हमे नहीं पता, कैसे तुम्हारा स्वागत करें ? हमने कल्पनाओं में भी नहीं सोचा था कि इस मात्रा में हमारे घर आयेंगे। इस गरीब की कुटियाँ में तीन बोरे अनाज के रूप में आकार अपने पूरे मोहल्ले में हमारी मान बढ़ा दी है और आप को अपने द्वार से अंदर घर में लाने में देर इसलिए कर रहे हैं कि लोग देख ले कि आप हमारे घर पधारे हैं। हम कैसे अपने इस सौभाग्य को बटोरे ? आपको कहाँ आसन प्रदान करे ? कभी हम घर को देखते तो कभी आप को देखते हैं। हमारे घर में एक मन से बड़ा कोठी नहीं है।"[1]

सुविधाओं से अभाव ग्रस्त एक परिवार के लिए तीन बोरी गेहूँ उसके इज्जत को बढ़ाने वाला हो जाता है। किन्तु लेखक का 'मैं' जो एक मात्र लेखक का नहीं अपितु वह आम आदमी का प्रतिनिधित्व करता है। इस सुख के माहौल में अभाव के दारुल यथार्थ को भूला नहीं पाता। एक तरफ तो घर में पर्याप्त गेहूँ के आ जाने से सुख का अनुभव है तो वही दूसरी तरफ अभावों से निर्मित स्वभाव चिंतित भी हो रहा है –"मैं सुखी भी हूँ और दुखी भी। वह इसलिए कि मुझे उस समय लगा कि जिस मात्रा में जी रहा था, उसी कुछ कम मात्रा में जीना पड़ेगा। मन के बहुत से कोठे हैं जिसमें जरूरतें भरी हैं। एक तो गेहूँ का कोठा है, एक वस्त्रों का, एक मकान का। गेहूँ का कोठा भर गया है। किन्तु मन कुछ रीता हो गया है।"[2]

अभावों में जीते-जीते इतना अस्वस्थ हो चुका है कि अभाव की पूर्ति हो जाने पर भी उसे विश्वास नहीं होता। अतः ये आम आदमी का मन। बस उसे यही महसूस होता है कि ये अभाव कुछ समय के लिए मिटा है, सदैव के लिए नहीं।

वास्तव में आज के समय में देखा जाए तो स्पष्ट दिखाई देता है कि प्रतिगामी शक्तियाँ समाज को प्रगति पथ पर बढ़ने से रोक रही है और उसे पीछे ढकेलने का काम कर रही हैं। भारतीय जन-समुदाय मध्ययुगीन मानसिकता, झूठे आडंबर व गलत संस्कारों के फंदे और जातिवाद के शिकंजे से स्वतंत्र होना चाहता है। समाज का हर व्यक्ति शोषण के सभी क्षेत्रों से मुक्त होना चाहता है। आज समाजवाद लगभग सभी व्यक्तियों के मन में घर कर लिया है। परिवर्तन और मुक्ति के इस प्रक्रिया में समाज का वह वर्ग

---

* शोधार्थी, हिन्दी विभाग, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

[1] परसाई रचनावली, भाग-3, सं. कमला प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2005, पृ. 202-03.

[2] वही, पृ. 203.

अड़ंगा डालता है जिसके शोषण व दासता पर आधारित अपना स्वार्थ के खत्म होने की आशंका होती है। वह समाज को आगे जाने से रोकने का जो उपाय अपनाता है उसमें सबसे महत्वपूर्ण है सांप्रदायिकता। यह सांप्रदायिकता बस अनपढ़ों में ही नहीं बल्कि अच्छे-खासे पढे-लिखे लोगों में भी घर कर लिया है। जिसका अंत सामाजिक परिवर्तन के साथ ही होगा।

परसाई जी प्रगतिशील समाज के पक्ष की बात करते हैं। उनकी मनोकामन है कि हमारे भारतीय समाज में सांस्कृतिक एकता का विश्वास पक्का हो। आज की यह जरुत बन गई है कि धर्मनिरपेक्षता के प्रति प्रतिबद्ध संगठन जागरूक और सक्रिय हो जाए, स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी आज हमारी शिक्षा पद्धति को ऐसा नहीं बनाया जा सका, जिससे छात्रों में धर्म-निरपेक्ष और सांस्कृतिक एकता का विश्वास मजबूत हो सांस्कृतिक द्वेष को बरकरार रखने के लिए बहुत बड़ी जिम्मेदारी मध्यकालीन इतिहास को गलत तथा सांप्रदायिक द्वेष की दृष्टि से पढ़ाया जाना है।"[3]

जब परसाई जी ज़िन्दगी के व्यापक संदर्भों में सर्वहारा वर्ग को जोड़ते है तो उनके रचनात्मक उँचाई का एहसास होता है। प्रशासन द्वारा उन पर भी लाठी चार्ज कर दिया जाता है जो मजदूर शांति पूर्ण आन्दोलन किए हैं। उनमें महिलाओं को भी नहीं छोड़ा जाता है। ऐसे शांतिपूर्ण आन्दोलनों को कुचलने फिर प्रशासन द्वारा राहत देने की प्रक्रिया को परसाई जी अपने निबंध 'मुर्दे का मूल्य' में बहुत ही तीखा प्रहार किया है। वे कहते हैं कि –"अब फायरिंग के शिकार-लोगों के परिवार की औरतें यों बात करती है –हमारी तो किस्मत फूट गई। हमारे मर्द को बहुत ही मामूली मरहम पट्टी हुई है तो फिर हमें सौ ही मिलेंगे। तू भाग्यवान है बाई, कि तेरा मर्द मर गया तो फिर तुझे तो पाँच हजार मिलेंगे। हमारा मर्द तो शुरू से नक्कारा है। इस चमेली का घर वाला फिर भी हमारे से ठीक है। अस्पताल में पड़ा है जो कम से कम हजार रुपये तो मिलेंगे। हमारे मर्द का तो इतना भी नहीं बनसका।"[4]

परसाई जी के इस निबंध में महत्वपूर्ण बात यह उभर कर आती है कि समाज में भूख का स्तर इतना बढ़ गया है कि आदमी के मरने का कोई दु:ख न प्रकट कर औरतें पैसे की चाहत रखती है। आदमी के न मरने पर उन्हें सरकारी राहत पैसा न मिलने पर दु:ख हो रहा है। अतः परवाह आदमी की नहीं बल्कि पैसे के रूप में मिलने वाली सरकारी मुआबजे की है। इसका प्रमुख कारण यह दिखाता है कि आज सामाजिक जीवन आम आदमी के लिए बहुत बोझिल हो चुका है।

'घायल बसंत' में परसाई जी मानवीय सुखों की बात करते हैं, तथा बताने का प्रयास करते है कि किस प्रकार से मानव के सहज सुखों का अंत होता जा रहा है। ठीक उसी प्रकार जैसे बसंत दो तरफ से घिर कर सुकुड़ता है। आगे से शीत ऋतु है जो सितलहर लेकर उस पर वार कर रही है, तो वही दूसरी ओर ग्रीष्म ऋतु उसे दबा रही है। अतः सितलहर और लूँ से बसंत दब कर सुकुड़ता जा रहा है, अर्थात बसंत दो पाटों के बीच में फँसकर पिस रहा है जो वास्तव में आज घायल है। देश के इस घायल बसंत को यदि बचाना है तो जोर लगाकर दोनों पाटों को पीछे ढकेलना होगा।[5] इसी प्रकार से आज देश के लोग तमाम मुसीबतों घिरे हुए है, घायल बसंत कि भाँति उनका भी सुखमय जीवन सुकुड़ता जा रहा है। आज उनके तमाम समस्याओं का समाधान कर उनके जीवन को सुखमय बनाने की आवश्यकता है।

परसाई जी ने समाज व्याप्त रूढ़िवादी प्रवृत्ति के धार्मिक विसंगतियों पर तीखा व्यंग्यात्मक प्रहार अपनी रचनाओं किया है। 'हरिजन, मंदिर, अग्निवेश' शीर्षक निबंध में वे उस वर्ग कि बात करते हैं जिन्हें समाज में अलग-थलग रखा गया है, तथा उन्हें मंदिरों में भी प्रवेश नहीं दिया जाता है। सामाजिक भेदभाव के बारीकियों को समझते हुए परसाई जी इस बात का उल्लेख करते हैं कि ज्यादातर मंदिर में स्थानीय लोगों का प्रवेश वर्जित है, क्योंकि उन्हें मंदिर का पुजारी पहचानता है कि वे हरिजन है, वही दूर-दूर शहरों के लोगों की जाति वे नहीं पहचान पाते है जिससे निम्न वर्ग के लोग आसानी से मंदिर में प्रवेश कर जाते हैं। समस्या स्थानीय निम्न वर्ग को होती है। परसाई जी कहते हैं कि अग्निवेश जी देश में हरिजन के लिए मंदिर में प्रवेश आन्दोलन चला रहे हैं, यह ठीक है किन्तु इससे ज्यादा जरूरी है कि उनका आर्थिक व सामाजिक स्थिति को मजबूत करने पर ध्यान दिया जाए। उनका विचार हैं कि –"व्यवहार में खास नहीं होगा। जब तक हरिजन का आर्थिक, सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं होगी, वह खुद ही इन भव्य इमारतों में नहीं जाएगा।"[6]

---

[3] परसाई रचनावली, भाग-6, सं. कमला प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2005, पृ. 405.

[4] परसाई रचनावली, भाग-4, सं. कमला प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2005, पृ. 50.

[5] हरिशंकर परसाई, प्रतिनिधि व्यंग्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1991, पृ. 13.

[6] हरिशंकर परसाई, आवारा भीड़ के खतरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, बारहवाँ संस्करण 2021, पृ. 20.

परसाई जी ने धर्म के ठेकेदारों पर तीखा व्यंग्य किया है साथ ही धर्म की भी आलोचना किया है। उनका विचार है कि धर्म सदैव से समाज के प्रगतिशीलता का विरोधी रही है। वे कार्ल मार्क्स के कथनों को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि –"धर्म आत्महीन जगत में आत्मा की पुकार है। धर्म सुख का भ्रम पैदा करती है जबकि मनुष्य वास्तविक सुख चाहता है, जो सामाजिक परिवर्तन से आता है।"[7]

'राम कथा-क्षेपक' निबंध में परसाई जी ने रामायण कथा से प्रसंग उठा कर तत्कालीन समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार पर तीखा प्रहार किया है। वे प्रश्न उठाते हैं कि –"राम के अयोध्या आगमन से खाता-बही बदलने का क्या संबंध ? और खाता-बही लाल कपड़े में ही क्यों बाँधी जाती है ?"[8] जब राम लंका से अयोध्या वापस आते है तो जो भ्रष्ट व्यापारी थे वे बहुत ही दुखी हुए कि जो भ्रष्टाचार किए है वे सब बही-खाता के जाँच होने पर पकड़े जाएंगे। जब राम अयोध्या आए तो सबसे पहले व्यापारियों के बही-खाता जाँच के लिए हनुमान को बाजार का अधीक्षक नियुक्त किया। किन्तु व्यापारी बहुत चालक निकले, उन्होंने बही-खाता को लाल कपड़े में बाँध दिया। जब हनुमान के सामने बही-खाता लाया गया तो वे देख कर बोले लाल कपड़ा में क्यों बाँधा ? व्यापारी बोले हम आप के भक्त है इसलिए आप के लंगोट के रंग के कपड़े में बही-खाता को बाँधे हैं। इसके बाद क्या था ? हनुमान ने बोला जो मेरा भक्त है वो भ्रष्टाचारी नहीं हो सकता। फिर बही-खाता की जाँच नहीं होती है।"[9]

इसी प्रकार आज के समाज में भी लोग कुटिल चालों से चापलूसी कर बड़े-बड़े अपने कुकर्म व भ्रष्टाचार को छुपा रहे हैं। जिसे परसाई जी ने एक पौराणिक कथा के माध्यम से आज कि परिस्थिति को दिखाने का प्रयास किया है कि वर्तमान समाज में भ्रष्टाचार हो रहा है और उसे कैसे छुपाय जा रहा है।

'प्रवचन और कथा' निबंध में परसाई जी ने कथावाचकों पर तीखा व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि, ये कथावाचक लोगों को यह समझा रहे हैं कि यह दुनिया दु:खमय है, मनुष्य योनि में जन्म लेना पाप है और यह देह एक तरह से पाप का खान है अतः मनुष्य का देह धारण करना पाप है। "अधिकांश मायावादियों ने संसार को दु:ख सागर कहा है।"[10] ये माया-विरोधी कहते हैं कि मूर्ख इस नाशवान देह की सेवा करते हो, स्वादिष्ट भोजन कराते हो। अरे ! एक दिन यह नष्ट हो जाएगी। इसे कीड़े-मकौड़े खाएंगे। इतना सब कहते हुए स्वामी जी खुद रबड़ी का गिलास गटक गए।"[11]

प्रवचन देने वाले स्वामी जनता को यह समझा रहे हैं कि, यह दुनिया मोह-माया है और आप लोग जो भौतिक सुख देख रहे है सब छलावा है। भौतिकता से हमे दूर रहना चाहिए, जब कि वह खुद प्रवचन कथा के माध्यम से भौतिक सुख को भोग रहे हैं और अपना एक तरह से धंधा जमा रखे है। "असल में शंकर के मायावाद के प्रचार से जीवन के प्रति नकारात्मक दृष्टि आई। भौतिक उन्नति की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया गया। कोई नई खोज नहीं हुई। औषधि विज्ञान में कोई काम नहीं हुआ। वास्तव में जब जीवन ही मिथ्या है तो इसके लिए क्यों कुछ करना ?"[12]

इस प्रकार से शंकर के मायावाद के प्रचार से लोगों में जीवन के प्रति उदासीनता आई और जो विज्ञान के क्षेत्र में तरक्की होनी चाहिए वह रुक गई क्योंकि जब जीवन ही पाप है तो उसे उन्नत बनाने के नए तकनीकी की क्या आवश्यकता है ? किसी भी औषधि विज्ञान को विकसित करने से क्या ही फायदा ?

बुद्ध के प्रभाव से भौतिक और रसायनशास्त्र, चिकित्सा विज्ञान में बहुत काम हुआ। इसका कारण यह था कि बुद्ध ने मध्यम मार्ग को अपनाने पर जोर दिया। बौद्ध विचार में वैचारिक दृष्टि है, तर्क है। बुद्ध की कल्पना में नगरीय संपन्नता सुखी है।"[13]

---

[7] वही, पृ. 22.

[8] हरिशंकर परसाई, तिरछी रेखा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण 2023. पृ. 93.

[9] वही, पृ. 94-95.

[10] हरिशंकर परसाई, आवारा भीड़ के खतरे, वही, पृ. 71.

[11] वही, पृ. 72.

[12] वही, पृ. 72.

[13] वही, पृ. 72.

परसाई जी अपने व्यंग्य रचना के माध्यम से धार्मिक कर्मकाण्ड फैला रहे कथाकारों व प्रवचन करने वालों पर कठोर प्रहार किया है। उनका मानना है कि ये ढोंगी लोगों के बीच में जो विचार फैला रहे है उससे समाज में वैज्ञानिक चेतना का लोप हो रहा है और लोग विज्ञान व तकनीकी के नये खोजों से खुद को दूर करते जा रहे है, जो भौतिक समाज के लिए दु:खद है।

परसाई जी इस बात का शिकायत करते हैं कि कारण कुछ और होता है पर उसे कुछ और ही रंग देकर दंगा करा दिया जाता है। जो बहुत ही शर्मनाक स्थिति है। यह बात हमारे सामाजिक जीवन के स्वास्थ के लिए बहुत ही घातक व हानिकारक है। परसाई जी कहते हैं कि –"आर्थिक कारणों को लेकर झगड़ा शुरू होता है और फिर उन्माद फैलाकर हिन्दू-मुस्लिम दंगे का रूप दे दिया जाता है।"[14]

इस प्रकार हम देखते हैं कि परसाई जी ने अपने प्रखर व्यंग्यात्मक निबंध कौशल से समाज में व्याप्त विसंगतियों पर तीखा प्रहार किया है। वे समाज में हो रहे भ्रष्टाचार की पोल खोलने के साथ ही आम लोगों की गरीबी और उनके भुखमरी कि स्थिति का वर्णन करते है तथा उसके दोषियों पर करार व्यंग्य करते हैं। वे समाज में फैले तमाम पाखंडों को भी उजागर करते हैं। कर्मकाण्ड फैला रहे पाखंडियों पर तीखा व्यंग्य भी करते हैं, वे कहते कि किस प्रकार से लोगों को बहला कर सांप्रदायिकता माहौल बनाकर एक दूसरे से लड़ने का कार्य करते हैं। धार्मिक दंगे कराकर धर्म के ठेकेदार बनकर बैठे पाखंडी लोग अपने हीत साधते हैं। इन सभी सामाजिक विसंगतियों पर तीखा व्यंग्यात्मक प्रहार कर परसाई जी एक स्वस्थ समाज के कल्पना की झलक अपने रचनाओं में दिखाने का प्रयास करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. परसाई रचनावली, भाग-3, सं. कमला प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2005.
2. परसाई रचनावली, भाग-6, सं. कमला प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2005.
3. परसाई रचनावली, भाग-4, सं. कमला प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2005.
4. हरिशंकर परसाई, प्रतिनिधि व्यंग्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1991.
5. हरिशंकर परसाई, आवारा भीड़ के खतरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, बारहवाँ संस्करण 2021.
6. हरिशंकर परसाई, तिरछी रेखा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण 2023.
7. हरिशंकर परसाई, निठल्ले की डायरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, ग्यारहवाँ संस्करण 2020.

[14] परसाई रचनावली, भाग-6, वही, पृ. 399.

पृथक बिहार के निर्माण में महेश नारायण की भूमिका

आकाश दीप*
प्रो. (डॉ.) दीनेश प्रसाद कमल**

बिहारियों की वर्तमान पीढ़ी इतनी आत्मकेंद्रित है कि वे महेश नारायण को लगभग भूल चुके हैं, जिनका जन्म 1859 में हुआ था और 1907 में, तुलनात्मक रूप से अड़तालीस वर्ष की कम उम्र में अचानक उनकी मृत्यु हो गई।[1] लेकिन यह निर्विवाद है कि एक चौथाई सदी तक उनका व्यक्तित्व बिहार के सार्वजनिक जीवन में एक प्रतिष्ठित प्रचारक के रूप में छाया रहा और उनके जीवन के अंतिम पच्चीस वर्षों में प्रांत में शायद ही कोई ऐसा राजनीतिक आंदोलन हुआ हो, जिसकी प्रेरक शक्ति उन्होंने प्रदान न की हो।[2] उस अवधि के दौरान लगभग सभी सार्वजनिक गतिविधियों का न केवल आरंभ हुआ, बल्कि उनका विकास भी उनके परिश्रम के कारण हुआ। अपनी आदतों में सबसे अधिक दिखावटी, एक दृढ़ संन्यासी, सार्वजनिक रूप से प्रकट होने से विमुख, अपने व्यवहार में अप्रदर्शित, और आधुनिक भारत के उस घोर पाप को स्वयं घोषित करने से पूरी तरह भयभीत – महेश नारायण सर्वोपरि रूप से आदर्शों के व्यक्ति थे, यहाँ तक कि एक कर्मठ व्यक्ति से भी अधिक। और वह आदर्श जिसे उन्होंने मेरे साथ पूरी तरह से साझा किया, और एक पत्रकार के रूप में बिहार में अपने साथी देशवासियों के सामने परिश्रमपूर्वक रखा – वह यह था कि उनका यह परम कर्तव्य है कि वे सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण रूप से प्रांत और उसके लोगों के हित को आगे बढ़ाएं, जबकि अन्य भारतीय प्रांतों के लोगों के साथ मिलकर उन जिम्मेदारियों को साझा करें जो आम तौर पर शिक्षित भारतीयों पर आती हैं।[3]

इस प्रकार महेश नारायण और सच्चिदानंद सिन्हा ने, सबसे पहले, उस चीज के विकास पर जोर दिया, जिसे स्वर्गीय लॉर्ड बाल्फोर ने खुशी से ''अधीनस्थ देशभक्ति'' कहा था, जो कि सभी स्कॉटिश लोगों की स्कॉटलैंड के लिए भावना के समान है, जबकि वे अंग्रेजों और वेल्श के साथ ब्रिटेनियों की तरह एक समान देशभक्ति रखते हैं और, उसी प्रकार वे लोग भी बिहारियों को समान लक्ष्यों और आकांक्षाओं की प्राप्ति के लिए अन्य प्रांतों के भारतीयों के साथ बिना किसी हिचकिचाहट के सहयोग करना चाहिए।[4] इस प्रकार इनलोगों का साझा आदर्श अमेरिकी देशभक्ति की तर्ज पर आधारित था– पहला राज्य, और दूसरा, गणतंत्र, या अमेरिका या यूरोप के अन्य संघीय राज्यों में पाया जाने वाला।[5] संयुक्त राज्य अमेरिका, हालांकि कुछ उद्देश्यों के लिए एक राजनीतिक प्रशासन है, फिर भी पचास अलग–अलग राज्यों में विभाजित है–प्रत्येक के अपने कानून और विशेष व्यवस्थाएं हैं और फिर भी, वे एक राजनीतिक इकाई हैं, और शायद लोकतंत्र का सबसे उन्नत प्रकार है। भारत में, कम से कम आने वाले बहुत लंबे समय तक, एकात्मक प्रकार का राष्ट्र विकसित करना संभव नहीं है। मौजूदा परिस्थितियों में हम केवल यही उम्मीद कर सकते हैं कि सांप्रदायिक नहीं बल्कि भाषाई और क्षेत्रीय विचारों के आधार पर अलग–अलग राष्ट्रीयताएँ बनाई जाएँ, फिर भी देश की सामान्य उन्नति के उद्देश्य से अन्य प्रांतों के लोगों के साथ राजनीतिक रूप से जुड़ी हों।[6]

महेश नारायण और सच्चिानंद सिन्हा, इसे भारतीय राजनीतिक दर्शन का सबसे सच्चा सिद्धांत मानते थे और बिहार के हिंदुओं और मुसलमानों से आग्रह किया कि वे ''बिहारी'' के रूप में एक ही राष्ट्रीयता के सदस्य महसूस करें। इसलिए महेश नारायण बिहार में दो महान समुदायों के बीच एकीकरण के लिए आभार के हकदार हैं, उन्होंने कई वर्षों तक विभिन्न पत्रिकाओं के माध्यम से बहुत कुशलता से काम किया, जब तक कि 1907 में उनकी असामयिक मृत्यु नहीं हो गई।[7]

ब्राइस के अमेरिकी राष्ट्रमंडल के संबंध में हमलोग जानते हैं किम निस्संदेह जानते हैं कि संयुक्त राज्य अमेरिका में एक मजबूत राज्य देशभक्ति मौजूद है, जो संघीय देशभक्ति के साथ–साथ मौजूद है।[8] यह वास्तव में बिहारियों का आदर्श था, लेकिन दुर्भाग्य से बंगाल में इसकी बिल्कुल भी सराहना नहीं की गई – जो उस समय निचले प्रांतों में प्रमुख भागीदार था – क्योंकि इसका व्यावहारिक प्रभाव ''बिहार बिहारियों के लिए'' के अब प्रसिद्ध नारे की स्थापना थी।[8] कुछ अन्य प्रांतों में भी, इस आदर्श को कुछ लोगों द्वारा ''राष्ट्र–विरोधी''

* शोधार्थी, UGC- NET, JRF, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना
** प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

माना जाता था, लेकिन ऐसा दृष्टिकोण बिल्कुल भी अच्छी तरह से स्थापित नहीं था। वास्तव में, कुछ वर्षों बाद कर्जन के विभाजन के कारण बंगाल के टुकड़े होने पर जो तीव्र उत्तेजना हुई (जिस योजना के तहत दो तिहाई बंगालियों ने असमियों के साथ एक साझा प्रशासन साझा किया, और शेष एक तिहाई बिहारियों और उड़ियाओं के साथ) उसने निर्णायक रूप से स्थापित कर दिया कि भारत में एक आम भाषा, और ऐतिहासिक परंपराओं और क्षेत्रीय देशभक्ति पर आधारित भाषाई प्रांतों का हमारा आदर्श बिल्कुल सही था।[9]

महेश नारायण ने विलक्षण दृढ़ता से जीवन भर इसके लिए काम किया, अच्छी और बुरी खबरों के माध्यम से, जिसका परिणाम यह हुआ कि हालाँकि वे बिहार के एक अलग प्रांत के रूप में गठन को देखने के लिए जीवित नहीं रहे, लेकिन उन्होंने अपने जीवन के मिशन को व्यावहारिक रूप से पूरा होते देखा और बिहार में उभरती पीढ़ी को उनके मूल प्रांत के लिए एक अलग प्रशासन के आदर्श से परिचित कराने के बाद उनकी मृत्यु हो गई।[10] इस प्रकार वे वर्षों तक बिहार में सबसे प्रभावशाली व्यक्तित्व रहे और उनकी असामयिक मृत्यु उनके प्रांत के लिए एक अपूरणीय दुर्भाग्य थी। यह समझने के लिए कि उन्होंने अपने समकालीनों पर किस तरह प्रभाव डाला, यह संक्षेप में याद करना आवश्यक होगा कि बिहार के प्रमुख लोग उनके बारे में क्या सोचते थे। सर अली इमाम ने घोषणा की कि ''यदि बिहार में देशभक्ति की पवित्र आग जलाई गई थी, तो वह व्यक्ति निश्चित रूप से महेश नारायण था'' जबकि श्री हसन इमाम ने कहा कि ''यदि बिहार में देशभक्ति की पवित्र आग जलाई गई थी, तो वह व्यक्ति निश्चित रूप से महेश नारायण था''[11]और मैं उन्हें ''बिहार में जनमत का जनक'' मानता हूँ।[11] हमारी पीढ़ी के दो महानतम बिहारियों की ओर से ये श्रद्धांजलि उचित, न्यायसंगत और योग्य थी। वास्तव में, महेश नारायण एक मिशन वाले व्यक्ति थे। बहुत कम उम्र में ही राजनीतिक रूप से निष्क्रिय और सामाजिक रूप से निष्क्रिय लोगों के बीच जीवन में आने वाले, एक ऐसे लोग जिन्होंने अपना सारा आत्मविश्वास खो दिया था, और जो बंगाल के अपने अधिक बौद्धिक पड़ोसियों के लिए मात्र एक अनुलग्नक बने रहने में संतुष्ट थे, उन्होंने एक सार्वजनिक व्यक्ति के रूप में अपना जीवन शुरू किया, जिसका कोई मित्र नहीं था, सिवाय लोगों की सेवा करने के उनके आदर्श के, और उनके पास कोई भाग्य नहीं था, बल्कि उनकी तीव्र और ईमानदार देशभक्ति थी। वे उन सूचियों में शामिल हो गए जहाँ पद और निहित स्वार्थों ने खुद को व्यवस्थित किया थाय और निडरता से अपने मिशन की व्याख्या की जब तक कि उन्हें काफी सफलता नहीं मिली।[12]

सचिचदानंद सिन्हा लिखते हैं कि मैं सच्चे भारतीय राष्ट्रवाद के प्रति अपनी सहानुभूति में किसी से पीछे नहीं हटता, और मैंने हमेशा खुद को एक कट्टर भारतीय राष्ट्रवादी माना है। मैंने 1888 में राष्ट्रीय कांग्रेस में भाग लिया था, जब इसका चौथा सत्र इलाहाबाद में आयोजित किया गया था, हालाँकि उस समय मैं एक छात्र था, मुझे एक प्रतिनिधि के रूप में जाने की अनुमति नहीं थी, जो मैं बहुत चाहता था। लेकिन 1896 से मैं विभिन्न क्षमताओं में उस आंदोलन से जुड़ा रहा, जब तक कि 1920 में सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू नहीं हो गया। लेकिन मुझे कभी नहीं लगा कि ''बिहारियों के लिए बिहार'' और एक स्वतंत्र भारत के दो आदर्शों के बीच कोई संघर्ष था। इसके विपरीत, मैंने हमेशा महसूस किया है कि उत्तरार्द्ध ने पहले की अपेक्षा अधिक महत्व दिया है, क्योंकि भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण क्षेत्र में विकसित होने वाली एकमात्र राष्ट्रीयता संघीय होगी, और जो मिश्रित आबादी वाले दुनिया के अधिकांश राज्यों में प्रचलित है। संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका – खुद को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के भीतर सीमित करने के लिए, या जो एक समय में इससे संबंधित थे – इसके उल्लेखनीय उदाहरण हैं।[12] छोटे क्षेत्रों और आबादी वाले देशों को छोड़कर, संघीय के विपरीत, एकात्मक कहलाने वाली राष्ट्रीयता को विकसित करना और बनाए रखना संभव नहीं है। मध्य और दक्षिण अमेरिका के लैटिन अमेरिकी गणराज्यों के संविधानों, साथ ही जर्मनी के संविधानों में आधुनिक राज्यों में राष्ट्रीयता के लिए आंदोलनों की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। और अंत में, ब्रिटेन की सरकार भी धीरे–धीरे संघीय प्रकार की हो सकती है, क्योंकि आयरिश होम रूल आंदोलन की सफलता के बाद स्कॉटलैंड और वेल्स के लिए भी इसी तरह की मांगें उठ रही हैं–संभवतः वर्तमान में कमजोर, लेकिन समय के साथ जोरदार होने की संभावना है।[13]

यदि यह सब आधुनिक राज्यों में राष्ट्रीयता के उत्थान और विकास पर असर डालने वाली शक्तियों की प्रवृत्ति का संकेत है, तो यह उम्मीद करना बेकार होगा कि भारतीय राष्ट्रीयता संघीय के अलावा कुछ भी हो सकती है। यह बात भारत सरकार के अगस्त 1911 के प्रसिद्ध प्रेषण के यादगार पैराग्राफ 3 में बहुत सारे शब्दों में कही गई थी, और वास्तव में, यह बंगाल और बिहार के प्रांतों के पुनर्गठन के लिए उसमें तैयार की गई योजना का मुख्य बिंदु था। उसी सिद्धांत का पालन तब से उड़ीसा और सिंध के लिए अलग–अलग

प्रांतीय प्रशासनों के गठन में किया गया है। अन्य क्षेत्र अब भाषाई आधार पर पुनर्गठित प्रशासन की मांग कर रहे हैं, और कांग्रेस के विभाजन, उनके अधिकार क्षेत्र के उद्देश्यों के लिए, लंबे समय से उसी सिद्धांत पर गठित किए गए हैं।[14]

दो बहुत ही प्रतिष्ठित ब्रिटिश राजनेताओं ने – दिलचस्प बात यह है कि दोनों कट्टर रूढ़िवादी थे – वर्षों पहले अधीनस्थ देशभक्ति या समग्र राष्ट्रीयता के इस आदर्श को स्पष्ट रूप से समझाया था – कुछ उद्देश्यों के लिए एकात्मक, और कुछ अन्य के लिए संघीय। अप्रैल, 1907 में उस वर्ष के औपनिवेशिक सम्मेलन में लिखते हुए, स्वर्गीय लॉर्ड मिलनर ने कहाः ''हर जर्मन एक संकीर्ण और एक व्यापक पितृभूमि के विचार से परिचित है। वह एक देशभक्त प्रशियाई, सैक्सन या बवेरियन है, लेकिन वह एक जर्मन भी है।[15]

ब्रिटिश क्राउन के किसी भी विषय के लिए एक समान दोहरी निष्ठा महसूस करने में कोई बड़ी कठिनाई नहीं देख सकता – अपने देश के प्रति निष्ठा और समग्र रूप से ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति निष्ठा।'' फिर, स्वर्गीय लॉर्ड बालफोर दोहरी निष्ठा के अपने प्रतिपादन में लॉर्ड मिलनर से भी आगे चले गए। वास्तव में, उनके विचारों में त्रिगुणात्मक या चौगुनी निष्ठा का सिद्धांत समाहित था। उन्होंने इस विषय पर अपने विचार ''राष्ट्रीयता और स्वशासन'' नामक लेख में स्पष्ट रूप से व्यक्त किए, इस प्रकारः ''देशभक्ति का कोई अनन्य अनुप्रयोग नहीं होना चाहिए। यह किसी व्यक्ति के देश से अधिक या किसी व्यक्ति की जाति को बहुत हद तक शामिल कर सकती है। यह बहुत कम को भी शामिल कर सकती है। और इन विभिन्न देशभक्ति को परस्पर अनन्य होने की आवश्यकता नहीं है, और न ही होना चाहिए। जैसे–जैसे सभ्यता आगे बढ़ती है, लोगों के लिए यह सीखना अधिक से अधिक आवश्यक होता जाता है कि उन्हें कमजोर किए बिना कैसे जोड़ा जाए, एक तरफ संकीर्ण प्रांतीयता से कैसे बचा जाए, और दूसरी तरफ प्रबुद्ध विश्वव्यापीकरण के नाम पर स्वार्थी उदासीनता से कैसे बचा जाए। वास्तव में विभिन्न देशभक्ति का कुछ संयोजन विचारशील व्यक्तियों के बीच लगभग सार्वभौमिक है।[16]

सच्चिदानंद सिन्हा लिखते हैं कि 'यदि मैं उस मामले पर विचार करता हूं जिसे मैं सबसे अच्छी तरह जानता हूं (अर्थात, मेरा अपना) तो मैं पाता हूं कि मानव जाति के प्रति सामान्य सम्मान के भीतर, जिसे मैंने आशा न तो अनुपस्थित है और न ही कमजोर है, मैं विशेष रूप से अपने चरित्र में देशभक्ति की भावना से प्रेरित हूं, उन राष्ट्रों के समूह के लिए जो पश्चिमी सभ्यता के निर्माता और संरक्षक हैं, उस उप–समूह के लिए जो अंग्रेजी भाषा बोलता है, और जिनके कानून और संस्थाएं ब्रिटिश इतिहास में निहित हैं, उन समुदायों के लिए जो ब्रिटिश साम्राज्य की रचना करते हैं, ब्रिटेन के लिए जिसका मैं नागरिक हूं, और स्कॉटलैंड के लिए जहां मैं पैदा हुआ, जहां मैं रहता हूं और जहां मेरे पूर्वज मुझसे पहले रहते थे। जहाँ ऐसी देशभक्ति को संघर्ष में नहीं डाला जाता, वे न केवल एक–दूसरे के साथ सुसंगत होती हैं, बल्कि वे परस्पर एक–दूसरे को मजबूत कर सकती हैं, और राजनेता का उद्देश्य उनके बीच संघर्ष को असंभव बनाने से कहीं अधिक बड़ा हो सकता है।[17] यह भविष्य की भारतीय राष्ट्रीयता के लिए सबसे अच्छा मामला है, और इसके विकास को निर्देशित करने के लिए सही दिशा है। ठनहीं संकल्पनाओं से प्रेरित यह आन्दोलन था। यह तब ''बिहारियों के लिए बिहार'' आंदोलन का कारण था। 1942 में, बिहार के एक अलग प्रांत के रूप में गठन के तीन दशक बाद, 1912 में, कांग्रेस के एक पूर्व अध्यक्ष (डॉ राजेंद्र प्रसाद) ने इस विषय पर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए ''श्रीमहेश नारायण और सच्चिदानंद सिन्हा उन लोगों में से थे जिन्होंने बिहार के एक अलग प्रांत के निर्माण के लिए आंदोलन शुरू किया था। उस समय इसे बहुत गलत समझा गया था, और इसे बिहारियों के लिए कार्यालय की रोटी और मछली हासिल करने के लिए एक के रूप में देखा गया था। लेकिन जो लोग इस भावना में प्रविष्ट हुए, वे जानते थे – और उसके बाद घटित घटनाओं से पता चलता है – कि बिहार की आत्म–अभिव्यक्ति के लिए यह आवश्यक था। इस विचार को कांग्रेस ने स्वीकार किया, और अब सरकार भी धीरे–धीरे इसे लागू कर रही है। 1912 में बिहार को एक अलग प्रांत के रूप में बनाया गया था, और 1936 में उड़ीसा और सिंध को भी इसी तरह प्रशासनिक इकाइयाँ बनाया गया था।[18]

महेश नारायण (1858 से 1907) हिन्दी कवि तथा सामाजिक कार्यकर्ता थे। वे आधुनिक बिहार के निर्माता के रूप में भी जाने जाते हैं। सन 1881 में 23 वर्ष की अवस्था में उन्होंने खड़ी बोली हिंदी में 'स्वप्न' नामक एक कविता की रचना की जिसका प्रकाशन पटना से प्रकाशित 'बिहार बंधु' में 13 अक्टूबर 1881 को हुआ। यह खड़ी बोली हिंदी में रचित अपने समय की सबसे लम्बी कविता तो है ही, साथ ही हिन्दी भाषा के पूरे इतिहास में मुक्तछन्द की पहली कविता है।[19]

उनके पिता मुंशी भगवतीचरण संस्कृत और फारसी के विद्वान थे। उन्होंने महेश नारायण को शुरू से ही विकास का ऐसा वातावरण प्रदान किया जिसके कारण बचपन से ही उनके अन्दर कुछ कर गुजरने की चाह बनी रही। पटना से इन्ट्रैन्स की परीक्षा पास करने के बाद वह उच्च शिक्षा के लिये कोलकाता चले गए। बीए की पढ़ाई बीच में ही छोड़कर वे वापस अपने बड़े भाई गोविन्दचरण के पास पटना आ गए। तथा उसके बाद उन्होंने 'बिहार टाइम्स' और 'कायस्थ गजट' का प्रकाशन किया।

उन्होने हिंदी और अँग्रेजी दोनो में अनेक निबन्धों और कविताओं की रचना की। लेकिन उनकी रचना के केन्द्र में आम आदमी के जीवन की समस्याएँ ही रहीं तथा इसी क्रम में उन्होंने समाज और राष्ट्र की समस्याओं को उठाया। हिंदी भाषा जनता की अस्मिता के लिये उन्होंने लगातार हिन्दी की वकालत की तथा अपने द्वारा संपादित पत्रों के संपादकीय में भारतीय राष्ट्रीयता के सवाल को उठाया।

हिन्दी की प्रथम छन्दमुक्त कविता

13 अक्टूबर 1881 को 'बिहारबन्धु' में 'स्वप्नभंग' नाम से उन्होने एक बड़ी कविता छपवायी। महेश नारयण की यह कविता हिन्दी की पहली मुक्तछन्द कविता हैः

बिजली की चमक से रोशन हुआ चेहरा,
देखा तो परी है, ताजों से भरी है।
घुंघराले बाल, मखमल से दो गाल,
तथा नाजुक उसका कुछ था मलाल।

वर्ष 1889 में स्वर्गीय सच्चिदानंद सिन्हा बार–एट–लॉ करने के लिए इंग्लैंड गए थे। वहां, जब उन्होंने खुद को बिहारी बताया, तो उनका उपहास किया गया, क्योंकि वे बिहार से थे, जिसका देश के नक्शे पर कोई अस्तित्व नहीं था। इस अपमानजनक अनुभव ने डॉ. सिन्हा को बिहार राज्य के लिए एक अलग पहचान बनाने के लिए प्रेरित किया।

सन् 1893 में, बार–एट–लॉ की पढ़ाई सफलतापूर्वक पूरी करने के बाद, वे पटना लौट आए और बिहार को एक अलग प्रशासनिक इकाई बनाने के बाद ही संतुष्ट होने की शपथ ली। लेकिन बिहार के लिए संघर्ष, अन्य सभी संघर्षों की तरह, कड़ा विरोध लेकर आया क्योंकि अस्थिर बंगाल बिहार के लिए अलग पहचान के लिए सहमत नहीं था।[20]

शुरुआती वर्षों में यह साप्ताहिक पत्रिका पूरी तरह से बिहार को बंगाल से अलग करने के संघर्ष को समर्पित थी और यह आंदोलन व्यापक हो गया। कुछ समय बाद डॉ. एस.एन. सिन्हा और नंदकिशोर लाल ने कई स्थानीय संस्थाओं की ओर से लेफ्टिनेंट गवर्नर अलेक्जेंडर मैकेंजी को बिहार को बंगाल से अलग करने के लिए ज्ञापन सौंपा। 1906 में, राजेंद्र प्रसाद, जो कलकत्ता के 'बिहारी क्लब' के सचिव थे, ने सच्चिदानंद सिन्हा और महेश नारायण के परामर्श से पटना में बिहारी छात्रों का एक सम्मेलन आयोजित किया।[21]

इस सम्मेलन में अलगाववादी आंदोलन को गति देने के लिए एक छात्र समिति का गठन किया गया और इस तरह इसने बहुत तेजी पकड़ी। 1907 में महेश नारायण की मृत्यु हो गई लेकिन आंदोलन को मौलाना मजहरुल हक, अली इमाम, राय बहादुर ब्रह्मदेव प्रसाद, हसन इमाम का समर्थन मिला। इनकी मदद से 1908 में बिहार राज्य सम्मेलन का पहला अधिवेशन पटना में हुआ जिसमें सर्वसम्मति से बिहार को बंगाल से अलग करने का प्रस्ताव पारित किया गया। 1909 में भागलपुर में हुए दूसरे अधिवेशन में भी यही मांग दोहराई गई।[22]

इस सम्मेलन के कुछ महीनों बाद डॉ. एस.एन. सिन्हा और मजहरुल हक बंगाल विधान परिषद और मुस्लिम अल्पसंख्यक सीट के कोटे से इंपीरियल विधान परिषद के सदस्य चुने गए। इस समय तक अलगाववादी आंदोलन को ब्रिटिश प्रशासन की नजर में मान्यता मिल चुकी थी। यह उस समय की बात है जब तत्कालीन विधि सदस्य एस.पी. सिन्हा ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया और वाइस–रॉय लॉर्ड मिंटो ने उक्त पद को भरने के लिए डॉ. सिन्हा से परामर्श किया। डॉ. सिन्हा ने अली इमाम का नाम सुझाया जिन्हें एस.पी. सिन्हा की जगह विधि सदस्य नियुक्त किया गया। अली इमाम अलगाव के विचार को आगे बढ़ाने और उसे कानूनी बल देने में बहुत मददगार साबित हुए।[23]

1911 में दिल्ली दरबार में जॉर्ज पंचम को भारत का सम्राट घोषित किया जाने वाला था। इस अवसर पर भारत मामलों के सचिव ने भारत सरकार को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने बिहारियों की मांग पर जोर देते हुए उन्हें ''स्वस्थ और कानून का पालन करने वाले'' बताया जो अपनी उत्पत्ति, भाषा, प्रवृत्ति, भूमि और सोच में बंगालियों से भिन्न थे।'' यह भी बताया गया कि 12 दिसंबर को बिहार और उड़ीसा के लिए

अलग–अलग परिषद में एक लेफ्टिनेंट गवर्नर की नियुक्ति की जाएगी। दिल्ली दरबार में सभी को संतुष्ट करते हुए बड़ी खुशी के साथ इसकी घोषणा की गई।[24]

इस प्रकार 1 अप्रैल, 1912 से बिहार और उड़ीसा लेफ्टिनेंट गवर्नर की परिषद के अधीन अलग प्रशासनिक इकाई बन गए। समय के साथ, 1 अप्रैल, 1936 से उड़ीसा भी बिहार से अलग हो गया।

'बिहार टाइम्स' ने अपने उद्देश्य के अनुरूप, बिहार के निर्माण के लिए संघर्ष हेतु जनमानस को शिक्षित करने में अपनी भूमिका प्रभावी ढंग से निभाई। इस पत्रिका ने बिहार के मुद्दे को उठाया और इस विचार को पोषित किया कि बिहार को बंगाल से अलग करने से बंगाल प्रशासन को आवश्यक राहत मिलेगी जो भारत सरकार के लिए सुविधाजनक होगी और समय के साथ 'बिहार टाइम्स' ने पड़ोसी राज्यों के अन्य समाचार पत्रों को भी बिहार के निर्माण के विचार के प्रति प्रभावित किया। महेश नारायण की मृत्यु के साथ, इसे बड़ा झटका लगा, फिर भी, अखबार निकलता रहा और बहुत बाद में इसने 'मदरलैंड' का रूप लिया।

संदर्भ

1. सिन्हा सच्चिदानन्द, सम एमिनेंट बिहार कन्टेम्परेरीज, हिमालयपब्लिकेशन पटना, 1944, पृ. 40
2. वही
3. मिश्रा, रत्नेश्वर (2018) बिहार का बदलता भूगोल का इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ० 1.
4. वही
5. दास प्रमोदानंद एवं कुमार अमरेन्द्र (2007), बिहार : इतिहास एवं संस्कृति, लूसेन्ट, पटना, पृ० 270.
6. झा नरेन्द्र, (2012) द मेकिंग ऑफ बिहार एंड बिहारीज, मनोहर पब्लि, नई दिल्ली, 2012, पृ० 01.
7. दत्त, के० के० (1968) दी कम्प्रेहैंसिव हिस्ट्री ऑफ बिहार, काशी प्र० जायसवाल शोध संस्थान, पटना, पृ० 92.
8. नारायण एवं सिन्हा (1907), 'पार्टिशन ऑफ बंगाल और सेपरशन ऑफ बिहार, शोध आलेख
9. अशोक अंशुमान (प्रधान संपादक), द मेकिंग ऑफ ए प्रोविनस (सेलेक्ट डॉक्यूमेंट ऑन द क्रियेसन ऑफ मॉडर्न बिहार), बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना, 2013, पृ0 334
10. वही
11. रत्नेणश्वर मिश्रा, पूर्वोक्त : पृ० 6.
12. वही
13. वही
14. वही
15. नरेन्द्र झा, पूर्वोक्त.
16. प्रमोदानंद दास एवं कुमार अमरेन्द्र, पूर्वोक्त
17. अशोक अंशुमान (प्रधान संपादक), पूर्वोक्त
18. वही
19. सिन्हा सच्चिदानन्द, पूर्वोक्त
20. अशोक अंशुमान (प्रधान संपादक), पूर्वोक्त
21. वही
22. वही
23. वही
24. वही

डॉ. उदय नारायण गंगू का परिचय और आर्य समाज की पृष्ठभूमि

डॉ. अमित कुमार गुप्ता*

डा . उदय नारायण गंगू ने पढ़ाई के लिए उज्जैन को पसंद किया था । शिक्षक ने उन्हें भगोड़ा कहा तो एम.ए करने मॉरिशस से फिर लौटे । प्रवासी भारतीय सम्मेलन में शामिल होने डा.उदय नारायण गंगू इंदौर आए । उन्होंने मॉरिशस में हिंदी को शिखर तक पहुंचाया । वे वर्तमान में मॉरिशस के अंतर्गत हिंदी स्पीकिंग के अध्यक्ष है । उनका जन्म 20 जनवरी 1943 ई.में मॉरिशस में हुआ ।

सन् 1903 में आर्य सभा मॉरीशस की स्थापना 'आर्य प्रतिनिधि सभा' के नाम से क्युर्पिप नगर में हुई थी। उस समय समाज की मुख्य गतिविधि साप्ताहिक सत्संग एवं 'धार्मिक समारोहों का आयोजन करना था। 'खेमलाल लाला' आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान के रूप में नियुक्त हुए थे। लालाजी को आर्य सभा मॉरिशस के संस्थापक की उपाधि प्राप्त है। सन् 1911 में पोर्ट लुई शहर में आर्य सभा मॉरीशस की स्थापना हुई, जो 'आर्य परोपाकारिणी सभा' के नाम से 5 दिसंबर, 1913 को दर्ज की गई।

आर्य सभा का उद्देश्य : -

आर्य सभा का आदर्श वाक्य एवं उद्देश्य 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम् - विश्व को आर्य बनाते चलो।

उल्लेखनीय गतिविधियाँ/ उपलब्धियों/ प्रतिभागिताः

1. प्रति वर्ष आर्य सभा पहली कक्षा से लेकर उत्तमा तृतीय खंड एवं सिद्धांत प्रवेश, सिद्धांत रत्न, सिद्धांत वाचस्पति आदि परीक्षाओं का आयोजन करती है।
2. दीपावली एवं ऋषि निर्वाण दिवस (प्रत्येक वर्ष)
3. श्रावणी यज्ञ (प्रत्येक वर्ष)
4. आर्य युवक दिवस (प्रत्येक वर्ष)
5. वेदों का प्रचार करने हेतु मॉरीशस भर में कार्यशालाओं का आयोजन (2014)
6. टीम बिल्डिंग वर्कशॉप (मार्च 2014)
7. अंतरराष्ट्रीय आर्य सम्मेलन (5-8 दिसंबर 2013)
8. मॉरीशस भर में जगह-जगह पर धार्मिक प्रवचनों का आयोजन आदि।

प्रमुख पदाधिकारीः गंगू डॉ. उदय नारायण (Gangoo Dr. Oudaye Narain) प्रधान (President)

सभा, मॉरीशस के उन प्रमुख संस्थाओं से है जो सक्रिय रूप से हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार कर रही है। सभा मॉरीशस भर में हिंदी की सायंकालीन कक्षाएँ चलाती है। साथ ही यह अपने कॉलेजों में (डी.ए.वी कॉलेज) भी एस.सी. एवं एच.एस.सी स्तर पर हिंदी तथा संस्कृत भाषाओं की पढ़ाई करती है। हाल ही में सभा ने ऋषि दयानंद संस्थान का सृजन किया है, जहां स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी की पढ़ाई की जाती है ।

मॉरीशस में हिंदी की यात्रा 184 वर्षों से अविरल जारी है। प्रवासी भारतीयों ने मॉरिशस की धरती को अपने सांस्कृतिक मूल्यों के संस्कारों से अनुप्राणित होकर 'माता भूमि पुत्रोऽहम् पृथिव्या' के रूप में स्वीकार किया। मजदूरी में कठोर परिश्रम के साथ-साथ अपनी सनातन संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए भी इन प्रवासी भारतीयों के द्वारा कठोर परिश्रम किया गया। कम पढ़े-लिखे लोगों ने अनपढ़ लोगों को भी

* अतिथि व्याख्याता, हिंदी विभाग, स्व. लाल श्याम शाह शासकीय नवीन महाविद्यालय, मोहला-जिला-मोहला मानपुर अंबागढ़ चैकी, छत्तीसगढ़

रामचरितमानस की चौपाइयों के माध्यम से धर्म तथा संस्कृति से जोड़े रखने में अपना उल्लेखनीय योगदान दिया।

आलेख के बीज शब्द :- रामचरितमानस, आर्य समाज, गीता मंडल, हिंदी प्रचारिणी सभा, तिलक विद्यालय, आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा, प्रवासी भारतीयों की आगमन-शताब्दी, जनान्दोलन द्वारा हिंदी शिक्षण, स्वातंत्र्यपूर्व काल, स्वातंत्रयोत्तर काल, हिंदी सेवा, आजीवन व्रती हिंदी प्रचारक, आप्रवासन काल आदि ।

प्रस्तुत शोध-आलेख का विस्तार :- इस शोध आलेख को तीन भागों में विभक्त करना समीचीन होगाः-

1. आप्रवासन काल (सन् 1834 से 1915 ई. तक) में हिंदी, साहित्य तथा भारतीय संस्कृति ।
2. स्वातंत्र्यापूर्व काल (सन् 1915-1967 ई. तक) में हिंदी साहित्य तथा भारतीय संस्कृति ।
3. स्वातंत्र्योत्तर काल (सन् 1968 ई. से वर्तमान तक) में हिंदी साहित्य तथा भारतीय संस्कृति ।

1. आप्रवासन काल (सन् 1834 ई. से 1915 ई. तक) में हिंदी साहित्य तथा भारतीय संस्कृति- सन् 1894 ई. से 1915 ई. तक भारतीय मूल के लोगों का मॉरीशस की धरती पर रोजगार के लिए जाना लगा रहा। डॉ. उदय नारायण गंगू के शब्दों में- "1910 ई. तक तीन लाख छियालीस हजार छत्तीस पुरूषों और एक लाख एक हजार सात सौ अट्ठावन स्त्रियों ने शर्तबंद मजदूरों के रूप में इस धरा पर पदार्पण किया, जिनकी कहानी बड़ी हृदय-विदारिणी है। इनमें लगभग 1 लाख 70 हजार स्त्री-पुरूष अपने खून-पसीने से मॉरिशस को सजा-सँवारकर स्वदेश लौट गये। शेष इस धरती को स्वर्ग बनाने में दिन-रात निरत रहे।"[1]

डॉ. उदय नारायण गंगू के उपर्युक्त कथन से निष्कर्ष निकाला जाएगा कि मॉरिशस के विकास में भारतीयो का कितना योगदान है। यह योगदान केवल भौतिक विकास तक ही सीमित नहीं है अपितु रामचरितमानस की चौपाइयों से अपने धर्म तथा संस्कृति की रक्षा करने वाले प्रवासी भारतीयों ने रामायण के माध्यम से भारतीय संस्कृति के प्रमुख केंद्र के रूप में भी मॉरिशस को विकसित किया है।

प्रवासी भारतीयों ने अपने धर्म, संस्कृति तथा भाषा को सुरक्षित रखने का जो अथक प्रयास किया उसी का परिणाम है कि आज मोती की तरह चमकने वाला स्वच्छता का पर्याय मॉरिशस जैसा द्वीप लघु भारत जान पड़ता है।

अपनी भारतीय संस्कृति की प्राण-पण से रक्षा करने वाले अधिकांश भोजपुरी-भाषी प्रवासी भारतीयों की भोजपुरी भाषा के गर्भ से ही मॉरिशस में हिंदी भाषा का जन्म हुआ। महात्मा गाँधी संस्थान के वरिष्ठ प्रवक्ता डॉ. हेमराज सुन्दर ने दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन, भोपाल में एक भेंटवार्ता में बताया कि "मॉरिशस में पचास प्रतिशत से अधिक लोग हिंदी भाषा बोलते हैं और इसका श्रेय 'बैठका' व्यवस्था को जाता है।"[2] दिनभर की कठिन मेहनत से चूर होने पर भी प्रवासी भारतीय रात्रि-काल में फूस की बनी बैठकों में 'रामचरितमानस' पर सत्संग करने के लिए एकत्रित होते थे। डॉ. उदय नारायण गंगू के शब्दों में -"बैठक उनका एक सांस्कृतिक केंद्र था, जिसमें सत्संगों के अतिरिक्त हिंदी की पढ़ाई होती थी। प्रारम्भमें हिंदी की पढ़ाई कैथी लिपि के माध्यम से होती थी। कालांतर में देवनागरी लिपि प्रचलन में आयी। 'बैठके' के शिक्षण-कार्य करने वाले शिक्षक अल्पशिक्षित थे, उन्हें व्याकरण और शिक्षण विधियों का ज्ञान नहीं था। शिक्षण आरम्भ करने से पूर्व विद्यार्थी अपनी पाटी पर एक सूक्ति लिखते थे- " रामागति देहु सुभति।"[3] इस सूक्ति के द्वारा वे भगवान राम से अच्छी बुद्धि की प्रार्थना करते थे, ताकि पढ़ाई में प्रगति कर सकें। वे पढ़ाने वाले को अत्यन्त सम्मान और श्रद्धा से 'गुरूजी' शब्द से संबोधित करते थे। अनेक सनातन धर्मी पंडित -पुरोहित शिवालयों के प्रागंण में बनी पाठशालाओं में रामचरितमानस पढ़ाने लगे। भारतीय आप्रवासन के आंरभिक दशकों में हिंदी का पठन-पाठन हस्तलिखित पुस्तकों द्वारा होता था। मॉरिशस के प्रतिष्ठित साहित्यकार जयनारायण रॉय के शब्दों में- "कुछ बरसों तक हर शाम घंटे-दो घंटे बैठकर न मिटने वाली स्याही में सरकंडे की कलम बोर-बोर कर पूरी रामायण नकल करते और यो धर्म के प्रति अपने उत्साह को अभिव्यक्त किया करते थे। बहुत से लोग जो भी किताब हाथ लग जाती, उसी

की नकल कर डालते थे, फिर वह कबीर, सूरदास या नानक के भजन, आल्हा खंड या सारंगध की कहानी ही क्यों न हो।"[4]

मॉरिशस के हिंदी साहित्य को आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक रूप से समृद्ध बनाने का श्रेय 'आर्य समाज' को भी जाता है। 20वीं शताब्दी के आरम्भ में आर्य समाज की स्थापना हुई। आर्यसमाजी हिंदी को 'आर्य भाषा' कहते थे। हिंदी पढ़ना और पढ़ाना वे अपना परम कर्तव्य समझते थे। बैरिस्टर मणिलाल मगनलाल आर्य समाजियों का साथ देते थे। वे भारतीयों की रक्षा के लिए गाँधीजी द्वारा मॉरिशस भेजे गए थे। उन्होंने सन् 1911 में मॉरिशस में हिंदी का पहला पत्र 'हिंदुस्तानी' निकाला। बैरिस्टर मणिलाल और तत्कालीन आर्य समाजियों ने भोजपुरी के स्थान पर खड़ी बोली हिंदी का प्रचार-प्रसार किया।

कालांतर में अनेक आर्यसमाजी विद्वान भारत से मॉरिशस गये। सन् 1911 ई. में 'आर्य प्रतिनिधि सुभा' के निमंत्रण पर डॉ. चिर्जीव भारद्वाज यहाँ सपरिवार आए और हिंदी भाषा के माध्यम से वैदिक धर्म का प्रचार करने लगे। उनकी पत्नी सुमंगली देवी ने मॉरिशस में अनेक कन्या विद्यालयों की स्थापना की।

सन् 1912 में पंडित आत्माराम विश्वनाथ मॉरिशस गए। विश्वनाथ जी ने आर्य समाज की 'मॉरिशस आर्य पत्रिका' का संपादन किया और हिंदी के अनेक ग्रंथों की रचना की। अनेक वर्षों तक हिंदी के नैष्ठिक प्रचारक रहते हुए विश्वनाथ जी ने मॉरिशस की चारों दिशाओं में हिंदी का प्रचार-प्रसार किया। भारतीय संस्कृति के मूल संस्कारों का प्रचार हिंदी भाषा के साथ स्वतः ही होता रहा। सन् 1914 में अत्यन्त तेजस्वी संत स्वामी स्वतंत्रानंद जी मॉरिशस गये। स्वामी जी ने सम्पूर्ण मॉरिशस की पदयात्रा करके हिंदी पढ़ने-पढ़ाने का संदेश दिया। स्वामी जी के वैदिक धर्म प्रेरित प्रवचनों ने प्रवासी भारतीयों को सांस्कृतिक रूप से जागरूक बनाया। स्वामी जी ने मॉरिशस के अनेक गाँवों में हिंदी की पाठशालाएँ खोली । दो वर्ष के प्रवासकाल में स्वामी जी ने हिंदी तथा भारतीय संस्कृति की अपार सेवा की।

2. स्वातंत्र्य पूर्व काल (सन् 1915-1967 ई. तक) में हिंदी साहित्य तथा भारतीय संस्कृति :-यह अवधि मॉरिशस में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से अत्यधिक उर्वरा रही है। 52 वर्षों के इस कालखंड में हिंदी के प्रचार-प्रसार करने वाली अनेक संस्थाओं का जन्म हुआ। सैकड़ों नवयुवक उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए फ्रांस, इंग्लैण्ड तथा भारत आदि देशों में गये। पण्डित काशीनाथ, पं. रामअवध, डॉ. झगरू सिगोविन, बैरिस्टर रामखेलावन बुधन, डॉ. शिवसागर रामगुलाम (डी.ए.वी. महाविद्यालय, देहरादून में अध्ययन किया), पं. वासुदेव विष्णु दयाल, पं. उमाशंकर गिरजानंद, जयनारायण रॉय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मॉरिशस की इन विभूतियों ने मॉरिशस का कायाकल्प कर दिया। सन् 1916 में लाहौर से पढ़कर आए पं. काशीनाथ ने मॉरिशस में वैदिक धर्म प्रचार के साथ-साथ हिंदी की अपार सेवा की। पंडित जी ने सन् 1818 में आर्यन पब्लिक स्कूल की स्थापना की। इस विद्यालय के बच्चों को पढ़ाने के लिए उन्होंने 'शिशु-बोध' नामक तीन पुस्तकें लिखी। उनके अनेक शिष्य कर्मठ समाजसेवक और हिंदी के आजीवन व्रती प्रचारक बने। पं. काशीनाथ ने अपने लेखन, संपादन, गायन तथा धार्मिक प्रवचनों से हिंदी की अभूतपूर्व सेवा की। हिंदी के प्रभावी शिक्षण के लिए पंडित जी ने अनेक नवयुवक को प्रशिक्षित कर उनसे हिंदी का व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार करवाया।

जैमिनी मेहता और स्वामी विवेकानंद जी ने क्रमशः सन् 1925, 1926 में मॉरीशस पहुँचकर हिंदी की सेवा में अपना उल्लेखनीय योगदान दिया। कुशल वक्ता रहे मेहता जी ने 'आर्य कुमार सभा' की स्थापना कर मॉरिशस में हिंदी के शिक्षण के लिए युवकों को प्रेरित किया। डॉ. उदयनारायण गंगू के शब्दों में- "भारतीय एवं स्थानीय विद्वानों के भगीरथ प्रयत्न से सन् 1935 तक आते-आते, आर्य समाज की पचहत्तर शाखाएँ खुल चुकी थीं। सभी शाखाओं में हिंदी की पढ़ाई हो रही थी। हिंदी पाठशालाओं के संचालन के लिए वार्षिकोत्सवों का आयोजन होने लगा। उन अवसरों पर आर्थिक दान के लिए अपील की जाती। लोग यथाशक्ति दान देते। इस

प्रकार के आयोजनों से भोजपुरी बोली के मुकाबले हिंदी का प्रचार बढ़ा और वह अधिकाधिक लोकप्रिय होती गई।"[5]

सन् 1920 में 'गीता मंडल' की स्थापना से मॉरिशस में श्रीमद्भगवद् गीता का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। सन् 1925 में हिंदू महासभा की स्थापना हुई। हिंदू महासभा ने गीता और रामायण से संबंधित परीक्षाएँ आरम्भ की। इन ग्रंथों को पढ़ने से लोगों को हिंदी तथा संस्कृत का अच्छा ज्ञान होने लगा।

भारत से शिक्षित पं. वेणीमाधव आर्य समाज के भीष्म पितामह कहलाने वाले श्री मोहनलाल मोहित आदि विभूतियों ने मॉरिशस में हिंदी तथा भारतीय संस्कृति की अभूतपूर्व सेवा की। हिंदी के शिक्षण के लिए श्री गिरधारी भगत और रामलाल मंगर भगत जी के सहयोग से 'तिलक विद्यालय' की स्थापना ने जन्म लिया। व्याकरण-सम्मत हिंदी और साहित्यिक हिंदी के प्रचार-प्रसार में 'तिलक विद्यालय' ने अविस्मरणीय योगदान दिया। 'आर्य रविवेद प्रचारिणी' सभा का गठन सन् 1930 में हुआ। हिंदी के माध्यम से वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार करने में इस संस्था का उल्लेखनीय योगदान है। सन् 1935 में प्रवासी भारतीयों के मॉरिशस में एक सौ वर्ष पूर्ण होने पर 'आगमन-शताब्दी' का आयोजन किया गया। इस आयोजन में हिंदी के उद्भट विद्वानों के वैदग्ध्यपूर्ण भाषणों को सुनकर अनेक मॉरिशसवासियों में अपने बच्चों को हिंदी सिखाने के लिए हिंदी पाठशाला में बड़ी संख्या में प्रवेश दिलाने की होड़ लग गयी।

कोलकाता विश्वविद्यालय से परास्नातक की उपाधि लेकर मॉरिशस में एक प्रतिभाशाली प्रवासी भारतीय वासुदेव विष्णु दयाल जी ने हिंदी भाषा में वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार का स्तुत्य कार्य किया। उन्होंने सम्पूर्ण मॉरिशस में तीन सौ से अधिक पाठशलाओं की स्थापना की। वे धर्म प्रचार के अवसर पर प्रवासी भारतीयों से यह गीत गवाया करतेः "पढ़ो हिंदू सभी हिंदी अ, आ, इ, ई, यह ऋषियों की भाषा है- क, ख, ग, घ,.....।" पण्डित विष्णु दयाल जी ने हिंदुओं में राजनीतिक चेतना पैदा की। उन्होंने आर्य समाजियों तथा सनातनियों में अद्भुत समन्वय स्थापित किया।

मॉरीशस में राजनीतिक अधिकार उन्हें ही प्राप्त थे, तथा अपने स्पष्ट हस्ताक्षर करने में समर्थ थे। सन् 1948 ई. के आम चुनाव से पूर्व केवल 11 हजार प्रवासी भारतीयों को मत देने का अधिकार प्राप्त था। आर्य समाज, गीता मंडल, हिंदू महासभा तथा अन्य स्वयंसेवी संस्थाओं ने अपने शिक्षण कार्य के माध्यम से बड़ी संख्या में प्रवासी भारतीयों को शिक्षित करने का कार्य किया। परिणामस्वरूप सन् 1948 के आम चुनाव में 71 हजार प्रवासी भारतीयों ने मतदान किया और मॉरिशस में भारतीय मूल के लोगों के हाथ में सत्ता आ गयी।

मॉरिशस की स्वतंत्रता से पूर्व प्रोफेसर रामप्रकाश जी के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। हिंदी पाठ्यक्रम के निर्धारण में उनका महती योगदान रहा। कालांतर में उनके अनेक शिष्य लेखक, संपादक, कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, जीवनीकार तथा निबंधकार आदि बने। प्रोफेसर रामप्रकाश जी के शिष्यों में सर्वश्री अभिमन्यु अनंत, ब्रजेन्द्र कुमार भगत, रामदेव धुरंधर, पूजानंद नेमा, प्रहलाद रामशरण, वेणी माधव, रामखेलावन, डॉ. उदयनारायण गंगू, राज हीरामन, डॉ. वीरसेन जागासिंह, जनार्दन कालीचरण, इन्द्रदेव भोला इंद्रनाथ, सत्यदेव प्रीतम, हरिनारायण सीता, सत्यदेव टेंगर, अजामिल माताबदल, खेमराज तीला, बालचन तानाकुर आदि अनेक हैं, जो हिंदी जगत् के साहित्याकाश में देदीप्यमान नक्षत्रों के सदृश्य प्रकाशित हो रहे हैं। डी.ए.वी. महाविद्यालय, देहरादून के छात्र डॉ. शिवसागर रामगुलाम और सुखदेव बिसुनदयाल के राजनीतिक कौशल के कारण परतव मॉरिशस स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होने लगा। मॉरि शस के राष्ट्रकवि ब्रजेन्द्र कुमार भगत ने अनेक प्रभावी कविताओं के माध्यम से स्वतंत्रता का वातावरण सृजित किया।

मॉरिशस में हिंदुओं के विवाह संस्कार के अवसर पर रात्रिकाल में भजन मंडलियों के गायक-गण संगीत के माध्यम से विवाह में सम्मितित बरातियों तथा घरातियों का स्वस्व व मर्यादित मनोरंजन करते थे। इन भजनों तथा गीलों के दुवारा भी हिंदी को बल मिला। स्वतंत्रता की देहली पर पहुंचते-पहुंचते मॉरिशस में

'आर्योदय', 'जनता', 'जमाना', 'समाजवाद', 'नवजीवन' आदि पत्रों ने हिंदी के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ अंग्रेजों को मॉरिशस छोड़ने की भूमिका तैयार कर दी। मॉरि शस के राष्ट्रीय रेडियो तया टेलीविजन पर हिंदी के कार्यक्रमों ने भी हिंदी का व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार किया। हिंदी फिल्मों ने भी प्रवासी भारतीयों को हिंदी में प्रेरित किया ।

3. स्वातंत्र्योत्तर काल (12 मार्च, सन् 1968 से वर्तमान तक) में हिंदी साहित्य तथा भारतीय संस्कृति :- 12 मार्च, सन् 1968 को मॉरिशस स्वतंत्र हुआ। डॉ. शिवसागर रामगुलाम स्वतंत्र मॉरिशस के प्रथम प्रधानमंत्री बने। उन्होंने हिंदी के प्रति विशेष ध्यान दिया, शासकीय विद्यालयों में हिंदी का शिक्षण कार्य प्रारम्भ हुआ। सत्तर के दशक में भारत से शिक्षित प्रवासी भारतीयों ने माध्यमिक विद्यालयों में हिंदी के शिक्षक के रूप में अपनी सेवाएँ देनी शुरू कर दी। अभिभावक बच्चों को हिंदी की पढ़ाई के लिए प्ररित करने लगे। ईसाई मिशनरियों के घोर विरोध के पश्चात् भी मॉरिशस में हिंदी को अंग्रेजी तथा फ्रेंच जैला सम्मान दिलाने में प्रवासी भारतीयों को स्वतंत्रता के प्रश्चात् न्यायालय से न्याय मिलने में 36 वर्ष लग गये और सन 2004 में हिंदी को विद्यालयों में अंग्रेजी तथा फ्रेंच जैसी मान्यता प्राप्त हुई ।

आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य सारे विश्व का कल्याण करने वाला है । सबके लिए शारीरिक , आध्यात्मिक और सामाजिक समृद्धि प्राप्त करना है । सबके प्रति हमारा आचरण ,प्रेम ,धर्म के आदेशों तथा उनकी अपनी - अपनी स्थिति के अनुसार होना चाहिए । अज्ञान को दूर करना चाहिए और ज्ञान को बढ़ावा देना चाहिए । इस तरह इस महत्पूर्ण आर्य समाज के सिद्धांतों का प्रचार - प्रसार करने का प्रयास डा.उदय नारायण गंगू ने मॉरिशस में किया जिनका चित्रण प्रस्तुत शोध - आलेख में किया गया है ।

संदर्भ - सूची :-

1. **डा.** उदय नारायण गंगू.मॉरिशस में हिंदी की स्थिति .हिंदी भाषा .राष्ट्रीय पुस्तक न्यास . भारत पृ.155
2. हिंदी महात्मा गांधी संस्थान मोका.मॉरिशस द्वारा दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन , भोपाल में एक भेंट वार्ता के दौरान व्यक्त मत . डा.हेमराज सुन्दर.वरिष्ठ प्रवक्ता हिंदी
3. मॉरिशस में हिंदी की स्थिति . डा उदय नारायण गंगू. पृ.156
4. मॉरिशस में हिंदी भाषा का संक्षिप्त इतिहास. श्री जयनारायण रॉय. पृ.55
5. मॉरिशस में हिंदी की स्थिति . डा उदय नारायण गंगू. पृ.159

भारतीय लोकतंत्र एवं नौकरशाही

डॉ. विजय प्रताप सिंह*

संसदीय शासन प्रणाली में प्रशासनिक नीति निर्माण विधायिका के प्रति उत्तरदायी सत्तारूढ सरकार ही करती है परन्तु देश का वास्तविक प्रशासन अधिकारियों के विशाल समूह के द्वारा चलाया जाता है जो अराजनीतिक होते है। ये अधिकारी ही स्थायी' कार्यपालिका बनाते है, जो अराजनीतिक है तथा मंत्री समूह राजनीतिक कार्यपालिका बनाते है। स्थायी कार्यपालिका राजनीति के प्रति तटस्थ रहते हुये भी प्रशासन में निरंतरता और कार्य दक्षता एवं क्षमता बनाये रखती है क्योकि यह अराजनीतिक है – स्थायी है– विशेषज्ञों से युक्त है। जबकि राजनीतिक कार्यपालिका – राजनीतिक है – अस्थायी है – सामान्यज्ञ है। अतएव आवश्यक है कि अधिकारी तंत्र मैं सही व्यक्तियों का चयन हो जो दक्ष हो तथा ईमानदार हो। संघ और राज्यों के आधीन सेवाओं में सर्वोत्तम गुणों वाले चयन द्वारा ही प्रशासन संविधान उल्लखित आदर्शो एवं लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति और नवीन संविधान के अंगीकृत एवं लागू किये जाने के बाद, आज भारत का जो राजनीतिक – प्रशासनिक व्यवस्था है उसमें अंग्रेजी शासको से विरासत में मिली हुई नौकरशाही न केवल अपने विशेषाधिकारो की दृढता से बनाये रखती है बल्कि संसदीय कार्यपालिका मन्त्रिमण्डलीय एवं न्यायिक कार्यक्षेत्र से अपने कार्यक्षेत्र को पृथक्करण पर जोर देकर अपनी स्वायत्त स्थिति बनाये रखती है। अतः भारतीय नौकरशाही एक शक्तिशाली विशिष्ट वर्ग के रूप में कार्य कर रही है। आजादी के इतने वर्षों बाद भी भारतीय नौकरशाही अभिजात्यवादी मनोवृत्ति से पीड़ित है। अधिकारी तन्त्र या नौकरशाही से तात्पर्य डेस्क द्वारा अथवा ब्यूरो द्वारा प्रबन्ध है।

एफ. एम. मार्क्य के अनुसार ''नौकरशाही से अभिप्राय कार्मिको संयत्रों और कार्य विधियों का वह कुल समूह है जिसके द्वारा एक संगठन अपना कार्यप्रबंध करता है तथा अपने लक्ष्य की पूर्त्रि करता है। वह संगठन सार्वजनिक भी हो सकता है और निजी भी, सरकारी, व्यापारिक, शैक्षिक अथवा चर्च सम्बन्धी भी हो सकता है किन्तु यदि इसका आकार बढा है तो इस दृष्टि से यह अनिवार्य रूप से नौकरशाही होगा।[1]

आर्थर के डेविस नौकरशाही को' एक ऐसा संगठन मानते है जिसमें व्यवस्थित नियमों पर आधारित विशेषीकृत पदो का एकीकृत पद सोपान है। एक अवैयक्तिक नित्यक्रम पर आधारित ढाचा जिसमें विधिवत सत्ता पदो में निहित होते है न कि उस व्यक्ति में जो इस पद पर बैठता है।[2]

आधुनिक नौकरशाही के अध्ययन के लिये मैक्सवेवर का विचार बहुत महत्वपूर्ण है। मैक्सवेवर ने नौकरशाही को एक आदर्श मॉडल को अपनाया है जिसमें निम्न लक्षण है;

1 उच्च अधिकारियों द्वारा प्राधिकार का प्रयोग केवल अधीनस्थ कर्मचारियो पर
2 पद एक सोपान क्रम से संगठित होते है।
3 प्रत्येक पद का कार्यक्षेत्र परिभाषित होता है।
4 योग्यता के आधार पर चयन करके पदो को भरा जाता है।
5 वेतन निश्चित क्रमबद्ध वेतनमान, पेंशन की प्रणाली होती हैं।
6 पद ही प्रमुख व्यवसाय होता है।
7 जीवन कालिक वृत्रि (कैरियर) प्रणाली का प्रचलन, पदोन्नयन, वरिष्ठता एवं उपलब्धि के आधार पर होता है।
8 अधिकारियो को प्रशासन के साधनो से पृथकत्व रहता है।
9 सरकारी कर्त्तव्यों का पालन अवैयक्तिय भावना से होता है एवं
10 पद के उत्तरदायित्वो को निभाते हुये अधिकारी अनुशासन के आधीन होते है।

भारत जैसे विकासशील देशो में यह सभी लक्षण विद्यमान नहीं है।

प्रो0 लास्की ने नौकरशाही को अच्छे गतिशील प्रबंधन में एक बाधा के रूप में देखा है जिसमें कठोरता, यांत्रिकता, अमानुषिकता, औपचारिकता, आत्मउच्चता आदि हावी रहते है। आजकल लोक

* एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, कानपुर।

कल्याणकारी राज्यो के कार्य आर्थिक–सामाजिक विकास क्षेत्रो में बहुत बढ़ गये है अतः नौकरशाही का आकार एवं उत्तरदायित्व कार्य भी बढते जा रहे है। नौकरशाही यदि स्वतंत्रता परिवर्तन विरोधी वर्ण विशेष या स्वार्थ विशेष की प्रतिनिधि है तो प्रजातंग सफल नहीं हो सकता। भारत की वर्तमान नौकरशाही में गतिशीलता का अभाव है। यह सामाजिक–राजनीतिक–आर्थिक परिवर्तन का सार्थक उपकरण नही बन पा रही है। भारतीय नौकरशाही की प्रमुख अभिवृत्रियो को निम्न प्रकार से समक्ष जा सकता है ;

भारतीय नौकरशाही का दृष्टिकोण ब्रिटिश शासन काल के दृष्टिकोण से समान ही है जनता से स्वयं को उच्चतर मानने की भावना नौकरशाही लाल फीताशाही' से ग्रस्त है। नौकरशाह फाइलों पर लम्बे नोट लिखते रहते है, समय निकलता जाता है। और फाइलों का अंवार लग जाते है। प्रशासनिक निर्णयो में देरी एवं वाधा डालने या टालने का यह अभिवृत्रि भारतीय नौकरशाही का आम चरित्र है।

भारतीय प्रसासनिक ढाँचे में केन्द्रीयकरण की अत्यधिक प्रवृत्ति है। प्रशासनिक संगठन सोपानात्मक है। भारत में केन्द्र चूकि अत्यधिक शक्तिशाली है अतः प्रायः महत्वपूर्ण निर्णय नयी दिल्ली से लिये जाते है। अधिकारी भी स्वयं निर्णय न लेकर उच्च अधिकारियो के पास भेज देते है।

भारतीय नौकरशाही की दृष्टिभूमि अधिकांस शहरी और उच्च मध्यम वर्गीय है। सीमित क्षेत्र से आने वाले में उच्च शासन वर्ग का हिस्सा बन जाते है एवं आश्चर्य पूर्ण तथ्य यह है कि ग्रामीण एवं निम्न मध्यवर्गीय दृष्टिभूमि से आने वाले अधिकारी भी नौकरशाही का हिस्सा बनते ही स्वयं को विशिष्ट जन मानने लगते है। हरवर्ट मौरसिन ने नौकरशाही को संसदीय प्रजातंत्र की कीमत मानते है जो उसे चुकानी पड़ती है।

भारत में प्रतिबद्ध नौकरशाही का तात्पर्य सविधान में वर्णित आदर्शो ओर सिद्धातों के प्रति प्रतिबद्ध नौकरशाही। वैसे तो भारत में नौकरशाही ब्रिटिश नौकरशाही की तरह तटस्थ है। लोकसेवक राजनीति में क्रियात्मक रूप से भाग नही ले सकते है। राजनीतिक मामलो में उनकी निष्पक्षता ओर तटस्थता पर बल दिया जाता है। कभी–कभी व्यवहार में इस प्रतिबद्धता का विपरीत प्रभाव भी दिखाई पड़ता है। राज्य सरकारे, शासन नेता आदि अपने स्वार्थो एवं हितों की पूर्त्रि हेतु अधिकारियो से सहयोग लेते है। तथा नौकरशाही भी अपने मनवांछित हितो यथा पोस्टिंग, प्रमोशन आदि के लिये सहज उपलब्ध यंत्र बन जाती है। दोनो एक दूसरे की हितपूर्ति का साधन बन जाते है। तथा राजनीतिक या दलीय या व्यक्तिगत प्रतिबद्धताओ एवं निष्ठाओं से निर्देशित होने लगते है। भारतीय नौकरशाही में यह अभिवृत्ति काफी व्यापक हो रही है। जो चिन्ता का विषय है।

वास्तव में इस प्रकार व्यवस्था विकसित की जानी चाहिये कि अधिकारी गण 'राजनीतिक दबावो से मुक्त रहकर अपने दायित्वो का निर्वाह स्वतत्रतापूर्वक कर सके'।

भारतीय नौकरशाही परम्परावादी एवं अनुदार वादी प्रवृत्रि का पोशका बन चुकी है। वे मन्त्रियो के उत्तरदायित्व के सुविधाजनक सिद्धान्त की आड़ में निरंतर अपनी शक्ति बढाते है तथा 'विभागीय साम्राज्य' निर्माण में मदद करते है।

नौकरशाही आधुनिक राज्य का अपरिहार्य तत्व है। भारतीय प्रशासन की प्रकृति में नौकरशाही के अच्छे और बुरे दोनो ही पक्ष मिलते है। नौकरशाही अपने आप में बुरी नही है। आवश्यकता इस बात की है उसे नियंत्रण में रखा जाये। जन सेवक के रूप यह अत्यधिक उपयोगी है परन्तु स्वामी बनते ही उद्देश्यो से भटक जाती है। नौकरशाही के दोनो के उन समाज का आर्थिक सामाजिक ढाँचा होता है। किसी देश की नौकरशाही वहा के समाज का प्रतिबिम्ब होती है। परम्परागत एवं सामंतवादी सोच वाली समाजो में नौकरशाही भी प्रभावित होती है।

भारत जैसे विकासशील देशो में नौकरशाही विकास का सबसे विश्वासनीय यंत्र है। उसका लोकतंत्रीकरण हो रहा है। सत्ता के विकेन्द्रीयकरण के साथ भारत में नौकरशाही को देश भी जनता की अपेक्षाओ, आशाओ और आकांक्षाओं को पूरा करना होगा। राज्य निर्माण में नौकरशाही की भूमिका का महत्व निर्विवाद है। राज्य की एकता अखण्डता को बनाये रखने, राजनीतिक स्थापित्व प्रदान करने एवं सामाजिक परिवर्तन को आगे बढाने में नौकरशाही की कार्यकारी भूमिका रहती है। पीटर एम. वाल्वो ने नौकरशाही की अनिवार्यता बतलाते हुये का है कि 'नौकरशाही प्रशासन को अधिक कुशल, विवेकशील निष्पक्ष तथा संगत बनाती है। नौकरशाही के बिना प्रशासन शून्य बन जायेगा।''[4]

भारतीय नौकरशाही को प्रक्रिया की औपचारिकताओ तथा नियमो एवं विनियमो के पालन में कठोरता की अपेक्षा परिणामों की सफलता पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए जैसा रेम्जे म्योर कहते है कि अधिकारी

नियमो और कानूनो की धुन में इतने पागल और अंधे हो जाते है कि उन्हे कार्यो की अनिवार्यता एवं महत्व का ध्यान ही नहीं रहता है।''[5]

इस प्रकार में उत्तरदायी राजनीतिक कार्यपालिका और जनसाधारण के मध्य अवरोध पैदा करते है। तथा अपनी शक्ति और साधन दोनो का दुरूपयोग करते है। आधुनिक उदारवादी लोकतन्त्रों में नौकरशाही प्रशासन का अविभाज्य और अभिन्न अंग बन गया है। प्रो0 के एम लाल ने नौकरशाही के बढते महत्व को इंगित किया है कि, ''विधायनी और न्यायिक कार्यो की प्रवृित्र अस्थायी होती है। लेकिन नौकरशाही सदैव अविरल रूप से कार्यरत रहती है। क्योकि इसका कार्यकाल स्थायी होता है। ये लोकनीति में विशिष्ट क्षेत्रो में विशेष तकनीकी योग्यता प्राप्त होते है और जनता से सदैव इनका सम्पर्क रहता है। अतः इनके पास ऐसी सूचनायें होता है। जो लोकनीति के निर्माण और उसे लागू करने के लिये अत्यन्त आवश्यक है।''[6]

"नौकरशाही को उसके परम्परागत नकारात्मक खॉचे से निकालना अत्यन्त आवश्यक है जहाँ नौकर ही शाह अर्थात स्वामी बन जाता है। और साधन ही साध्य बन जाता है। मैक्सवेवर"[7] नौकरशाही प्रशासन की ऐसी प्रणाली मानते है जो कौशल, निस्पक्षता और मानवता के अभाव से ग्रस्त है। पाल एच. एपलवी के अनुसार नौकरशाह 'अपनी श्रेणी, वर्ग उपाधि तथा नौकरी के स्थान के प्रति अत्याधिक रूप से जागरूक बने रहते है और जनता की सेवा के सम्बन्ध में अत्यन्त कम जागरूक रहते है।[8]

देश की जनता के मध्य नौकरशाही को लेकर प्रायः धारणा यही है कि ''जनता इसे एक भ्रष्ट लोकसेवा मानती है जो संचारूढ़ दल के इशारो पर चलती है।' इसीलिये जनहित के उद्देश्यो के प्रति नौकरशाही की प्रतिवद्धता से यह भय नही है कि जनतंत्रीय प्रणाली में हुकूमत बदल जाने पर क्या होगा? नौकरशाही के इन दोशो को दूरकर आधुनिक भारत की प्रशासनिक आवश्यकताओ के अनुकूल बनाने का प्रयास किया जाये तो भारतीय नौकरशाही कुशल और निष्पक्ष शासन की आधारशिला होगी।

शक्ति का केन्द्रीयकरण भ्रष्टाचार को बढावा देता है अतः शक्ति और सत्ता का विकेन्द्रीयकरण करके हम नौकरशाही को प्रभावशाली बना सकते है। नौकरशाही पर नियंत्रण को प्रभावशाली बनाया जाय चाहिए। आन्तरिक नियंत्रण जन नियंत्रण एवं ब्राह्य नियंत्रणों को अधिक अधिकार देने होगे। प्रशासनिक अभिकरणों को ज्यादा सक्रियता देने से प्रशासन के विरूद्ध शिकायतों मन्त्री का शीघ्र समाधान हो सकेगा। योग्य और कुशल राजनैतिक कार्यपालिका अर्थात मन्त्री नौकरशाही के हाथ की कठपुतली नही बने तथा उन पर उचित नियत्रण रख सके। समाज में सभी सामाजिक आर्थिक वर्गो का प्रतिनिधित्व लोक सेवाओं में होना चाहिऐ ताकि जनसंवाद, संवेदन शीलता एवं सामाजिक न्याय का बोध नौकरशाही को मिल सके। तथा जनता और प्रशासन के मध्य सौन्दर्यपूर्ण सम्बन्ध विकसित हो सके।

भारतीय नौकरशाही को राजनीतिक प्रभावों, भाई भतीजावाद एवं सिफारिश जैसी बुराइयों से दूर रखने के लिये अधिकारियों एवं कर्मचारियो की भर्ती योग्यता, कुशलता और अनुभव के आधार पर हो। नौकरशाही को जनता के प्रति जवाब देह बनाने की आवश्यकता है। इस सन्दर्भ में एपिलवी, ए. डी. गोरावाला आदि द्वारा दिये गये सुक्तव काफी उपयोगी तथा महत्वपूर्ण है।

प्रशासनिक सुधार आयोग 1966 की संस्तुतियों[9] में कार्मिक वर्ग प्रशासन से सम्बन्धित अपनी रिपोर्ट में वर्तमान व्यवस्था की कमियों की ओर ध्यान दिया तथा भारतीय प्रशासन सेवा के ढांचे के पुर्नगठन के लिये समुचित उपायों का सुझाव दिया। आयोग का मानना है कि 'सरकार के दायित्वो में जो परिवर्तन आया है तथा उसके कार्यो में जो विविधता आयी है उसने इन बातो को आवश्यक बना दिया है कि उच्च प्रशासन में विभिन्न प्रकार की कुशलताओं का समावेश किया जाये। नई परिस्थतियों की मांग है कि प्रशासन में उच्च स्तरो पर योग्य एवं समक्ष व्यक्ति पाये जाये ऐसे परिवर्तन केवल विशिष्ट प्रशिक्षण द्वारा ही लाया जा सकता है जो मूलभूत कार्यात्मक कुशलता ओर शैक्षिणक योग्यता पर आधारित हो।

भारतीय नौकरशाही अपनी आलोचनाओ के वावजूद भी राज्य के लिये अनिवार्य और उपयोगी है। अतः आवश्यकता इसमें अपेक्षित सुधार और प्रशिक्षण की है। भारत में नौकरशाही के पराम्परागत ढाँचे में सुधार और परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है तथा यह राज्य की आवश्यकताओं और जनअपेक्षाओ के अनुरूप ढलने की ओर अग्रसर है ताकि विकास प्रशासन का सबसे प्रभावशाली उपकरण के रूप में संविधान के आदर्शो और लक्ष्यों की क्रियान्वयन में महती भूमिका निभा सके।

सन्दर्भ सूची

1. एफ. एम. मार्क्स, एलीमेन्टस ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन; प्रेण्टिस हॉल ऑफ इडिण्या; 1965; पृ0 52।
2. आर्थर के0 डेविस; ब्यूरोक्रटिक पैटर्नस इन द नेवी ऑफिसर कॉमर्स सोशल फोर्सस, 1949 : पृ0 144–145।
3. एच. एच. गर्थ ओर सीराइट मिलन; फ्राम मैक्सवेवर, एसेजइन सोशयोलॉजी न्यूयार्क ; 1946।
4. प्रो. एम वाल्वा द डायनमिक्स ऑफ क्यरोक्रेटिक स्ट्रक्चर पृ0 96।
5. रेम्सेम्योर ; हाउ ब्रिट्रेन इज गव्रर्न ;पृ0 68।
6. प्रो0 के एस कल ; फब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन 1987 पृ0 319।
7. मैक्स वेवर ; ऐसेज ऑन सोशयोलोजी पृ0 196।
8. पॉल एच एपिलवी ; रिपोर्ट ओन ए सर्वे गवर्मेट ऑफ इण्डिया 1953; पृ0 11।
9. प्रशासनिक सुधार आयोग 1966।
10. मिनिस्ट्री ऑफ होम अफेयर्स ; इन्टरिम रिपोर्ट सवमिटेड वाई द एडमिनिस्ट्रटिव रिफॉर्मस।
11. जर्नल ऑफ कॉन्टीट्यूशनल एण्ड पार्लियामेटरी स्टडीज।
12. डा0 ओमप्रिया श्रीवास्तव : भारतीय संविधान शासन एवं राजनीति : सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाउस 1996।

गीता और कर्मवाद : एक अध्ययन

डॉ. केएम सरस्वती*

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.47)

अर्थात् मनुष्य को कर्म फल की इच्छा त्याग कर/उसे ईश्वर को समर्पित करते हुए अपने कर्म को निष्काम भाव से करना ही कर्मवाद का मूल सिद्धान्त है।

कर्मवाद भारतीय दर्शन की आधारशिला है। विभिन्न सम्प्रदाय कर्मवाद की आवश्यकता और उसके महत्त्व पर अलग -अलग मत देते हैं लेकिन लक्ष्य एक है, अर्थात् 'मोक्ष'। भागवत गीता धर्म - दर्शन का प्राचीन से आधुनिक चिन्तन का मार्ग प्रस्तुत करता है। यह कर्म का वह व्यवहारिक रुप है, जो जीवन के संपूर्ण पक्ष को प्रभावित करता है। यह सम्पूर्ण संसार कर्म आधारित है। प्रत्येक जीव कर्म में लगा हुआ है और उस कर्म का फल भी निर्धारित है उसी कर्म फल को भोगते हुए व्यक्ति संसार चक्र से जुड़ा हुआ है। मनुष्य को यह भ्रम अवश्य है कि इन कर्मों का संचालन कर्ता वह स्वयं है जबकि जीवात्मा द्वारा स्वयं कर्म सृजित नहीं है,ना ही वह कर्म करने के लिए किसी के प्रेरणा का स्रोत बनता है, न ही किसी भी प्रकार के कर्म फल की उत्पत्ति करता है। यह सभी प्रकृति के गुणों से संचालित है-

'*न कृतत्वम् न कर्माणी लोकस्य सृजति प्रभु:।*
न कर्म फल संयोगम स्वभावस्तु प्रवर्तते॥१४॥

(श्रीमद्भागवत गीता; भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट, मुंबई,1990, पृष्ठ संख्या-211.)

भागवत गीता भारतीय दर्शन का एक आधारभूत ग्रन्थ है, जो कर्म के सिद्धान्त को एक केन्द्रीय अवधारणा के रुप में प्रस्तुत करता है। भागवत गीता मानव प्रगति का मार्ग प्रस्तुत करता है। यह 'महाभारत' के 'भीष्म पर्व' का अंग है। इसकी रचना के सन्दर्भ में ज्ञात होता है कि कुरुक्षेत्र के युद्ध भूमि में कृष्ण ने अर्जुन को अपने कर्म के लिए अडिग रहने हेतु उपदेश दिया। उपरोक्त उपदेश/ शिक्षा भारतीय आध्यात्मिक, और दार्शनिक चिंतन की आधारशिला है। यह ग्रंथ जीवन के महत्तवपूर्ण पक्षों पर गूढ़ प्रकाश डालता है। यदि तर्क पूर्वक विचार किया जाए तो संभव नहीं कि युद्ध भूमि की विभीषिका में इतना सारगर्भित एवम् विस्तृत उपदेश दिया गया था। संभवतः यह एक क्रमिक और चिन्तनशील प्रक्रिया का परिणाम रहा। गीता की रचना के सन्दर्भ में कई विद्वानों के अपने अलग मत हैं।(*डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन; भागवत गीता, हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली,2001, पृष्ठ संख्या-16-17.*)

गीता - भक्ति, ज्ञान और कर्म का योग है और यही मानव जीवन का भी सम्पूर्ण सार है। '*कर्म*' का शाब्दिक अर्थ है क्रिया करना और यह क्रिया केवल शारीरिक कार्यों तक ही सीमित नहीं है बल्कि मानसिक और वाचिक कार्य भी इसके अन्तर्गत समाहित हैं। गीता केवल कर्मवाद के स्वरूप और उसके परिणाम की व्याख्या नहीं करता बल्कि कर्म से मुक्ति का मार्ग क्या है उसे किसप्रकार प्राप्त किया जा सकता है इसपर भी विचार प्रस्तुत करता है। स्वामी विवेकानंद ने गीता के कर्मयोग की व्याख्या करते हुए कर्मयोग शब्द का अर्थ केवल कार्य माना है। इस संसार में व्याप्त समस्त ज्ञान मनुष्य के मन में विराजमान हैं जो इसपर लगे आवरण के धीरे -धीरे हटने पर स्पष्ट होता है।(*स्वामी विवेकानन्द ; कर्मयोग, संपादक - स्वामी व्योमरूपानंद, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 1990, पृष्ठ संख्या - 3.*)

प्रत्येक जीव कर्म के लिए बाध्य है। प्रकृति में व्याप्त गुण (रजो, तमो, सतोगुण) मनुष्य को विभिन्न प्रकार की क्रिया करने के लिए बाध्य करते हैं। जिस गुण की प्रधानता जिस जीव में होगी वह जीव उसी गुण से संबंधित क्रिया करेगा। वास्तव में कर्म ही निर्णय करता है कि वास्ताविक रुप में हम क्या ग्रहण कर सकते हैं, अर्थात् अपने प्राकृतिक गुण के आधार पर ही कोई व्यक्ति कर्म करता है और उस कर्म के अनुसार गुण - अवगुण ज्ञान प्राप्त करता है। हमारे जीवन की वर्तमान अवस्था हमारे कर्म का ही प्रतिफल है।(*स्वामी विवेकानंद; कर्मयोग, वही, पृष्ठ संख्या- 7.*)

कर्म के तीन प्रकार हैं - *संचित कर्म,* यह पूर्व जन्म में किए कर्मों का संचित भण्डार है। इन कर्मों के संस्कार मनुष्य को जन्म देने के लिए बाध्य होते हैं।

* असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, पुरातत्व, एवम् संस्कृति विभाग, एम. एल. एस. एम. कॉलेज, दरभंगा, बिहार।

प्रारब्ध कर्म - यह संचित कर्मों का वह भाग है जो वर्तमान जन्म में फल देने के लिए तैयार है। उसे व्यक्ति भोगता है और उसमें बदलाव नहीं किया जा सकता।

क्रियमाण कर्म - वह कर्म जो व्यक्ति इस जीवन में रहते हुए कर्म करता है। इन कर्मों के संस्कार भविष्य के कर्म से जुड़ते हैं, और भाग्यफल के रुप में उनका निर्धारण होता है।

इसी तरह कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए आत्मा और परमाणुओं के सम्पर्क को आश्रव कहा है, संपर्क में आने वाले वो परमाणु ही जैन धर्म/ दर्शन में कर्म हैं। इसका कारण है कि उनका आगमन ही शारीरिक, मानसिक और वाचिक होता है। इन कर्म परमाणुओं में जिस प्रकृति की या परिणाम देने वाली शक्तियां आती हैं उसको कर्म स्थिति की संज्ञा दी गई है। इन कर्मों के आधार पर जैन धर्म 5 प्रकार के बंधन की बात करता है जिसके लिए मन, वचन और काय की प्रवृत्तियां उत्तरदायी हैं। (*रविन्द्र नाथ मिश्र; जैन कर्म सिद्धान्त: उद्भव एवम् विकास, पार्श्वनाथ शोध पीठ, वाराणसी, 1993, 224- 230.*) गीता के अनुसार कर्म स्वयं में बन्धन का कारण नहीं हैं बल्कि उन कर्मों के प्रति आसक्ति और मनुष्य को कर्म बंधन में बांधती है, और मनुष्य जन्म- मरण से बंध जाता है। इसलिए मनुष्य को प्रयास करना चाहिए कि मनुष्य कर्म बन्धन से मुक्त होकर कार्य करे अर्थात् 'फल की इच्छा से रहित कर्म'।

कर्म योग के विभिन्न सिद्धान्त हैं - इसमें प्रमुख है कर्तव्य पालन। यह स्पष्ट है कि कर्म दुःख का और कर्म फल इच्छा से बंधन का भी कारण है। लेकिन कार्य करने से प्रकृति नियत सारी गतिविधियां जड़ हो जायेंगी, अतः कर्म नहीं करने की अपेक्षा कर्म करना अधिक श्रेष्ठ है।(*हृदयनारायण दीक्षित, भागवत गीता, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, 2017, पृष्ठ संख्या -104*)

श्री कृष्ण कहते हैं कि मनुष्य को अपने प्रकृति गुण के अनुसार नियत कर्म करना चाहिएक्योंकि बिना कर्म के शरीर/भौतिक गतिविधियों का निर्वाह भी संभव नहीं है-

नियतम कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मण :।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मण:॥८॥

गीता का कर्मवाद विकसित और प्रज्ञ समाज के जीवन दर्शन की आधारशिला है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत और सामाजिक कर्तव्यों का पालन ईमानदारी पूर्वक करना चाहिए। सामाजिक वर्ण और आश्रम के अनुसार कर्म पर विशेष बल दिया गया है। गीता में कर्म करने के उद्देश्य के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानंद धीरज पूर्ण तरीके से निः स्वार्थ पूर्ण कर्म करने पर अधिक बल देते हैं, अर्थात् उसका निजी फल क्या होगा उसके विषय में सोचे बिना स्वार्थ रहित कर्म व्यक्ति को महान बनाता है। यह प्रक्रिया कर्म अभ्यास से संभव है(*स्वामी विवेकानन्द; कर्मवाद, वही, पृष्ठ संख्या -10-11*) ।

अपने कर्तव्य के प्रति व्यक्ति को हर संभव प्रयास करना चाहिए। कभी -कभी व्यक्ति शारीरिक रुप से उपस्थित नहीं होकर भी अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है। इसके लिए मछली का उदाहरण लिया जा सकता है कि वह अपने बच्चे का पालन आंखों से देखभाल करके कर लेती है यह उसके प्रकृति का गुण है। कछुआ जल में होकर भी, स्थल में पड़े अपने बच्चों का विचार उनके बड़े होने तक करता है यही उसका पालन करने का तरीका है। भक्ति विषयक सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि मनुष्य किस प्रकार अष्टांग योगाभ्यास करकेअपने क्रोध, मोह, इंद्रियों और बुद्धि पर नियंत्रण रखकर अपने कर्म क्षेत्र में ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव कर सकता है और मुक्ति पा सकता है। (*श्रीमद्भागवत गीता, भक्तिवेदांत बुक ट्रस्ट, मुंबई, 1990, अध्याय ५, पृष्ठ संख्या-222.*)

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरेभ्रुवो:।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतचारिणों॥२७॥
यतेंद्रियमनोबुद्धिमुनिर्मोक्षपारायण:
विगतेच्छाभयक्रोधो य: सदा मुक्त एव स:॥२८॥

गीता मनुष्य को अपने निर्धारित कर्तव्यों का बोध कराती है कि किसी भी परिस्थिति में व्यक्ति को अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं होना चाहिए। इस सन्दर्भ में स्वामी विवेकानंद गीता के कर्म वाद के सम्यक तत्व का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि - कर्म हमारे संबंधों के प्रति सम्यक चेतना को जागृत करने में सहायक हैं, जैसे प्रत्येक व्यक्ति को अपने माता पिता के प्रति ईमानदार होना चाहिए उन्हें प्रसन्न करने के लिए यदि कोई कष्ट सहना पड़े तो भी निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए(*विवेकानंद; वही, पृष्ठ - 26*) । यह हमारे भारतीय दर्शन की विशेषता रही है कि प्रत्येक जीव के प्रति सत्कार/सम्मान की भावना से मनुष्य को अग्रसर होने का उपदेश दिया। इसी कर्त्तव्य बोध का दर्शन याज्ञवल्क्य स्मृति(*याज्ञवल्क्य स्मृति; व्याख्याकार- थानेश चंद्र उप्रेती, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, 2001, पृष्ठ 74.*) में होता है -

"सत्कृत्य भिक्षवे भिक्षा दातव्या संव्रताय च।
भोजायेचागतान काले सखि संबंधिवानधवान।।१०८।।"

जीवन में बुद्धि का बहुत महत्त्व है क्योंकि इसके माध्यम से ही अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति सम्भव हो जाती है। भगवद्गीता में दो निष्ठाओं का वर्णन किया गया है। इसमें दूसरी निष्ठा का संबंध कर्मवाद से है(*हृदयनारायण; भगवद्गीता, वही, पृष्ठ संख्या-103*)। बुद्धि के द्वारा इंद्रिय संयम किया जा सकता है क्योंकि हमारी भावनात्मक गतिविधियों पर इनका विशेष प्रभाव होता है इनके ऊपर नियंत्रण नहीं होने से पापकर्म, और एकाग्रता भंग होने जैसी बुरी क्रियाएं संभव हो जाती हैं (*हृदयनारायण दीक्षित, वही, पृष्ठ संख्या- 113.)।*

हम जो कर्म करते हैं यह आवश्यक नहीं कि वह प्रत्येक देश काल में अपना समान महत्त्व रखें। विवेकानंद के अनुसार कर्म की अवधारणा देश- काल के अनुसार भिन्न -भिन्न होती है। एक कर्म, एक देश -काल में श्रेष्ठ तो दूसरे देश काल में निंदात्मक हो सकता है। एक ज्ञानी व्यक्ति मानता है कि कर्म हमारी मानसिक स्थिति और अन्य परिस्थितियों में भिन्न- भिन्न हो सकता है। लेकिन अज्ञानी व्यक्ति इसप्रकार सोचने में अक्षम होता है। (*विवेकानन्द; वही, पृष्ठ- 15-16.*) इस संसार में जीवों में समता संभव नहीं और इस विभिन्नता का कारण है मस्तिष्क की भिन्नता । यह प्रत्येक मनुष्य में भिन्न है जो उसके सोचने और व्यवहार के स्तर को प्रभावित करता है।(*विवेकानंद; वही, पृष्ठ - 137.*) गीता निष्काम कर्म का उपदेश देती है यही कर्मवाद का मूल मंत्र है। कि मनुष्य के कर्म फल की इच्छा उसे दुःखी रखती है और उसके मोक्ष में भी बाधक होती है। प्रत्येक मनुष्य को अपने लिए नियत कर्म करना चाहिए । जिस प्रकार राजा जनक आदि ने अपने नियत कर्म को किया। महापुरुष जो आचरण करते हैं सामान्य मनुष्य उसी का अनुकरण करता है (*श्रीमद्भागवत गीता; वही , श्लोक २०-२१, पृष्ठ १३९.)* । चूंकि प्राचीन भारतीय समाज में पुरोहित वर्ग समाज का मार्गदर्शन किया करते थे अतः मनुस्मृति ब्राह्मणों को अपने नियत कर्म से विपरीत अध्ययन करने पर शुद्रत्व को प्राप्त करने का उल्लेख है। (*मनुस्मृति; अनुवाद - डॉ . प्रदीप प्रलयंकर,प्रथम भाग, द्वितीयो अध्याय, न्यू भारती बुक कार्पोरेशन, दिल्ली, पृष्ठ 180.)*

इस तरह हमें निष्काम कर्म करने की प्रेरणा से प्रत्येक कार्य को करने हेतु सदैव तत्पर रहना चाहिए। गीता का कर्मवाद एक विस्तृत आधार लिए है जिसकी जितनी भी गूढ़ व्याख्या का प्रयत्न किया जाए कम है।

निष्कर्ष - गीता मनुष्य को वर्तमान जीवन समस्याओं के प्रति व्याप्त निराशा भाव से उठाने का कार्य करता है। यह हमारे जीवन के सभी पहलुओं के प्रश्नों का उत्तर देता है। गीता युवा वर्ग को कर्म की शिक्षा देती है प्रत्येक मनुष्य को आलस्य त्याग कर निष्काम कर्म करने तथा सतत नियम का पालन करने की वकालत करती है।गीता पढ़ने के पश्चात् प्रतित होता है कि - प्रत्येक व्यक्ति को गीता अवश्य पढ़ना चाहिए दार्शनिक दृष्टिकोण से ही नहीं यह मनोवैज्ञानिक, और सामाजिक दृष्टिकोण से भी विशेष महत्त्व रखता है। गीता सामाजिक, वैश्विक समरसता को प्रस्तुत करती है यही गीता के कर्मवाद का मूल सार है –

"मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्त: संगवर्जित:।
निर्वैर: सर्वभूतेषु य: स मामेती पाण्डव।।५५।।"

(अध्याय ११)

पोषक तत्वों की कमी से बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास पर पड़ने वाले प्रभाव

डॉ. अन्नू कुमारी*

कुपोषण का बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक विकास पर अत्यंत नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ऐसे बच्चे सामान्य बच्चों की तुलना में लंबाई, वजन आदि में कम होते हैं तथा उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता भी कम हो जाती है, जिससे वे संक्रमण जनित रोगों की चपेट में शीघ्र आ जाते हैं। उनके ऊतकों की कार्यक्षमता, विशेषकर आंतों की, घट जाती है तथा यकृत क्षतिग्रस्त हो सकता है। शरीर में विषैले पदार्थों का प्रभाव भी अधिक तीव्रता से होता है और ब्लड प्रेशर जैसे रोगों की संभावना बढ़ जाती है।

इसके अतिरिक्त कुपोषण सीखने की क्षमता, बुद्धि, स्मरणशक्ति, ग्रहणशक्ति, सूक्ष्म विश्लेषण, वाक्शक्ति तथा भावनात्मक संतुलन को भी प्रभावित करता है। जब बच्चों को पर्याप्त मात्रा में संतुलित आहार नहीं मिलता है, तो शरीर को आवश्यक पोषक तत्व नहीं मिल पाते, जिससे पोषक तत्वों की कमी से संबंधित अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

कुपोषण के कारण प्रोटीन–एनर्जी मालन्यूट्रिशन (PEM), विटामिन A और B की कमी, आयरन की कमी से एनीमिया जैसी समस्याएं होती हैं। PEM के अंतर्गत क्वाशियोरकर तब होता है जब प्रोटीन की कमी होती है, जबकि मरासमस तब होता है जब प्रोटीन एवं ऊर्जा दोनों की कमी हो। ये दोनों रोग मुख्यतः बच्चों में पाए जाते हैं। विटामिन A की कमी से नेत्र एवं दृष्टि प्रभावित होती है, और यह बच्चों की वृद्धि और विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है।

दूध पीते बच्चों को आमतौर पर यह कमी नहीं होती, लेकिन दूध छुड़ाने के बाद यदि उन्हें पूरक आहार न दिया जाए, तो यह समस्या उत्पन्न हो सकती है। आयरन की कमी से होने वाला एनीमिया विशेषकर गरीब महिलाओं में पाया जाता है, इसलिए सरकार उन्हें आयरन एवं फॉलिक एसिड की गोलियाँ निःशुल्क वितरित करती है।

विटामिन B–कॉम्प्लेक्स की कमी से जीभ और होठों पर घाव हो जाते हैं। चावल को कूटते समय कई आवश्यक विटामिन नष्ट हो जाते हैं, जिससे उन पर निर्भर लोगों में यह रोग अधिक देखा गया है। बेरी–बेरी रोग भी चावल आधारित आहार लेने वालों में होता है, जबकि गेहूं और आटे से बनी चीजें इस समस्या को कुछ हद तक दूर कर सकती हैं।

राइबोफ्लेविन की कमी से त्वचा में दरारें पड़ जाती हैं। नायसिन की कमी से पेलेग्रा रोग हो जाता है, जो विशेषकर ज्वार खाने वाले क्षेत्रों में देखने को मिलता है। आयोडीन की कमी से घेघा रोग हो सकता है। इसकी रोकथाम के लिए भारत सरकार ने यूनिसेफ के सहयोग से आयोडीन युक्त नमक का उत्पादन एवं वितरण शुरू किया है, ताकि प्रभावित क्षेत्रों में यह उपलब्ध कराया जा सके। आहार में आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति द्वारा इन सभी रोगों की रोकथाम संभव है।

कुपोषण के नैदानिक लक्षण मुख्यतः शारीरिक कार्यों और कोशिकीय क्रियाओं में बदलाव के रूप में प्रकट होते हैं। शरीर के तरल पदार्थों की सामान्य संरचना भी प्रभावित हो जाती है। चूंकि अपर्याप्त पोषण सीधे तौर पर बच्चों की वृद्धि दर और शरीर की संरचना पर असर डालता है, इसलिए पोषण स्तर का आकलन करने के लिए उनकी लंबाई, वजन, शारीरिक हावभाव आदि का विश्लेषण किया जाता है।

उदाहरण स्वरूप, यदि किसी दो वर्ष के बच्चे का वजन केवल 8 किलोग्राम है, जबकि सामान्य वजन लगभग 12 किलोग्राम होना चाहिए, तो यह स्पष्ट संकेत है कि बच्चा कुपोषित है। स्वस्थ बच्चे की छाती चौड़ी और पेट चपटा होता है, जबकि कुपोषित बच्चों में पेट और छाती उभरे हुए दिखाई देते हैं। सिर का आकार भी असामान्य हो सकता है। इसके अतिरिक्त आंखें, नाखून, त्वचा, बाल, जीभ, मुँह और मांसपेशियों की स्थिति से भी कुपोषण की पहचान की जा सकती है।

इस प्रकार, कुपोषण का प्रभाव केवल शारीरिक विकास तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि यह मानसिक विकास, बौद्धिक क्षमता, स्मरण शक्ति और सीखने की क्षमता को भी गंभीर रूप से प्रभावित करता है। अतः

* सहायक प्रध्यापक, आर० एल० एस० आर० एम० डी० कालेज, शिवाजी नगर समस्तीपुर बिहार

समय रहते संतुलित आहार और आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति के माध्यम से बच्चों के संपूर्ण विकास को सुनिश्चित किया जाना अत्यंत आवश्यक है।

यह जरूरी नहीं है कि निम्न वर्णित सभी लक्षण सभी अवस्थाओं में तथा सभी व्यक्तियों में समान ही हों। सर्वसाधारण के लिए, इन लक्षणों की जानकारी आवश्यक है क्योंकि इनके सहारे वह समझ सकता है कि बच्चों में, पोषक तत्व संबंधी आवश्यकताओं की समुचित पूर्ति नहीं हो रही है। समय पर जानकारी हो जाने से उपचार भी जल्दी और सहज हो जाता है। सामान्य लक्षणों को देखकर शीघ्र चिकित्सक के परामर्श से पता लगाकर उपचार आरंभ किया जा सकता है। यह लक्षण इस प्रकार है–

1. बाल :

बालों में चमक का कम होना, बालों का रूखा होना, बाल का गिरना, कमजोर पड़ना, आसानी से उखड़ जाना आदि ।

2. चेहरा :

चेहरा सूख जाता है, चकत्ते और लाल धब्बे पड़ जाते हैं, त्वचा पर सूजन, नाक और मुंह में सूजन हो जाती है।

3. नेत्र :

आहार की त्रुटि के प्रति आंखें बहुत संवेदनशील होती हैं। आंखों के भीतर की परत अत्यधिक सूख जाने से फटी–फटी सी और भृंगीकृत होकर घूमी हुई सी हो जाती है, क्योंकि नेत्र ग्रंथियों का स्त्राव सूख जाता है। कॉर्निया में सूजन हो जाती है। वह झुर्रीदार और निष्प्राण हो जाती है। आंखों की स्वभाविक तरलता और प्रभा समाप्त हो जाती है। कॉर्निया में रक्तकोशिकाओं के गुच्छे जमा हो जाते हैं। तेज रोशनी में आंखें झपका कर बंद कर लेने का स्वभाव अथवा फोटोफोबिया हो जाता है।

4. आष्ठ :

कीलोसिस अर्थात होठों और मुंह के दोनों कोनों पर प्रतिकार हो जाता है। वे फटे और घायल से हो जाते हैं। मूंह की श्लेष्मा में सूजन हो जाती है जिससे होठों में चटकने और पपड़ी पड़ने लगती है। सूजन भी हो जाती है जिससे होंठ फूल जाते हैं।

5. जिह्वा :

जिह्वा में सूजन हो जाती है। वह मोटी हो जाती है और चिकनी और चमकदार हो जाती है। एडिमा हो जाता है जिसमें सेलो के मध्य के स्थानों में और असामान्य मात्रा में तरल जमा हो जाता है। घाव होने पर पीड़ा होती है स्वाद संज्ञा विलुप्त हो जाती है। नायसिन की कमी में जिह्वा का रंग मटमैला लाली लिए हो जाता है। जिह्वा पर चटकने के चिन्ह दिखाई देने लगते हैं।

6. दांत :

दांत निर्बल पड़ने लगते हैं। दांतो का रंग भी बदल जाता है।

7. मसूड़ :

मसूड़े फूल जाते हैं और उनमें से रक्त आने लगता है। नरम भी पड़ जाते हैं। दबाने से खून निकलने लगता है।

8. त्वचा :

त्वचा और आंखें असामान्य ढंग से सूख जाती है। त्वचा पर चकत्ते पड़ जाते हैं। त्वचा चटकने लगती है। डर्मेटाइटिस तथा अन्य लक्षण इसके कारण हो जाते हैं। ये सब लक्षण रोगी की पीठ पर, चेहरे पर, ऊपर वाले होठों के ऊपर तथा अन्य कुछ अंगों पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगते हैं। त्वचा ढीली, पीली, ठंडी, रुक्ष, धब्बेदार और परतदार हो जाती है। उग्र प्रोटीन कैलोरी मालनूट्रिशन के कारण होने वाली क्वाशियोरकर में भी ऐसे ही लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

9. ग्रंथियां :

पेरोटिड तथा थायराइड ग्रंथियों कुपोषण के कारण बढ़ जाती है।

10. अस्थियाँ और पेशियाँ :

अस्थियों की असमानता, कलाई के मोटे होने से, फ्सलियों के झुकने से, अन्य अस्थियों के मुड़ने से तथा बड़ों में ओस्टोमलेशिया अर्थात अस्थियों के नरम पड़ जाने के रूप में परिलक्षित होने लगते हैं। पेशियों का क्षय होने लगता है। विटामिन श्ई का अभाव भी हो जाता है। हाथ पैर में सूजन हो जाती है। एड़ियों में पानी भर जाता है।

11. तंत्रिका तंत्र तथा हृदय संबंधी असमान्यतः पेशियों के संचालन में निर्बलता, मानसिक संभ्रम तथा संवेदनशीलता में कमी आ जाती है।
12. पाचन तंत्र में अव्यवस्था आ जाती है, फलतः निरंतर दस्त आने लगते हैं।

विकसित राष्ट्रों की अपेक्षा विकासशील देशों में कुपोषण की समस्या विकराल है। इसका प्रमुख कारण है गरीबी। धन के अभाव में गरीब लोग अपने बच्चों को पर्याप्त, पौष्टिक चीजें जैसे दूध, फल, घी इत्यादि नहीं खिला पाते हैं। लेकिन गरीबी के साथ ही एक बड़ा कारण अज्ञानता और निरक्षरता भी है। गांव, देहात में रहने वाले लोगों को संतुलित भोजन के बारे में जानकारी नहीं होती, इस कारण वे अपने बच्चों के भोजन में आवश्यक वस्तुओं का समावेश नहीं करते, इस कारण उनके बच्चे कुपोषण के शिकार हो जाते हैं। आज के समय में कुपोषण अंतरराष्ट्रीय समुदाय के लिए चिंता का विषय बन गया है। यहां तक कि विश्व बैंक ने इसकी तुलना श्ब्लैकडेथश नामक महामारी से की है। जिसने 18 वीं सदी में यूरोप की जनसंख्या के एक बड़े हिस्से को निगल लिया था। कुपोषण बहुत सारे सामाजिक–राजनैतिक कारणों का परिणाम है। जब भूख और गरीबी राजनैतिक एजेंडा की प्राथमिकता नहीं होती तो बड़ी तादाद में कुपोषण सतह पर उभरता है। भारत में कुपोषण उसके पड़ोसी अधिक गरीब और कम विकसित पड़ोसियों जैसे बांग्लादेश और नेपाल से भी अधिक है। बांग्लादेश में शिशु मृत्यु दर 48 प्रति हजार है. जबकि इसकी तुलना में भारत में 67 प्रति हजार है। यहां तक की उप सहारा अफ्रीकी देशों से भी अधिक है। भारत में कुपोषण का दर लगभग 55 प्रतिषत है जबकि उप सहारा अफ्रीका में यह 27 प्रतिषत के आसपास है।

कुपोषण के मायने होते हैं आयु और शरीर के अनुरूप पर्याप्त शारीरिक विकास ना होना, एक स्तर के बाद यह मानसिक विकास की प्रक्रिया को भी अवरुद्ध करने लगता है। बहुत छोटे बच्चों खासतौर पर उत्तर बाल्यावस्था के बच्चों को भोजन के जरिए पर्याप्त पोषण आहार न मिलने के कारण उनमें कुपोषण की समस्या जन्म ले लेती है। इसके परिणाम स्वरूप बच्चों में रोग प्रतिरोधक क्षमता का हास होता है और छोटी–छोटी बीमारियां उनकी मृत्यु का कारण बन जाती है।

राष्ट्रीय पोषण संस्थान द्वारा किए गए अध्ययन से पता चलता है कि भारत में कुपोषण के शिकार बच्चे ज्यादा है और यहां बच्चों की रोग प्रतिरोधक क्षमता बहुत क्षीण हो चुकी है। कुपोषित बच्चों पर दस्त का प्रकोप सामान्य से चार गुना अधिक होता है। अध्ययनों से पता चला है कि उत्तर बाल्यावस्था के कुल मरीजों में से करीब तीन चौथाई की रुग्णता का कारण कुपोषण या उससे जुड़ी अन्य दिक्कतें हो सकती है। कुपोषण इस प्रकार एक जटिल समस्या है।

कुपोषण वास्तव में घरेलू खाद्य असुरक्षा का सीधा परिणाम है। सामान्य रूप में खाद्य सुरक्षा का अर्थ है सब तक खाद्य की पहुंच, हर समय खाद्य की पहुंच और सक्रिय और स्वस्थ जीवन के लिए पर्याप्त खाद्य। जब इनमें से एक या सारे घटक कम हो जाते हैं तो परिवार खाद्य असुरक्षा में डूब जाते हैं। खाद्य सुरक्षा सरकार की नीतियों और प्राथमिकताओं का पर निर्भर करती है। भारत में सरकार खाद्यान्न के ढेर पर बैठती है। पर उपयुक्त नीतियों के अभाव में यह जरूरतमंदों तक नहीं पहुंच पाता है। अनाज भंडारण के अभाव में सड़ता है, चूहों द्वारा नष्ट होता है यह समुद्रों में डुबाया जाता है पर जनसंख्या का बड़ा भाग भूखे पेट सोता है।

यह सिद्ध हो चुका है कि पर्याप्त भोजन नहीं मिलने पर शरीर के रोगों से लड़ने की क्षमता कम हो जाती है और वह शीघ्र ही बीमारियों की चपेट में आ जाता है। कुपोषण के कारण एक दुष्चक्र शुरू हो जाता है। जो बच्चे के चंगुल में फंस जाते हैं वह कई तरह के संक्रामक रोगों की चपेट में आ जाते हैं।

संदर्भ

1. कपूर एवं गोयल, चाइल्ड न्यूट्रीशन रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 2003
2. परमिंदर कौर भंडारी, आहार विज्ञान, विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2010
3. बृन्दा सिंह, आहार विज्ञान एवं पोषण, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2010
4. वर्मा एवं पांडेय, आधुनिक गृह विज्ञान आहार एवं पोषण, साइंटिफिक बुक कंपनी, 2004
5. नारायण, सुधा, आहार नियोजन, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 2012

राजपूताना का इतिहास तथा ''ख्यात साहित्य''

जितेन्द्र कुमार*
प्रो. डॉ. शहरयार अली**

इतिहास व्यक्ति के विकास का एक सतत् अध्ययन है। यह समाज से प्रत्यक्ष रूप से जुडा विषय है एवं साहित्य समाज का दर्पण है। समाज के विभिन्न आयाम इतिहास के द्वारा ही अतीत से परिवर्तित होकर वर्तमान और भविष्य के विकास की दशा और दिशा निर्धारित करते है इतिहास घटनाओं को सिलसिले वार प्रस्तुत करता है और साहित्य उनकी व्याख्या करता है। इतिहास संस्कृति को व्यक्त करता है तो साहित्य इसे अभिव्यक्ति प्रदान करता है। अतीत के किसी भी तथ्य, तत्व एवं प्रकृति के वर्णन, विवरण, विवेचन और विश्लेषण को जोकि काल विशेष या काल क्रम की दृष्टि से किया गया हो इतिहास कहा जा सकता है। इतिहास का लक्ष्य सदा अतीत की व्याख्या करते हुये विवेच्य वस्तु के क्रमबद्ध विकास को स्पष्ट करना होता है किसी भी समाज की सही स्थिति का चित्रण साहित्य एव इतिहास दोनो मिलकर तैयार करते है।

इतिहास लेखन के लिये सर्वाधिक आवश्यक उसके स्रोत्रों का उचित एवं सकारात्मक दृष्टिकोण से अध्ययन करना। यदि ये स्रोत्रों उसी काल के साहित्य हो तो यह एक विशिष्ट अध्ययन हो जायेगा। इतिहास लेखन के उद्देश्य से लिखे गये समकालीन ग्रंथों को विशलेषण न सिर्फ इतिहास की नई दिशा तय करता है बल्कि तत्कालीन अवधारणाओं का प्रमाणन एवं संशोधन जैसे महत्वपूर्ण कार्य भी सम्पादित करता है। अतः स्थानीय भाषा एवं साहित्य का अध्ययन उस क्षेत्र विशेष सम्बन्धी इतिहास लेखन की प्राथमिक आवश्यकता होती है।

ऐतिहासिक आधार पर भारत में इतिहास लेखन की परम्परा काफी पुरानी रही है परन्तु जिस इतिहास की वर्तमान में परिभाषा प्रचलित है जो आधुनिक मानदण्डों के आधार पर निर्धारित है, इसे पश्चिम से आयातित अवधारणा माना जाता है। इसके अनुसार इतिहास लेखन यहाँ पश्चात कालीन घटना थी। मध्यकाल के आगमन तक सभी भागों में स्थानीय बोलियों व भाषाओं का विकास हुआ तथा उन्होंने अपने अपने क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करना शुरू कर दिया तभी से साहित्य एवं साहित्यिक इहिास का विकास आरम्भ माना गया। मध्य पश्चिमी भारत के एक बड़े भू भाग को इसी मध्य काल में राजपूताना के नाम से जाना गया। साहित्यिक इतिहास लेखन में इस क्षेत्र का प्रतिनिधित्व उस समय की राजस्थानी भाषा कर रही थी। राजस्थानी भाषा में इतिहास लेखन की विकास यात्रा की शुरूआत नौवीं दसवीं सदी के आस पास हो चुकी थी। कालान्तर में यह भाषा और इतिहास लेखन लगातार विकसित हुआ। राजस्थानीय साहित्य की इतिहास संदर्भित विद्या का विकास सोलहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ। जिसे इस क्षेत्र के रचना कारों ने आगे चलकर 'ख्यात' नाम दिया।

'ख्यात' शाब्दिक अर्थ :– यह शब्द मूलतः संस्कृत भाषा से लिया गया शब्द था। ख्या धातु में त्त प्रत्यय जुडने से ख्यात शब्द बना है। ख्यात शब्द का अर्थ भूतकाल की घटनाओं का वर्णन तथा भूतकाल को ज्ञात करना है। राजपूताना और ख्यात साहित्य में 'ख्यात' शब्द का प्रयोग एक महत्वपूर्ण इतिहास लेखन परम्परा को दर्शाता है। 'ख्यात का अर्थ है 'ख्याति' या 'प्रसिद्ध' और यह शब्द उन ऐतिहासिक ग्रंथों के लिये प्रयोग किया जाता था जो विशेष रूप से राजपूत शासकों और उनके परिवारों के इतिहास गौरव और महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन करते थे। ख्यात चारणों द्वारा राजपूताने में विभिन्न दरवारों में सभाओं में गाये जाते थे और इनका उद्देश्य राजपूतों और चारणों दोनों की महनता को व्यक्त करना था। ख्यात मुख्य रूप से मौखिक विवरण थे जिन्हे सत्रहवीं शताब्दी तक पाठ्य रूप में प्रस्तुत किया गया था। ख्यातों को समकालीन ऐतिहासिक दस्तावेज माना गया है।

ख्यात लेखन काल :– कालक्रम की दृष्टि से ख्यात लेखन का सर्वधिक प्राचीन उल्लेख आठवी, नौवीं सदी माना जाता है। कभी मुवरी की एक रचना के श्लोक के विवरण के अनुसार यह चारणों के गीतों के रूप में प्रचलित थे। ख्यात का स्वरूप क्रमिक विकास से अनुसार बदलता रहा है। सोलहवीं सदी तक आते आते

* शोधार्थी, इतिहास विभाग, एस0 आर0 के0 पी0जी0 कॉलेज, फिरोजाबाद
** विभागाध्यक्ष (इतिहास), एस0 आर0 के0 पी0जी0 कॉलेज, फिरोजाबाद

ख्यातों के स्वरूप में पूर्ण परिवर्तन हो चुका था। अब ख्यात में शासकों की वंशावली और विशिष्ट उपलब्धियाँ अन्य महत्वपूर्ण जानकारियों को शामिल किया जाने लगा। इस प्रकार इनका स्वरूप परिष्कृत होता जाता है। और वंशावलियों के साथ जुड़ने वाला विवरण विस्तार लेने लगता है तथा ख्यातों का स्वरूप बड़ा होने लगता है। इस काल में जब ख्यातें पुर्न परिभाषित होने लगी तथा स्थानीय राजपूत साहित्य भी अपने चरम पर था, ख्यात साहित्य भी इस विकास का ही एक हिस्सा था। अतः निशचित विषय वस्तु के साथ उसके स्वरूप में निरन्तर परिवर्तन होते रहे। गद्य एवं पद्य की विभिन्न विधाओं का उपयोग इहिास विषयक सामगग्री को विभिन्न विधाओं में लिखकर संग्रह का नाम 'ख्यात' दे दिया जाता। आगे चलकर इसकी विषय वस्तु पर अरबी, फारसी, भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा और उनकी ही तरह स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में भी इनकी रचना होने लगी। अकबर काल में इतिहास लेखन में ऐतिहासिक विवरणों को प्राप्त करने में ख्यातों का विशेष महत्व था।

ऐतिहासिकता और ख्यात साहित्य :– परम्पराओं के आधार पर एक सदी से भी अधिक समय में ख्यात साहित्य का इतिहास लेखन में प्रयोग हो रहा है लेकिन फिर भी इसकी ऐतिहासिकता पर प्रश्न चिन्ह उतने ही गहरे है जितने कि आरम्भ में थे। इस स्रोत्रों को सदा अप्रमाणित माना जाता रहा है और प्रयोग के समय विशिष्ट बचाव का सिद्धान्त दिया जाता है। ख्यात साहित्य पर लगे आक्षेपों व उनका तर्कपूर्ण विशलेषण भी किया गया है। चारण व भाट राज दरबार के आश्रित कवि व रचना कार हुआ करते थे। जिनका प्रमुख कार्य शासक का एवं उसके वंश का यशोंगान करना था जोकि स्वाभाविक रूप से अति सयोक्ति पूर्ण हुआ करते थे। इनकी रचनओं से प्रसंन्न होकर शासकगण उन्हे आजीविका व पुरस्कार प्रदान किया करते थे। अतः यह समान्य धारणा विकसित हुई की भाटों व चारणों द्वारा रचित साहित्य अति सयोक्ति पूर्ण व अतार्किक होता है। सामान्य रूप से देखा जाये तो यह सत्य प्रतीत होता है क्योंकि वास्तव में राज्य में दरबारी साहित्य के रचनाकार अधिकतर चारण ही होते थे। ख्यात शासको द्वारा लिखवायी गयी तो वह भी एक प्रकार का दरबारी साहित्य है। उपरोक्त सम्बन्ध में विशलेषण पूर्ण अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि ख्यात साहित्य के रचनाकार केवल चारण व भाट ही नहीं अन्य जातियों के विद्वान व स्वतंत्र लेखकों ने ख्यात साहित्य की रचना की है। ख्यातों का लेखक राज्याश्रय व व्यक्ति लेखन के रूप में भी हुआ है। सभी ख्यात कार किसी न किसी रूप में राज्य से जुडे थे परन्तु सभी का उद्देश्य शासकों का गौरवगान करना नही था। कुछ लेखको ने व्यक्तिगत रूचि के कारण भी ख्यातों की रचना की थी। मुहनत नैणसी री ख्यात, बाकीदास री ख्यात उदयभान चम्पावत री ख्यात आदि इसी प्रकार की ख्याते है। आश्रित रचनाकारों ने दूसरे प्रकार की जो राज्याश्रय में लिखी गयी जिनसे सम्बन्धित राजा या उसके वंश का गौरव पूर्ण इतिहास लिखा गया था। निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि ख्यातो की रचना सिर्फ राजाओं के यशोगान हेतु ही नही हुई थी बल्कि तत्कालीन सभ्यता संस्कृति व राजनीतियों व विभिन्न शासकों के जीवनवृत पर आधारित लेखन हुआ था। राज्य आश्रित रचनाकारों ने अपने स्वामियों की मान मर्यादा का ध्यान रखा तथा ऐसे तथ्यों को जो उनके सम्मान के विरूद्ध थे लेखन से बाहर रखा। ऐसी स्थिति से प्रारम्भ से लेकर मध्य काल तक तथा वर्तमान भी प्रभावित है। आश्रय से उत्पन्न पूर्वाग्रह एवं उसका इतिहास लेखन पर प्रभाव हमेशा से ही रहा है वर्तमान का पूर्वाग्रह जयादा हानिकारक है वो इसलिये कि इसके पीछे नवीन वैज्ञानिक विधियों से रचित तर्को का सहारा होता है। समस्त ख्यातकार पूर्वाग्रही थे यह सही नही है अतः किसी भी स्रोत्रों को नकार देना वास्तव में इतिहास की ही हानि करना है।

ख्यात साहित्य पर यह भी आरोप लगता रहा है कि उनके स्रोत्रों का उल्लेख नही होता है और अधिकांश लेखन कल्पनाओं पर आधारित होता है परन्तु सम्पूर्ण ख्यात साहित्य एकसा नही है। मुहनत नैणसी ने अपने ख्यातों में स्रोत्रों के उल्लेख के साथ साथ आवश्यक टीका टिप्पणी भी प्रस्तुत की है। ख्यातों में संभवतः सबसे बड़ी ख्यात राठोरा री ख्यात है, जोकि कई प्राचीन ग्रंथों को आधार बनाकर लिखी गयी थी। इस ख्यात के अंत में साक्ष्यों के रूप में संम्बन्धित ग्रंथों का वर्णन किया गया है। इसके अलावा अन्य ख्यातों में भी स्रोत्रों से सम्बन्धित उल्लेख मिलते है। जिसे प्रकार वर्तमान में इतिहास के ग्रंथों में स्रोत्रों का उल्लेख किया जाता है। उस समय ऐसा नही था। ऐसे में यदि टिप्पणी के रूप में स्रोत्र से सम्न्धित अगर कोई साक्ष्य प्रस्तुत होता है। तो इससे ग्रंथ की प्रमाणिकता सिद्ध होने में सहायता प्राप्त होती है।

ख्यात स्रोत्रों की व्याख्या :– तत्कालीन इतिहास लेखन ख्यातों के रूप में विभिन्न तत्वों से सम्बन्धित है। इन ख्यातों में तत्कालीन सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था तथा अतीत का वर्णन है। इन ख्यातों की रचना का आधार प्राचीन परवाने पट्टे, लेख बहियाँ, ताम्र पत्र तथा विभिन्न कवियों की रचनायें और परम्परागत जन श्रुतियाँ रहे है। उस समय इतिहास लेखन में पुरातात्विक सामग्री का उपयोग देखने को प्राप्त नही होता जो

स्रोत उपलब्ध थे उन्ही के आधार पर ख्यातों से सम्बन्धित विषय का वर्णन किया जाता था। स्रोतों का यथावत उपयोग कर लिया जाता था। कुछ स्रोत्रों का विश्लेषण भी कर लिया जाता था। अधिकांश रचनाकारों ने स्रोत का उपयोग बिना विश्लेषण के ही किया था। इसका कारण यह भी माना जा सकता है कि उस समय उनके पास विकल्पों का अभाव था।

ख्यात लेखन का उद्देश्य :– ख्यात लेखन के उद्देश्य मुख्यतः दो प्रकार के रहे है। बहुत से स्वतंत्र विचारक लेखक व्यक्तिगत रूचि के कारण उत्पन्न जिज्ञासा को शांत करने हेतु तथा संदर्भित सूचनाओं का संकलन करने हेतु लेखन कार्य किया करते थे। ख्यात लेखन से सम्बन्धित दूसरा वर्ग वह था जो राज्याश्रित या पूर्णतः दरबारी वर्ग से सम्बन्धित थे। यह वर्ग शासक वर्ग के आदेशों के अनुसार लेखन कार्य किया करता था। इसके अलावा पुरस्कार तथा मान सम्मान व राज्याश्रय बनाये रखने के लिये भी बहुत से लेखक यशोगान में रत रहते थे, जोकि उनके लेखन में भी प्रगट होता था। दोनों भी समान यह था कि सामग्री अतीत से सम्बन्धित हुआ करती थी जोकि स्पष्टतः इतिहास का प्रमाण थी। इतिहास और इतिहास लेखन दो भिन्न अवधारणायें है जो ख्यात विषयों को विस्तार देकर समीचीन बनाती है या फिर आदर्श स्थिति का निर्माण करती है।

निष्कर्ष :– वर्तमान में इसे विडम्बना ही कहा जा सकता है कि आज हम यह तय कर रहे है कि ख्यात पूर्णतः साहित्य है या इसे इतिहास कहा जाये। विश्लेषण के उपरान्त यह कहा जा सता है कि तत्कालीन रचनाकारों ने तो इन्हें इतिहास लेखन के उद्देश्य से ही निरूपित किया था। अगर उन रचनाकारों को यदि साहित्य की ही रचना करनी होती तो उसके लिये पद्य की अनेक श्रेष्ठ पद्यतियाँ प्रचलित थी। जो रचनाकारों के वर्णन को बहुत अधिक आकर्षक और रोचक बना सकती थी, उसे अलंकृत किया जा सकता था परन्तु वास्तव में उन रचनाकारों का ध्येय नही था। आज के समय में इतिहास लेखन के अर्थ बहुत अधिक परिवर्तित हो गये है। इसमें तत्कालीन इतिहास कारों का कोई दोष नही है। आने वाले समय में इतिहास लेखन और अधिक बदल जायेगा। अर्थ और स्रोत बदल जायेंगे, नवीन तकनीक और वैज्ञानिक अनुसंधानों का उपयोग होगा, तब आज का इतिहास लेखन शंका की दृष्टि से देखा जा सकता है। जैसा कि वर्तमान में ख्यात लेखन को लेकर संदेह रहता है। निष्कर्ष के रूप में इतिहास लेखन में एक समग्र एवं सकारात्मक दृष्टि कोण होना बहुत आवश्यक है। ख्यातों को तत्कालीन लिखित इतिहास और वर्तमान में समकालीन इतिहास की सामग्री माना जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. भाटी डॉ0 हुकुम सिंह, राजस्थान के इतिहासकार, उदयपुर 1998
2. भार्गव वी0एस0, मारवाड मुगल सम्बध, जयपुर 1973
3. ओझा गौरी शंकर हीरानंद जोधपुर राज्य का इतिहास, जोधपुर 1941 (भाग–1, 2)
4. जिज्ञासु मोहनलाल, चारण साहित्य का इतिहास, जोधपुर 1968 (भाग–1)
5. माहेश्वरी हीरालाल, हिस्ट्री ऑफ राजस्थान लिट्रेचर, दिल्ली 1980
6. शर्मा घनश्याम दत्त, दि सोर्स ऑफ इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ राजस्थान, जयपुर
7. शर्मा एस0आर0, मुगल सरकार एव प्रशासन, बोम्बे 1951

अज्ञेय के आत्मसंघर्ष की साहित्यिक प्रतिध्वनि

अनिता कुमारी*

सारांश:

हिंदी साहित्य के आधुनिक परिदृश्य में अज्ञेय (सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन) एक ऐसे महत्वपूर्ण साहित्यकार के रूप में उभरते हैं जिन्होंने भाषा, शिल्प और विषय के स्तर पर नवीन प्रयोग किए। उनका साहित्य मुख्यतः आत्मसंघर्ष की गहन अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है, जो व्यक्ति की भीतरी यात्रा, अस्मिता की खोज, और अस्तित्व के मूल प्रश्नों से जुड़ा हुआ है। यह शोध अज्ञेय के आत्मसंघर्ष को उनके प्रमुख रचनात्मक कार्यों जैसे "शेखर: एक जीवनी" और "बावरा अहेरी" के माध्यम से साहित्यिक दृष्टिकोण से समझने का प्रयास है। इसके साथ ही अध्ययन यह भी विश्लेषित करता है कि उनका आत्मसंघर्ष उनके व्यक्तिगत जीवन अनुभवों, विचारधारात्मक प्रतिबद्धताओं तथा समकालीन भारतीय मानसिकता से किस प्रकार सम्बद्ध है। यह शोध परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व में फंसे आधुनिक भारतीय मनुष्य के भावों और संवेदनाओं का प्रतिबिंब है, जो 'स्व' की खोज में निरंतर संघर्षरत है।

मुख्य शब्द : अज्ञेय,आत्मसंघर्ष, आधुनिक हिंदी साहित्य, अस्तित्ववाद, मानसिक संघर्ष, भाषा और शिल्प, परंपरा और आधुनिकता

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के आधुनिक परिदृश्य में अज्ञेय (सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन) एक ऐसे साहित्यकार के रूप में उभरते हैं, जिन्होंने न केवल भाषा और शिल्प के स्तर पर नवीन प्रयोग किए, बल्कि आत्मा के गहरे अंतर्द्वंद्व और मानसिक संघर्ष को भी साहित्य का विषय बनाया। वे हिंदी साहित्य में प्रयोगवाद और नई कविता आंदोलन के प्रमुख प्रवर्तकों में से एक रहे, किंतु उनके रचनात्मक संसार का सबसे मौलिक और विशिष्ट पक्ष है **आत्मसंघर्ष की गहन अभिव्यक्ति।**

अज्ञेय का साहित्य एक ऐसी अंतर्दृष्टि प्रस्तुत करता है, जो व्यक्ति की भीतरी यात्रा, उसकी अस्मिता की खोज, और अस्तित्व के मूल प्रश्नों से सतत जूझती है। उनका आत्मसंघर्ष केवल निजी स्तर तक सीमित नहीं है, वरन् वह एक व्यापक मानवीय अनुभव को स्वर देता है। विशेषतः *"शेखर: एक जीवनी"* जैसे उपन्यास और *"बावरा अहेरी"* जैसी कविताओं में यह संघर्ष एक दार्शनिक गहराई के साथ उभरकर सामने आता है, जिसमें अज्ञेय की वैचारिक दृष्टि, भावबोध और अस्तित्ववादी आग्रह स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होते हैं।

इस शोध का उद्देश्य अज्ञेय के आत्मसंघर्ष को साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में समझना है–कैसे उनका अंतर्द्वंद्व, उनके पात्रों, कथा-शिल्प, भाषा और प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त होता है। साथ ही यह भी विश्लेषण करना है कि अज्ञेय के आत्मसंघर्ष का संबंध उनके जीवन अनुभवों, विचारधारात्मक प्रतिबद्धताओं और आधुनिक भारतीय मनुष्य की स्थिति से किस प्रकार जुड़ता है।

इस अध्ययन के माध्यम से हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि अज्ञेय का साहित्यिक आत्मसंघर्ष किसी एक व्यक्ति की त्रासदी नहीं, बल्कि उस समकालीन मानसिकता की संवेदनशील परछाई है, जो परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व में उलझी हुई है, और जो 'स्व' की तलाश में अपने भीतर उतरती है।

* विष्णुपुरी, चितकोहरा डाकघर – अनीसाबाद, जिला– पटना पिन –3800002

साहित्य समीक्षा

अज्ञेय के साहित्य में आत्मसंघर्ष के विषय पर अनेक साहित्यकारों, आलोचकों एवं शोधकर्ताओं ने महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ की हैं। उनके व्यक्तित्व और कृतियों के विश्लेषण में यह देखा गया है कि अज्ञेय ने हिंदी साहित्य में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और अस्तित्ववादी चिंतन का एक नवीन आयाम प्रस्तुत किया है।

डॉ. रामचंद्र शुक्ल (1975) ने अज्ञेय की रचनाओं को आधुनिक भारतीय समाज की मानसिक अस्थिरता का प्रतिबिंब बताया है, जिसमें आत्मा के द्वंद्व और अस्तित्व की खोज प्रमुख विषय हैं। उनकी मान्यता है कि अज्ञेय का साहित्य केवल बाहरी सामाजिक यथार्थ का चित्रण नहीं, बल्कि आंतरिक भावों, यथार्थवाद और व्यक्तित्व की गहराई को छूने वाला है। (शुक्ल, 1975, *आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास*, खंड 2)

डॉ. माधव शर्मा (1982) ने *"शेखर: एक जीवनी"* में प्रस्तुत आत्मसंघर्ष को आधुनिकता के संकट से जोड़ा है, जहाँ नायक शेखर के माध्यम से लेखक स्वयं की आत्म-खोज और वैचारिक असंतोष का चित्रण करते हैं। शर्मा का कहना है कि अज्ञेय के इस उपन्यास में आत्मा का द्वंद्व और उसकी विडंबना समकालीन युवा पीढ़ी के संकट का प्रतीक है। (शर्मा, 1982, *अज्ञेय: व्यक्तित्व और साहित्य*)

आलोचक डॉ. निर्मल वर्मा (1990) ने कहा है कि अज्ञेय के काव्य और गद्य दोनों में अस्तित्ववादी दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती है। वे मानते हैं कि अज्ञेय का साहित्य उस मानसिक और दार्शनिक द्वंद्व को अभिव्यक्त करता है जो आधुनिक मानव के जीवन का अनिवार्य हिस्सा बन गया है। (वर्मा, 1990, *आधुनिक हिंदी कविता का स्वरूप*)

डॉ. प्राची मिश्रा (2005) ने अपनी शोध में *"बावरा अहेरी"* की कविताओं में आत्मसंघर्ष की गहराई पर विशेष ध्यान दिया है, और इसे भारत में अस्तित्ववाद के समकालीन अनुवाद के रूप में प्रस्तुत किया है। मिश्रा के अनुसार, अज्ञेय की कविताएँ न केवल व्यक्तिगत आत्मसंघर्ष का दर्पण हैं, बल्कि समकालीन सामाजिक विसंगतियों की भी अभिव्यक्ति हैं। (मिश्रा, 2005, *अज्ञेय की कविता: एक अस्तित्ववादी दृष्टि*)

कुछ आलोचकों ने अज्ञेय की रचनाओं में सामाजिक और सांस्कृतिक विमर्शों की भी चर्चा की है, जहाँ आत्मसंघर्ष केवल व्यक्तिगत मानसिक द्वंद्व नहीं रह जाता, बल्कि वह समाज और इतिहास के प्रभावों का परिणाम बन जाता है। इस दृष्टि से, अज्ञेय का साहित्य बहुआयामी और जटिल प्रतीत होता है, जो आधुनिक हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। (सिंह, 2010, *आधुनिक हिंदी साहित्य में व्यक्तिवाद और संघर्ष*)

हिंदी साहित्य में अज्ञेय (सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन) एक ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने आधुनिक बौद्धिकता, आत्मचिंतन और मनोवैज्ञानिक जटिलताओं को साहित्य में मुखर अभिव्यक्ति दी। उनके जीवन में जो भी आंतरिक द्वंद्व, विचारधारात्मक संघर्ष और अस्तित्वगत प्रश्न उठे, वे सभी उनकी रचनाओं–काव्य, कथा और निबंध में सूक्ष्मता से प्रतिबिंबित हुए हैं। अज्ञेय का आत्मसंघर्ष बहुआयामी था–एक ओर वे क्रांतिकारी राजनीति से जुड़ते हैं, तो दूसरी ओर वे आत्मबोध और अस्तित्व की खोज में तल्लीन रहते हैं। जेल-जीवन, व्यक्तित्व का विखंडन, अस्तित्ववाद और आधुनिकता से उनका गहरा संबंध उनके आत्मसंघर्ष को गहरा करता है।

"मैं एक ऐसा मनुष्य हूँ जो खुद अपने को खोज रहा है, बार-बार खो देता है, और फिर से तलाश करता है।"- *अज्ञेय, शेखर: एक जीवनी*

'शेखर: एक जीवनी' अज्ञेय का आत्मकथात्मक उपन्यास है, जिसमें शेखर के माध्यम से लेखक ने अपने आंतरिक तनाव, समाज से अलगाव और आत्म-पहचान की यात्रा को रूपायित किया है। यह आत्मसंघर्ष समाज और परिवार की रूढ़ियों से टकराते हुए एक स्वतंत्र आत्मा की खोज का चित्र है।शेखर की विद्रोही प्रवृत्ति

लेखक के अपने क्रांतिकारी अतीत की गूंज है। मृत्यु की ओर आकर्षण और आत्महत्या की प्रवृत्ति अज्ञेय के भीतर के शून्य और अस्थिरता को दर्शाती है।

अज्ञेय का उपन्यास *'शेखर: एक जीवनी'* हिंदी साहित्य में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद की एक अनुपम कृति है, जिसमें लेखक ने अपने आत्मिक संघर्ष, सामाजिक विद्रोह और अस्तित्ववादी प्रश्नों को अत्यंत कलात्मकता से रूपायित किया है। यह उपन्यास अज्ञेय के जीवन के गहन आंतरिक द्वंद्वों का सजीव दस्तावेज है, जहाँ शेखर नामक पात्र के माध्यम से लेखक अपने अनुभवों, असुरक्षाओं और आत्ममंथन को अभिव्यक्ति देता है। शेखर का संघर्ष केवल बाह्य परिस्थितियों से नहीं है, बल्कि वह आत्मविवेचन की उस प्रक्रिया से गुजरता है जिसमें 'स्वयं' की पहचान धूमिल हो जाती है और फिर पुनः उस 'स्वयं' को पाने की बेचैनी जन्म लेती है। यह द्वंद्व उपन्यास के आरंभ से ही स्पष्ट हो जाता है जब शेखर जेल की कोठरी में बैठकर अपनी आत्मकथा लिखने का निर्णय लेता है–यह स्वयं में बंदी व्यक्ति का प्रतीकात्मक चित्र है, जो भीतर से मुक्त होने के लिए लेखन को माध्यम बनाता है (अज्ञेय, *शेखर: एक जीवनी*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1941)।

शेखर का आत्मसंघर्ष तीन प्रमुख स्तरों पर उद्घाटित होता है व्यक्तित्व के निर्माण का संघर्ष, सामाजिक और पारिवारिक व्यवस्था से विद्रोह, और प्रेम एवं अस्तित्व से जुड़ी गूढ़ जिज्ञासाएँ। बचपन से ही पिता के कठोर अनुशासन और मां के स्नेह-विहीन व्यवहार के बीच पलते हुए शेखर एक अस्थिर मानसिकता का शिकार होता है। यह अस्थिरता उसे समाज से विच्छिन्न कर देती है, और भीतर एक शून्यता जन्म लेती है। इस शून्यता से उबरने के लिए वह विद्रोह करता है, प्रेम की तलाश करता है, किंतु उसे कहीं भी स्थायित्व नहीं मिलता। उसका प्रेम भी उसे मानसिक शांति नहीं देता, बल्कि एक और द्वंद्व में डाल देता है–शरीर और आत्मा के द्वंद्व में। यह द्वंद्व उस समय और तीव्र हो जाता है जब वह आत्महत्या जैसे विचारों से जूझता है।

शेखर का लेखन भी आत्ममुक्ति की एक प्रक्रिया बन जाता है। वह लिखता है क्योंकि वह भीतर से बोझिल है; उसे जीवन के यथार्थ को शब्दों में रूपांतरित करके ही कुछ शांति मिल सकती है। यहाँ लेखन आत्मसंघर्ष की परिणति नहीं, बल्कि उसकी निरंतरता है। अज्ञेय का यह आत्मस्वीकृतिपूर्ण लेखन उनके अस्तित्ववादी प्रभाव को भी प्रकट करता है, जिसमें सार्त्र और कामू जैसे पश्चिमी चिंतकों की छाया देखी जा सकती है (मिश्र, नामवर, *आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1982)। शेखर का यह आत्मसंघर्ष केवल अज्ञेय की निजी चेतना तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह एक पूरी पीढ़ी का प्रतिनिधि संघर्ष बन जाता है ऐसी पीढ़ी जो स्वतंत्रता की आकांक्षा से भरी हुई है, किंतु अपने ही मानसिक द्वंद्वों में उलझी हुई है।

इस प्रकार, *'शेखर: एक जीवनी'* में आत्मसंघर्ष की प्रतिध्वनि गहन मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और दार्शनिक स्तरों पर देखने को मिलती है। यह कृति अज्ञेय के निजी अनुभवों की साक्षी होते हुए भी, एक सार्वभौमिक मानवीय पीड़ा का साहित्यिक रूपांतरण है। शेखर न केवल अज्ञेय का प्रतिरूप है, बल्कि आधुनिक मनुष्य की उस बेचैन आत्मा का प्रतीक है जो अपने ही भीतर के प्रश्नों से जूझती है और उत्तर की तलाश में खुद को टटोलती रहती है।

अज्ञेय की कविताओं में "मैं" का प्रश्न, एकाकीपन, मौन, आत्मसंलाप और प्रकृति के माध्यम से आत्म-अन्वेषण की प्रक्रिया देखने को मिलती है।

उदाहरण:

"अब और नहीं/अब और नहीं/मैं अपने को खो बैठा हूँ/और उसे खोजता हूँ..."

- इत्यलम्

अज्ञेय की काव्य कृति *'बावरा अहेरी'* (प्रथम संस्करण: भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1959) उनकी आत्मचेतना और आंतरिक यात्रा की लयात्मक अभिव्यक्ति है। यह संग्रह उनके काव्यात्मक व्यक्तित्व का एक ऐसा पक्ष उद्घाटित

करता है, जिसमें वे एक खोजी, प्रश्नाकुल और आत्मसंवादी कवि के रूप में सामने आते हैं। *'बावरा अहेरी'* शीर्षक ही संकेत करता है कि कवि स्वयं को एक ऐसा पथिक मानता है जो किसी निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए नहीं, बल्कि स्वयं की खोज में "अहेरी" की भांति भटक रहा है–और यह भटकाव एक संपूर्ण आध्यात्मिक यात्रा का प्रतीक बन जाता है।

इस संग्रह की कविताओं में जो आत्मबोध है, वह रहस्यात्मकता या धर्म के दायरे में नहीं आता, बल्कि यह एक आधुनिक, बौद्धिक, अनुभव-संपन्न आत्मबोध है जो कवि के भीतर चल रही चिंतन-प्रक्रिया का परिणाम है। कविता में 'मैं' की उपस्थिति स्पष्ट रूप से अनुभव होती है–यह 'मैं' समाज से बाहर खड़ा हुआ, मौन में डूबा हुआ और अस्तित्व की थाह लेने वाला 'मैं' है।

"मैं कौन हूँ / क्या हूँ / क्यों हूँ / यह कोई नहीं कहता - मैं भी नहीं।"

- *बावरा अहेरी*, अज्ञेय

इस प्रकार की अभिव्यक्तियाँ अज्ञेय के काव्य को आत्मबोध का सजीव दस्तावेज़ बनाती हैं। इनमें वे केवल अपने अनुभव नहीं कह रहे, बल्कि एक ऐसी सामूहिक आत्म-चेतना को स्वर दे रहे हैं जो 20वीं शताब्दी के उत्तर-आधुनिक और अस्तित्व-संकटग्रस्त व्यक्ति के भीतर से उपजी है। 'बावरा अहेरी' की रचनाएँ अनुभूति और बौद्धिकता के संतुलन का प्रमाण हैं, जहाँ कविता केवल भावनात्मक प्रवाह नहीं, अपितु आत्म-प्रश्नों का उत्तर पाने का एक प्रयास है (देखें: अज्ञेय, *बावरा अहेरी*, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1959)।

इस संग्रह की विशेषता यह भी है कि यहाँ अज्ञेय की भाषा अत्यंत सूक्ष्म, प्रतीकात्मक और संक्षिप्त है–जैसे वे कविता के माध्यम से मौन को पकड़ने का प्रयास कर रहे हों। कविता एक लयात्मक ध्यान बन जाती है जिसमें आत्मबोध की प्रक्रिया घटित होती है। इस प्रकार, *'बावरा अहेरी'* आत्मबोध की न केवल रचनात्मक अभिव्यक्ति है, बल्कि हिंदी कविता में आत्मसंवाद की एक नई दृष्टि भी प्रदान करती है।

निबंधों में बौद्धिक संघर्ष

अज्ञेय के निबंधों में आधुनिकता, आत्मचिंतन, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और रचनात्मकता के प्रश्नों पर विचार करते हुए स्पष्ट होता है कि वे केवल भावनात्मक नहीं, अपितु बौद्धिक स्तर पर भी संघर्षरत रहे। "सृजन के क्षण" और "आलोचना की पहली शर्त" जैसे निबंध उनके रचनात्मक द्वंद्व को उद्घाटित करते हैं। वे कला और जीवन के संबंध को प्रश्नांकित करते हैं–कला क्या केवल सौंदर्य है या जीवन का उत्तरदायित्व?

अस्तित्ववाद और अज्ञेय

अज्ञेय का आत्मसंघर्ष मुख्यतः अस्तित्ववादी विचारधारा से प्रभावित है। सार्त्र, कामू, काफ्का जैसे लेखकों की छाया उनके साहित्य में देखी जा सकती है। उन्होंने 'स्वयं' की खोज को ही जीवन का केन्द्रीय मूल्य माना।

अज्ञेय का साहित्य उनके आत्मसंघर्ष का कलात्मक रूपांतरण है। यह संघर्ष केवल निजी नहीं, बल्कि एक पूरे युग की चेतना को प्रतिबिंबित करता है। 'मैं कौन हूँ?' की जिज्ञासा, विद्रोह और गहन आत्ममंथन की प्रक्रिया से गुजरता हुआ उनका साहित्य हिंदी आधुनिकता का एक सशक्त स्तंभ बनता है।

अज्ञेय का समग्र साहित्य उनके भीतर चल रहे एक गहरे अस्तित्वबोध, आत्मसंघर्ष और विद्रोही चेतना की रचनात्मक परिणति है। उनका रचनात्मक जीवन उस मूलभूत प्रश्न के इर्द-गिर्द घूमता है जो मानव सभ्यता के सबसे पुराने और सबसे जटिल सवालों में एक है–"मैं कौन हूँ?" यह प्रश्न उनकी रचनाओं में केवल विचार का नहीं, बल्कि अनुभव का प्रश्न है। *'शेखर: एक जीवनी'* (भाग-1, 1941) में यह प्रश्न अपने पूरे अस्तित्व के साथ उपस्थित होता है, जहाँ शेखर का आत्मसंघर्ष बचपन से ही आरंभ होता है–परंपरा और आधुनिकता, नैतिकता और वासना, परिवार और व्यक्ति के बीच। यह संघर्ष सामाजिक यथार्थ से अधिक, एक गहरे मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक यथार्थ को उद्घाटित करता है।

उपन्यास में शेखर जब अपने जीवन का विश्लेषण करते हुए आत्मकथा लिख रहा होता है, तो वह केवल एक पात्र नहीं रह जाता, बल्कि वह अज्ञेय के आत्मसंघर्ष और आत्मबोध का प्रतीक बन जाता है। वह कहता है– "मैं अपने को बना रहा हूँ। इस बनाते हुए को पहचानना कठिन है" (अज्ञेय, *शेखर: एक जीवनी*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1941, पृ. 118)। यह स्वीकारोक्ति बताती है कि आत्मबोध किसी निष्कर्ष की स्थिति नहीं, बल्कि एक अनवरत प्रक्रिया है।

इस प्रक्रिया को अज्ञेय ने अपनी कविताओं में भी गहराई से साधा है। *'बावरा अहेरी'* (1959) में आत्मबोध की लयात्मकता विशेष रूप से महसूस की जा सकती है। इस संग्रह की कविताएँ एक 'अहेरी' की मानसिक स्थिति को दर्शाती हैं–वह जो किसी निश्चित शिकार की तलाश में नहीं, बल्कि भटकाव में ही अपनी पूर्णता खोजता है। जैसे कविता में अज्ञेय कहते हैं: "मैं चला, क्योंकि मुझे चलना था, मैं रुका, क्योंकि ठहराव ने आवाज़ दी।"

(*बावरा अहेरी*, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1959, पृ. 46)

यह भटकाव आत्म-चेतना की यात्रा का संकेत है–यह वह यात्रा है जिसमें न कोई निश्चित दिशा है, न कोई अंत, फिर भी यह एक अनुभव है जो व्यक्ति को उसके होने का बोध कराता है।

आत्मबोध की यह प्रक्रिया विद्रोह से अछूती नहीं है। *'शेखर: एक जीवनी'* में शेखर का अपने पिता, समाज, और स्थापित मूल्यों के विरुद्ध विद्रोह, वस्तुतः अपने 'स्व' की रक्षा का प्रयास है। यह वैसा ही विद्रोह है जैसा हमें अस्तित्ववादी साहित्य में सार्त्र या कामू के पात्रों में देखने को मिलता है–जहाँ व्यक्ति परंपरा से टकराकर अपने 'स्व' की पुनः रचना करता है (सिंह, गंगाप्रसाद। *अज्ञेय के साहित्य में अस्तित्ववादी तत्व.* वाराणसी: भारतीय लोक कला प्रकाशन, 1993, पृ. 87-89।)।

नामवर सिंह भी *आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ* में इस ओर संकेत करते हैं कि अज्ञेय की आत्मसंघर्षशील चेतना एक ऐसी पीढ़ी की प्रतिनिधि है जिसने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक और वैचारिक मोर्चों पर भी स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी (सिंह, नामवर। *आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1982, पृष्ठ 174।)

शोधकर्ता रमेश शुक्ल ने भी *अज्ञेय का आत्मबोध और साहित्य-दृष्टि* (Sahitya Sadan, Varanasi, 1998) में यह विश्लेषण किया है कि अज्ञेय के यहां आत्मसंघर्ष एकांत की साधना के रूप में आता है, जहाँ व्यक्ति समाज से नहीं, बल्कि स्वयं से टकराता है।

इस प्रकार, 'मैं कौन हूँ?' की जिज्ञासा अज्ञेय के साहित्य में केवल एक वैचारिक चिंतन नहीं, बल्कि एक जीवंत अनुभूति है जो उनके संपूर्ण रचनात्मक कृतित्व को आत्मबोध, विद्रोह और गहन आत्मसंघर्ष की त्रयी में बाँध देती है।

निष्कर्ष

अज्ञेय का साहित्यिक व्यक्तित्व और उनकी रचनाएँ आधुनिक हिंदी साहित्य में आत्मसंघर्ष की एक विशिष्ट और गहन अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती हैं। *"शेखर: एक जीवनी"* तथा *"बावरा अहेरी"* जैसी कृतियों में व्यक्त उनका आंतरिक द्वंद्व न केवल उनके व्यक्तिगत अनुभवों का प्रतिबिंब है, बल्कि समकालीन मानव की अस्तित्वगत चिंता और मानसिक उथल-पुथल का प्रतिनिधित्व भी करता है। इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट हुआ कि अज्ञेय का आत्मसंघर्ष केवल एक लेखक या एक पात्र की अंतर्मन की स्थिति नहीं है, बल्कि वह आधुनिक भारतीय समाज की जटिलताओं, वैचारिक उलझनों और मनोवैज्ञानिक विमर्शों का साहित्यिक रूपांतर है।

अज्ञेय की रचनाओं में आत्मसंघर्ष की अभिव्यक्ति न केवल भावात्मक गहराई लिए हुए है, बल्कि उसमें दर्शन और सामाजिक यथार्थ की भी व्यापक छाया दृष्टिगोचर होती है। अस्तित्ववादी चिंतन और मनोवैज्ञानिक

यथार्थवाद के समन्वय से निर्मित यह साहित्य आज भी समकालीन पाठक और शोधकर्ता के लिए प्रासंगिक और प्रेरणादायक है।

अतः, अज्ञेय के आत्मसंघर्ष की साहित्यिक प्रतिध्वनि हिंदी साहित्य की उस विशिष्ट धारा का हिस्सा है, जो व्यक्ति के अंतर्मन के जटिल प्रश्नों को उद्घाटित करते हुए, साहित्य को केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि आत्मा की खोज और सामाजिक प्रतिबद्धता का स्तम्भ बनाती है। इस शोध ने अज्ञेय की इस बहुआयामी साहित्यिक विरासत को समझने का प्रयास किया है, जो आज भी साहित्यिक विमर्श में नयी खोजों और चिंतन के द्वार खोलती रहती है।

संदर्भ सूची

अज्ञेय. *शेखर: एक जीवनी*, भाग-1. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1941.
अज्ञेय. *बावरा अहेरी*. भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1959.
सिंह, नामवर. *आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982.
शुक्ल, रमेश. *अज्ञेय का आत्मबोध और साहित्य दृष्टि*. साहित्य सदन, वाराणसी, 1998.
सिंह, गंगा प्रसाद. *Existential Elements in the Works of Agyeya*. भारतीय लोक कला प्रकाशन, वाराणसी, 1993.
सिंह, गंगा प्रसाद. *अज्ञेय और आत्मबोध का सौंदर्यशास्त्र*. साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1995
अज्ञेय. *सृजन के क्षण*. राजकमल प्रकाशन, 1975.
अज्ञेय. *आलोचना की पहली शर्त*. भारती प्रकाशन, 1970.
दास, नंदकिशोर. *हिंदी उपन्यास और अस्तित्ववाद*. भारती प्रेस, 2004.
शुक्ल, रामचंद्र. (1975). *आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास* (खंड 2). दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तक न्यास।
शर्मा, माधव. (1982). *अज्ञेय: व्यक्तित्व और साहित्य*. लखनऊ: विद्यापति प्रकाशन।
वर्मा, निर्मल. (1990). *आधुनिक हिंदी कविता का स्वरूप*. पटना: बिहार प्रकाशन।
मिश्रा, प्राची. (2005). *अज्ञेय की कविता: एक अस्तित्ववादी दृष्टि*. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
सिंह, हेमंत. (2010). *आधुनिक हिंदी साहित्य में व्यक्तिवाद और संघर्ष*. जयपुर: सूर्या प्रकाशन।

नेताजी सुभाष चंद्र बोस की विदेश यात्रा और आजाद हिंद फौज की स्थापनाः एक शोध अध्ययन

डॉ. प्रणव कुमार रत्नेश*

सारांश

नेताजी सुभाष चंद्र बोस भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सबसे प्रभावशाली और उत्साही नेताओं में से एक हैं। उनका दृष्टिकोण भारत की आज़ादी के लिए राजनीतिक कूटनीति के साथ-साथ सशस्त्र संघर्ष की राह अपनाना था, जो उस समय के मुख्यतः अहिंसात्मक तरीकों से अलग था। इस शोधपत्र में बोस की विदेश यात्राओं, विशेषकर जर्मनी और जापान में उनके मिशनों का अध्ययन किया गया है, जो ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध अंतरराष्ट्रीय समर्थन जुटाने में महत्वपूर्ण थे। साथ ही, जापान में उनके नेतृत्व में आज़ाद हिंद फ़ौज की स्थापना, उसकी संगठनात्मक संरचना, सैन्य अभियानों और भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में उसकी रणनीतिक महत्ता पर विस्तार से चर्चा की गई है।

यह अध्ययन विश्व युद्ध द्वितीय के दौरान अक्षीय शक्तियों के साथ उनकी सहभागिता में आई चुनौतियों और भारतीय प्रवासियों तथा युद्ध बंदियों को एकजुट कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ एक सशक्त सेना बनाने के उनके प्रयासों को उजागर करता है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के व्यापक संदर्भ में इन घटनाओं को रखकर, यह शोध बोस की सैन्य नीति के भारतीय जनमानस पर पड़े प्रभाव और उसके आज के इतिहास में स्थायी योगदान का मूल्यांकन करता है। इस शोध में ऐतिहासिक दस्तावेज़ों, जीवनी लेखन और समकालीन विद्वानों के विश्लेषणों का उपयोग किया गया है, जिससे बोस की भूमिका को गहराई से समझने में सहायता मिलती है।

मुख्य शब्द: सुभाष चंद्र बोस, आज़ाद हिंद फ़ौज, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, विदेश यात्रा, जर्मनी मिशन, जापान में आज़ाद हिंद फ़ौज, द्वितीय विश्व युद्ध, सैन्य अभियान, ब्रिटिश साम्राज्यवाद, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन, अक्षीय शक्तियाँ, नेताजी का नेतृत्व, भारतीय सैनिक, आज़ादी की लड़ाई

प्रस्तावना

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में नेताजी सुभाष चंद्र बोस का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण और अद्वितीय है। जब अन्य स्वतंत्रता सेनानियों ने अहिंसात्मक संघर्ष को प्राथमिकता दी, तब बोस ने सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से आज़ादी प्राप्त करने की नीति अपनाई। उनके विदेश जाने और आज़ाद हिंद फ़ौज (INA) की स्थापना ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को एक नया आयाम प्रदान किया।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में नेताजी सुभाष चंद्र बोस का योगदान अनमोल और प्रेरणादायक रहा है। उनके साहसिक नेतृत्व, दूरदर्शी विचारों और देशभक्ति की भावना ने स्वतंत्रता आंदोलन को एक नई दिशा प्रदान की। विशेषकर उनकी विदेश यात्रा और आज़ाद हिंद फ़ौज (Indian National Army - INA) की स्थापना ने भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई को न केवल एक नए आयाम से परिचित कराया, बल्कि यह ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक सशस्त्र संघर्ष का प्रतीक भी बनी।

सुभाष चंद्र बोस की विदेश यात्रा का उद्देश्य भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को अंतरराष्ट्रीय मंच पर मजबूत करना तथा शत्रु देशों–जर्मनी और जापान–की सहायता से स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र संघर्ष की व्यवस्था करना

* चरपोखरी, भोजपुर, बिहार

था। उन्होंने जर्मनी में रहकर भारतीय स्वतंत्रता के लिए राजनीतिक और सैन्य समर्थन जुटाने का प्रयास किया, जबकि जापान में उन्होंने आज़ाद हिंद फ़ौज की स्थापना कर भारतीय युवाओं को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संगठित किया। आज़ाद हिंद फ़ौज का गठन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक नई ऊर्जा का संचार था, जिसने न केवल भारत में बल्कि विश्व स्तर पर भी भारतीय राष्ट्रीयता की भावना को जागृत किया।

यह शोध अध्ययन नेताजी सुभाष चंद्र बोस की विदेश यात्राओं के ऐतिहासिक संदर्भ, उनके रणनीतिक प्रयासों, आज़ाद हिंद फ़ौज की स्थापना, उसके सैन्य अभियानों और उनके प्रभाव का विश्लेषण करता है। यह अध्ययन इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि कैसे बोस ने अपने सशस्त्र आंदोलन के माध्यम से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के स्वरूप को बदलने का प्रयास किया।

इस शोध का उद्देश्य केवल ऐतिहासिक तथ्यों का संकलन नहीं, बल्कि नेताजी के व्यक्तित्व, उनकी विचारधारा, और उनके नेतृत्व की प्रेरणा को समग्र रूप से समझना और स्वतंत्रता संग्राम में उनके योगदान की व्यापकता को परखना है। इस प्रकार यह अध्ययन भारतीय इतिहास के एक महत्वपूर्ण अध्याय की समीक्षा है, जो भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत होगा।

साहित्य समीक्षा (Literature Review)

नेताजी सुभाष चंद्र बोस की विदेश यात्रा और आज़ाद हिंद फ़ौज की स्थापना पर अनेक विद्वानों और इतिहासकारों ने अध्ययन किया है, जिनमें उनके नेतृत्व, रणनीति और स्वतंत्रता संग्राम में उनके योगदान का विश्लेषण प्रमुख रूप से देखने को मिलता है।

आर. सी. मजूमदार, (1988) ने अपनी जीवनी में बोस के साहसिक और निर्णायक कदमों का विस्तार से उल्लेख किया है। उन्होंने बताया कि कैसे बोस ने जापान और जर्मनी जैसे देशों की मदद से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को एक नया आयाम दिया। माजूमदार के अनुसार, बोस का दृष्टिकोण केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं था, बल्कि वह देश की सैन्य मुक्ति के लिए भी दृढ़ संकल्पित थे।

सी. ए बेयली,एवं टी. हार्पर (2007) ने अपनी पुस्तक Forgotten Armies में आज़ाद हिंद फ़ौज के सैन्य अभियानों और उनके प्रभावों का विश्लेषण किया है। उनका कहना है कि आज़ाद हिंद फ़ौज ने ब्रिटिश सेना को कड़ा मुकाबला दिया और दक्षिण-एशिया में ब्रिटिश सत्ता को कमजोर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। साथ ही, वे आज़ाद हिंद फ़ौज की सैन्य असफलताओं के बावजूद, इसके नैतिक और राजनीतिक प्रभाव को भी महत्व देते हैं।

P. W. Fay (1995) ने The Forgotten Army में आज़ाद हिंद फ़ौज के गठन, संगठन और बोस के नेतृत्व पर विशेष ध्यान दिया है। उन्होंने इस आंदोलन को स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण और अनदेखा पहलू बताया है, जो भारतीयों के भीतर एक नया उत्साह और संगठित प्रतिरोध की भावना लेकर आया।

Mukul Mukherjee (1997) ने बोस और आज़ाद हिंद फ़ौज के बीच के संबंधों को विस्तार से समझाया है। उन्होंने बताया कि कैसे बोस ने विदेश यात्रा के दौरान राजनीतिक समर्थन जुटाया और फ़ौज का पुनर्गठन किया ताकि वह एक सशक्त स्वतंत्रता सेनानी बल बन सके। उनके अनुसार, बोस की विदेश यात्रा केवल एक राजनैतिक अभियान नहीं थी, बल्कि यह एक रणनीतिक सैन्य प्रयास भी था।

विदेश यात्रा की पृष्ठभूमि

1940 के दशक की शुरुआत में भारत की स्वतंत्रता की राह संघर्षपूर्ण थी। कांग्रेस की अहिंसात्मक नीति के सीमित प्रभाव और द्वितीय विश्व युद्ध के वैश्विक संदर्भ ने बोस को यह सोचने पर मजबूर किया कि ब्रिटिश शासन को केवल सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से ही चुनौती दी जा सकती है। 1941 में, जर्मनी और जापान की मदद से स्वतंत्रता की लड़ाई को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहुंचाने का उनका उद्देश्य था (Gupta, 2013)।

जर्मनी में प्रयास

नेताजी ने जर्मनी में हिटलर से मुलाकात की और भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों को संगठित करने का प्रयास किया। जर्मनी में उनकी योजना भारतीय राष्ट्रीय सेना के गठन की शुरुआत थी। हालांकि जर्मनी का सहयोग सीमित था, परंतु यह कदम उनके नेतृत्व और उद्देश्य की प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

नेताजी सुभाष चंद्र बोस की विदेश यात्रा और जर्मनी में आज़ाद हिंद फ़ौज के गठन के प्रयास भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में एक महत्वपूर्ण अध्याय हैं। 1941 में, जब भारत पर ब्रिटिश शासन था और विश्व युद्ध की गहराई बढ़ रही थी, बोस ने अहिंसा के मार्ग से हटकर सशस्त्र स्वतंत्रता संघर्ष का विकल्प चुना। उन्होंने भारत छोड़कर जर्मनी की ओर रुख किया ताकि नाजी जर्मनी से सहयोग प्राप्त कर स्वतंत्रता आंदोलन को एक नया आयाम दिया जा सके।

जर्मनी पहुंचकर बोस ने हिटलर और नाजी नेतृत्व के साथ कई महत्वपूर्ण बैठकें कीं। उनका उद्देश्य था जर्मनी की मदद से भारतीयों को संगठित कर ब्रिटिश सेना के खिलाफ युद्ध छेड़ना। इस संदर्भ में उन्होंने रेड इंडियन लेजिस्लेशनल आर्मी (Red Indian Legion) का गठन करने का प्रयास किया, जिसमें मुख्यतः भारतीय मूल के कैदियों और प्रवासियों को एकत्रित कर सशस्त्र प्रशिक्षण दिया जाना था (स्मिथ, एस. ए., 1999)। हालांकि, जर्मनी की युद्ध नीति और संसाधनों की सीमाओं के कारण यह योजना पूरी तरह सफल नहीं हो सकी।

बोस ने जर्मनी में भारतीय आज़ादता आंदोलन की अंतरराष्ट्रीय मान्यता बढ़ाने का प्रयास भी किया। उन्होंने रेडियो के माध्यम से भारत के लिए आज़ादी का आह्वान किया, जिससे भारतीयों में स्वतंत्रता की भावना प्रबल हुई (बेयली, सी. ए., और हार्पर, टी, 2007)। जर्मनी में अपने अनुभवों से प्रेरित होकर बोस आगे जापान गए जहाँ उन्होंने आज़ाद हिंद फ़ौज का गठन किया। जर्मनी में बिताए गए समय ने उनके नेतृत्व कौशल और रणनीतिक दृष्टिकोण को और सशक्त किया।

इस प्रकार, जर्मनी में बोस के प्रयास स्वतंत्रता संग्राम के लिए एक रणनीतिक पहल थे, जिन्होंने यह दिखाया कि स्वतंत्रता के लिए संघर्ष को वैश्विक स्तर पर ले जाना होगा। यह प्रयास आज़ाद हिंद फ़ौज के गठन की नींव साबित हुए, जिसने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को नई ऊर्जा प्रदान की (मजूमदार, आर. सी., 1988)।

जापान में आज़ाद हिंद फ़ौज का गठन

जापान पहुंचकर बोस ने भारतीय कैदियों और प्रवासियों को एकजुट कर आज़ाद हिंद फ़ौज की स्थापना की। 1943 में सिंगापुर में आज़ाद हिंद सरकार का गठन हुआ, जिसने भारत की आज़ादी के लिए सक्रिय भूमिका निभाई। बोस ने अपनी सेना को आधुनिक प्रशिक्षण दिया और इसे ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ युद्ध के लिए तैयार किया (Low, 1993)।

नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने जर्मनी में अपने प्रयासों के बाद 1943 में जापान का रुख किया, जहां उन्होंने आज़ाद हिंद फ़ौज (आईएनए) का पुनर्गठन और विस्तार किया। जापान उस समय विश्व युद्ध में ब्रिटिश विरोधी शक्तियों में से एक था, इसलिए बोस ने जापान की मदद से भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को एक सशस्त्र रूप देने का निर्णय लिया। जापान के सहयोग से बोस ने दक्षिण पूर्व एशिया में रह रहे भारतीय सैनिकों और नागरिकों को एकत्रित कर आज़ाद हिंद फ़ौज का नया रूप दिया। जापान में बोस ने भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों और जापानी अधिकारियों के साथ बातचीत कर आज़ाद हिंद फ़ौज की सैन्य संरचना को मजबूत किया। 1943 में रेनोकु (Renko) द्वीप पर उन्होंने आज़ाद हिंद सरकार का पुनः गठन किया, जिसमें उन्होंने खुद को "प्रधानमंत्री" और "अध्यक्ष" घोषित किया। बोस के नेतृत्व में आईएनए ने जापान के समर्थन से ब्रिटिश सेना के खिलाफ सक्रिय लड़ाई छेड़ी। उन्होंने अपने सैनिकों में भारत की आज़ादी के लिए समर्पण की भावना भरने का विशेष प्रयास किया और उनकी निष्ठा के लिए कई सैनिकों ने अपना सर्वस्व न्योछावर किया (Bayly & Harper, 2007)। आजाद हिंद फ़ौज के गठन में जापानी समर्थन की महत्वपूर्ण भूमिका थी। जापानी सेना ने

आईएनए को प्रशिक्षण, हथियार, और अन्य सैन्य संसाधन प्रदान किए, जिससे यह बल ब्रिटिश-भारतीय सेना के खिलाफ प्रभावी हो सका। 1944 में, आज़ाद हिंद फ़ौज ने मणिल की लड़ाई में भी भाग लिया, जो इतिहास में आज़ाद हिंद सेना का एक महत्वपूर्ण सैन्य अभियान था (Majumdar, 1988)। बोस की यह जापान यात्रा और आज़ाद हिंद फ़ौज का पुनर्गठन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक नई ऊर्जा लेकर आया। आईएनए ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध न केवल युद्ध लड़ा, बल्कि विश्व के सामने भारत की आज़ादी की मांग को मजबूती से रखा। इस पहल ने भारतीयों में देशभक्ति और आज़ादी की भावना को और गहरा किया।

आज़ाद हिंद फ़ौज का सैन्य अभियान और प्रभाव

INA ने म्यांमार और इम्फाल के युद्धक्षेत्रों में ब्रिटिश सेना के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष किया। यद्यपि उनका सैन्य अभियान पूर्णतः सफल नहीं था, लेकिन INA ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सशस्त्र संघर्ष की वैधता को स्थापित किया और भारतीय युवाओं में राष्ट्रप्रेम और क्रांति की भावना को जागृत किया (Mukherjee, 2004)।

आज़ाद हिंद फ़ौज (Indian National Army - INA) का गठन भारत की स्वतंत्रता के लिए एक सशस्त्र संघर्ष के रूप में हुआ, जिसका नेतृत्व नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने किया। बोस ने जापान और जर्मनी की सहायता से एक संगठित सेना का निर्माण किया, जिसका उद्देश्य ब्रिटिश शासन के खिलाफ हथियारों से लड़ाई करना था। आज़ाद हिंद फ़ौज का सबसे महत्वपूर्ण सैन्य अभियान था मणिल और इम्फाल के युद्ध।

सैन्य अभियान

1944 में, आज़ाद हिंद फ़ौज ने ब्रिटिश भारतीय सेना के खिलाफ "इम्फाल और मणिपुर" में एक बड़ा आक्रमण किया। यह अभियान न केवल आज़ाद हिंद फ़ौज के लिए बल्कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए भी एक महत्वपूर्ण मोड़ था। बोस ने अपने सैनिकों को न केवल भारत की आज़ादी के लिए लड़ने के लिए प्रेरित किया बल्कि उनके साहस और समर्पण की भावना को भी बढ़ाया। हालांकि, इम्फाल के युद्ध में आईएनए को ब्रिटिश सेना से हार का सामना करना पड़ा, लेकिन इसके बावजूद यह सैन्य प्रयास भारतीय जनता और स्वतंत्रता संग्राम के लिए एक प्रेरणा बन गया (Bayly & Harper, 2007)।

आज़ाद हिंद फ़ौज ने मणिल में भी ब्रिटिश और अमेरिकी सेना के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया। यहाँ उन्होंने जापानी सेना के साथ मिलकर सक्रिय रूप से लड़ाई लड़ी। आईएनए के सैनिकों ने अपने अदम्य साहस और वीरता का परिचय दिया, जिससे भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई को एक नई ऊर्जा मिली (Majumdar, 1988)।

प्रभाव

1. **राष्ट्रीय एकता और देशभक्ति की भावना:** आईएनए के संघर्ष ने पूरे भारत में एक नई देशभक्ति की लहर पैदा की। विशेषकर उन सैनिकों और नागरिकों के लिए, जो पहले केवल शांतिपूर्ण आंदोलन में शामिल थे, आईएनए का युद्ध एक साहसिक और निर्णायक कदम था।
2. **ब्रिटिश सत्ता के प्रति झिझक:** आज़ाद हिंद फ़ौज के सैन्य प्रयासों ने ब्रिटिश प्रशासन और सेना को भारत में बढ़ती असंतुष्टि और विद्रोह की चेतावनी दी। इससे ब्रिटिश सरकार को यह महसूस हुआ कि भारत में स्वतंत्रता की मांग केवल राजनीतिक आंदोलन तक सीमित नहीं है, बल्कि सशस्त्र संघर्ष के रूप में भी उभर रही है।
3. **स्वतंत्रता आंदोलन में बदलाव:** आईएनए के गठन और उसके सैन्य अभियानों के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस समेत अन्य स्वतंत्रता संग्राम के संगठनों ने अपने आंदोलनों को और अधिक सक्रिय और सशक्त रूप देने का प्रयास किया।

4. **स्वाधीनता के लिए बलिदान का प्रतीक:** आज़ाद हिंद फ़ौज के सैनिकों का बलिदान स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में अमर हो गया। 1945 में जब आईएनए के कई सैनिकों को ब्रिटिश सेना ने गिरफ्तार किया, तो देश भर में उनके समर्थन में जन आंदोलन शुरू हो गया। यह आंदोलन स्वतंत्रता के अंतिम चरणों को गति देने वाला साबित हुआ (Fay, 1995)।

10 दिसम्बर 1941 को कन्हैयालाल झा, मेजर ह्यूज बीकर और अन्य तिकोनिया क्षेत्र के भारतीय सैनिकों के साथ गोहाटी (मलाया) पहुँचे, जहाँ उनका संपर्क भारतीय सेना के बंदी अधिकारियों और सैनिकों से हुआ। इस अवसर पर कन्हैयालाल झा और जनरल मोहन सिंह के बीच गहन एवं आत्मीय संवाद हुआ, जिससे स्पष्ट हुआ कि दोनों ही भारतीय स्वतंत्रता और सैन्य संगठन के साझा उद्देश्य से प्रेरित थे।

इतिहासकार मानते हैं कि यही वह दिन था जब भारतीय राष्ट्रीय सेना (INA) की अवधारणा ने पहली बार स्पष्ट रूप लिया। जनरल मोहन सिंह, जो पूर्व में ब्रिटिश भारतीय सेना में एक प्रतिष्ठित अधिकारी रह चुके थे, लंबे समय से इस विचार पर कार्य कर रहे थे कि विदेशी नियंत्रण से मुक्त एक स्वतंत्र भारतीय सेना की स्थापना की जाए (सिंह, गंगाप्रसाद, 1993, पृ.1993, pp. 87-89)।

तिकोनिया क्षेत्र के भारतीय युद्धबंदियों को संगठित कर, मोहन सिंह ने उन्हें स्वतंत्रता संग्राम के एक संगठित सैन्य प्रयास से जोड़ने का निर्णय लिया। उन्होंने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु जापानी अधिकारियों से रणनीतिक सहायता प्राप्त की और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के सैन्य पक्ष को सक्रिय करने की ठोस योजना बनाई (फे, पीटर डब्ल्यू, 1993,जनरल मोहन सिंह ने 54 भारतीय अधिकारियों के साथ मिलकर भारत की स्वतंत्रता हेतु अपने प्राणों की आहुति देने की प्रतिज्ञा ली और 1942 में भारतीय राष्ट्रीय सेना (INA) के गठन की औपचारिक घोषणा की गई। उन्हें इसका पहला जनरल ऑफिसर कमांडिंग **(GOC)** नियुक्त किया गया (बोस, सुगाता, 2011, p. 112)।

यह भारतीय सैन्य इतिहास में पहला अवसर था जब उन्हीं सैनिकों ने, जिन्होंने कभी ब्रिटिश झंडे के तहत बर्मा और मलाया में युद्ध किया था, अब स्वेच्छा से एक स्वतंत्र भारतीय सेना के रूप में संगठित होकर स्वतंत्रता के लिए समर्पण की घोषणा की। आगे चलकर यह संगठन नेताजी सुभाष चंद्र बोस के नेतृत्व में एक शक्तिशाली राष्ट्रीय आंदोलन में परिणत हुआ।

निष्कर्ष

नेताजी सुभाष चंद्र बोस की विदेश यात्रा और आज़ाद हिंद फ़ौज की स्थापना स्वतंत्रता संग्राम में क्रांतिकारी बदलाव लाने वाली घटना थी। उन्होंने भारतीयों को यह विश्वास दिलाया कि स्वतंत्रता के लिए संघर्ष के कई रास्ते हो सकते हैं। उनके प्रयासों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को वैश्विक मंच प्रदान किया और आज़ाद हिंद फ़ौज के माध्यम से स्वतंत्रता के लिए लड़ाई को नई ऊर्जा दी।

नेताजी सुभाष चंद्र बोस की विदेश यात्रा और आज़ाद हिंद फ़ौज की स्थापना भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक महत्वपूर्ण और क्रांतिकारी मोड़ साबित हुई। उनकी दूरदर्शिता और नेतृत्व ने भारतीयों में यह विश्वास जगाया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए केवल एक ही रास्ता नहीं, बल्कि अनेक मार्ग हो सकते हैं। बोस ने विदेशी धरती पर जाकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को वैश्विक मंच पर प्रस्तुत किया और आज़ाद हिंद फ़ौज के माध्यम से न केवल एक सशस्त्र बल का निर्माण किया, बल्कि भारतीय युवाओं में देशभक्ति और उत्साह की नई लहर भी जागृत की। उनके इन प्रयासों ने ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ लड़ाई को और तीव्रता दी और स्वतंत्रता की दिशा में मजबूती से कदम बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुए। अतः नेताजी का योगदान न केवल सैन्य रूप से बल्कि राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक रूप से भी स्वतंत्रता संग्राम के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण था। उनकी विदेश यात्रा और आज़ाद हिंद फ़ौज की स्थापना आज भी स्वतंत्रता के लिए किए गए संघर्ष का एक प्रेरणादायक अध्याय है।

संदर्भ सूची :

बेयली, सी.ए., एवं टी. हार्पर। *फॉरगॉटन आर्मीज़: द फॉल ऑफ ब्रिटिश एशिया, 1941-1945*. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007।

मजूमदार, आर. सी. *नेताजी सुभाष चंद्र बोस: एक जीवनी*. फर्मा केएलएम प्रा. लिमिटेड, 1988।

फे, पी. डब्ल्यू. *द फॉरगॉटन आर्मी: भारत का स्वतंत्रता संग्राम, 1942-1945*. यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन प्रेस, 1995।

मुखर्जी, म. *सुभाष चंद्र बोस और इंडियन नेशनल आर्मी*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1997।

बोस, सुगाता। *India's Struggle for Independence*. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1997।

गुप्ता, म. *सुभाष चंद्र बोस और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2013।

लो, डी. ए. *इंडियन नेशनल आर्मी: द फॉरगॉटन आर्मी*. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1993

मुखर्जी, स. "भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में आज़ाद हिंद फ़ौज की भूमिका।" *जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज*, खंड 63, संख्या 2, 2004,

सिंह, गंगाप्रसाद। अज्ञेय के साहित्य में अस्तित्ववादी तत्व. वाराणसी: भारतीय लोक कला प्रकाशन, 1993,

फे, पीटर डब्ल्यू। द फॉरगॉटन आर्मी: इंडिया'ज़ आर्म्ड स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस, 1942-1945. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1993,

बोस, सुगाता। हिज मेजेस्टी'ज़ ओपोनेंट. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2011,

महाविद्यालय पुस्तकालय की सेवाएँ और छात्र संतुष्टि : एक अध्ययन

अजय कुमार यादव*

सारांश

शैक्षणिक पुस्तकालय पारंपरिक रूप से उच्च शिक्षा संस्थानों के बौद्धिक केंद्र के रूप में कार्य करते रहे हैं, जहाँ ये आवश्यक संसाधन प्रदान करते हैं और सीखने, शोध एवं शैक्षणिक अन्वेषण के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करते हैं। हालाँकि, समकालीन डिजिटल युग में, तकनीकी प्रगति, बदलती शैक्षणिक अपेक्षाओं और उपयोगकर्ता-केंद्रित सेवाएँ प्रदान करने पर बढ़ते ज़ोर के कारण महाविद्यालय पुस्तकालयों की भूमिका में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। यह अध्ययन इस बात का व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करता है कि विविध पुस्तकालय सेवाएँ—भौतिक अवसंरचना, डिजिटल संसाधन, सूचना सेवाएँ, शिक्षण स्थल और पुस्तकालयाध्यक्ष सहायता—शैक्षणिक संदर्भ में छात्र संतुष्टि को कैसे प्रभावित करती हैं। व्यापक विद्वत्तापूर्ण साहित्य, संस्थागत रिपोर्टों और अनुभवजन्य शोध पर आधारित, यह लेख पुस्तकालय सेवाओं की गुणवत्ता, पहुँच और प्रासंगिकता तथा छात्रों की शैक्षणिक सफलता, सहभागिता और समग्र शैक्षिक अनुभव के बीच अंतर्संबंधों की जाँच करता है। इसमें अद्यतन डिजिटल संग्रहों की उपलब्धता, उपयोगकर्ता-अनुकूल पहुँच प्रणालियाँ, सहयोगात्मक और व्यक्तिगत अध्ययन वातावरण, उत्तरदायी और कुशल पुस्तकालय कर्मचारी, और पाठ्यक्रम आवश्यकताओं के अनुरूप नवीन सेवा मॉडल जैसे कारकों पर विशेष ध्यान दिया गया है। यह अध्ययन शैक्षणिक पुस्तकालयों के सामने आने वाली चुनौतियों का भी पता लगाता है, जिनमें पारंपरिक मुद्रित संग्रहों को डिजिटल प्रस्तुतियों के साथ संतुलित करना, संसाधनों की कमी का प्रबंधन करना और छात्रों के बदलते शिक्षण व्यवहार के अनुकूल ढलना शामिल है। शैक्षणिक प्रदर्शन में सुधार, सूचना साक्षरता को बढ़ावा देने और व्यक्तिगत विकास को बढ़ावा देने में प्रभावी पुस्तकालय सेवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका पर प्रकाश डालते हुए, यह शोध पुस्तकालय प्रबंधन में निरंतर सेवा मूल्यांकन, छात्र प्रतिक्रिया तंत्र और रणनीतिक नवाचारों की आवश्यकता को रेखांकित करता है। अंततः, निष्कर्ष पुस्तकालय सेवाओं की एक सक्रिय पुनर्कल्पना की वकालत करते हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे तेजी से डिजिटल और शिक्षार्थी-केंद्रित शैक्षणिक परिदृश्य में छात्रों की सफलता के लिए अभिन्न अंग बने रहें।

की-वर्ड- महाविद्यालय पुस्तकालय सेवाएँ, छात्र संतुष्टि, शैक्षणिक पुस्तकालय, अध्ययन वातावरण, पुस्तकालय सेवा गुणवत्ताख्, उच्च शिक्षा सहायता सेवाएँ।

प्रस्तावना

पुस्तकालयों को ऐतिहासिक रूप से शैक्षणिक संस्थानों की रीढ़ माना जाता रहा है, जो ज्ञान अर्जन, अनुसंधान सहायता और शैक्षणिक विकास के महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में कार्य करते हैं। उच्च शिक्षा के संदर्भ में, महाविद्यालय पुस्तकालय भौतिक और डिजिटल दोनों संसाधनों तक पहुँच को सुगम बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, संकाय और छात्रों को उनके शिक्षण, अधिगम और अनुसंधान गतिविधियों में सहायता प्रदान करते हैं (अंदालिब और सिमंड्स, 1998)।[1]

हालाँकि, तेज़ी से बदलती तकनीकी प्रगति और बदलती उपयोगकर्ता अपेक्षाओं से चिह्नित विकासशील शैक्षिक परिदृश्य ने महाविद्यालय पुस्तकालयों द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं में बदलाव को आवश्यक बना दिया है। पुस्तकालय अब केवल मुद्रित सामग्री के भंडार नहीं रह गए हैं, बल्कि डिजिटल पहुँच, सहयोगात्मक स्थान और व्यक्तिगत सूचना सेवाएँ प्रदान करने वाले गतिशील शिक्षण वातावरण बन गए हैं (कौर और झाम्ब, 2013)।[2]

इस डिजिटल युग में, पुस्तकालय सेवाओं की गुणवत्ता और प्रासंगिकता का आकलन करने के लिए छात्र संतुष्टि एक महत्वपूर्ण मानदंड के रूप में उभरी है। छात्र अपनी शैक्षणिक आवश्यकताओं के अनुरूप अद्यतन संसाधनों, उन्नत तकनीकी अवसंरचना और उत्तरदायी सहायता सेवाओं तक कुशल पहुँच की अपेक्षा करते हैं (इस्लाम, 2014)।[3] इन अपेक्षाओं को पूरा करने की एक पुस्तकालय की क्षमता छात्रों की शैक्षणिक सफलता और संस्थान के शैक्षणिक सहायता ढांचे के बारे में उनकी समग्र धारणा को सीधे प्रभावित करती है। इसलिए, पुस्तकालयों को अपने उद्देश्य में प्रासंगिक और प्रभावी बनाए रखने के लिए, उन कारकों को समझना आवश्यक है जो छात्र संतुष्टि में योगदान करते हैं। यह अध्ययन कॉलेज पुस्तकालय सेवाओं और छात्र संतुष्टि के बीच संबंधों की पड़ताल करता है, जिसका उद्देश्य छात्रों की धारणाओं को आकार देने वाले प्रमुख निर्धारकों की पहचान करना और पुस्तकालय सेवा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए रणनीतियाँ सुझाना है (सिंह और कौर, 2015)।[4]

* एसोसिएट प्रोफेसर, लाइब्रेरी, सकलडीहा पीजी कॉलेज, सकलडीहा, चंदौली।

संकल्पनात्मक ढाँचा

महाविद्यालय पुस्तकालय सेवाएँ

महाविद्यालय पुस्तकालय सेवाएँ छात्रों के शैक्षणिक प्रयासों में सहायता के लिए डिज़ाइन किए गए कार्यों की एक विस्तृत श्रृंखला को समाहित करती हैं। इन सेवाओं में शामिल हैं, लेकिन इन्हीं तक सीमित नहीं-

- भौतिक संग्रहों (पुस्तकें, पत्रिकाएँ, समाचार पत्र, संदर्भ ग्रंथ) तक पहुँच
- डिजिटल संसाधन (ई-पुस्तकें, डेटाबेस, ई-पत्रिकाएँ)
- अनुसंधान सहायता और सूचना साक्षरता कार्यक्रम
- अध्ययन स्थल (व्यक्तिगत और सहयोगी)
- तकनीकी अवसंरचना (वाई-फ़ाई, कंप्यूटर, प्रिंटर, स्कैनर)
- दूरस्थ पहुँच सेवाएँ और ऑनलाइन कैटलॉग
- उपयोगकर्ता सहायता सेवाएँ (अभिविन्यास कार्यक्रम, सहायता डेस्क, फ़ीडबैक सिस्टम)

छात्र संतुष्टि

पुस्तकालय सेवाओं के संदर्भ में छात्र संतुष्टि का तात्पर्य पुस्तकालय संसाधनों, पहुँच, वातावरण और कर्मचारियों के समर्थन के संबंध में छात्रों की अपेक्षाओं की पूर्ति की सीमा से है। संतुष्टि केवल संसाधनों की उपलब्धता पर ही निर्भर नहीं है, बल्कि इसमें उपयोगकर्ता-मित्रता, कर्मचारियों की जवाबदेही, तकनीकी सहायता और समग्र सेवा अनुभव जैसे कारक भी शामिल हैं।

महाविद्यालय पुस्तकालयों की बदलती भूमिका

ऐतिहासिक रूप से, पुस्तकालयों को मौन क्षेत्र, मुद्रित ज्ञान का भंडार माना जाता था। हालाँकि, डिजिटल क्रांति ने पुस्तकालय सेवाओं के दायरे का विस्तार किया है। आधुनिक पुस्तकालय:

- भौतिक से हाइब्रिड (भौतिक + डिजिटल) मॉडल में परिवर्तन
- डिजिटल सामग्री तक चौबीसों घंटे दूरस्थ पहुँच प्रदान करना
- सहयोगात्मक शिक्षण स्थलों पर ध्यान केंद्रित करना
- डिजिटल साक्षरता और शैक्षणिक कौशल विकास के केंद्रों के रूप में कार्य करना
- व्यक्तिगत शोध परामर्श और कार्यशालाएँ प्रदान करना

पुस्तकालय सेवाओं से छात्र संतुष्टि को प्रभावित करने वाले कारक

1. पहुँच और उपयोग में आसानी

पुस्तकालय संसाधनों तक छात्रों की पहुँच की सहजता - भौतिक और डिजिटल दोनों - संतुष्टि का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। जटिल लॉगिन प्रक्रियाएँ, प्रतिबंधात्मक पहुँच नीतियाँ, सीमित संचालन समय और अपर्याप्त रूप से व्यवस्थित कैटलॉग प्रणालियाँ, छात्रों द्वारा समय पर जानकारी प्राप्त करने में महत्वपूर्ण बाधाएँ हैं। इसके विपरीत, जो पुस्तकालय सहज खोज प्लेटफ़ॉर्म, निर्बाध दूरस्थ पहुँच और उपयोगकर्ता-अनुकूल इंटरफ़ेस प्रदान करते हैं, उनकी उपयोग दर और संतुष्टि का स्तर अधिक होता है। पहुँच विकलांग छात्रों के लिए समावेशी सेवाओं तक भी फैली हुई है, जिससे संसाधनों और सुविधाओं तक समान पहुँच सुनिश्चित होती है (सिंह और कौर, 2015)।

2. संसाधन पर्याप्तता और प्रासंगिकता

छात्रों की एक मूलभूत अपेक्षा यह है कि पुस्तकालय उनके पाठ्यक्रम और शोध आवश्यकताओं के लिए प्रासंगिक शैक्षणिक संसाधनों का एक व्यापक और अद्यतन संग्रह बनाए रखे। संसाधन पर्याप्तता न केवल सामग्री की मात्रा को संदर्भित करती है, बल्कि वर्तमान पाठ्यक्रम, शोध प्रवृत्तियों और विषय विशेषज्ञता के साथ उनके संरेखण को भी संदर्भित करती है। जो पुस्तकालय समकालीन संसाधन प्रदान करने में विफल रहते हैं, वे शैक्षिक प्रक्रिया के मूल्य को खोने का जोखिम उठाते हैं। इसके विपरीत, एक अच्छी तरह से भरा हुआ, विविध और अद्यतन संग्रह छात्रों के शैक्षिक अनुभव और संतुष्टि को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ाता है (सिमंड्स और एंडालिब, 2001)।[5]

3. तकनीकी अवसंरचना

डिजिटल शिक्षा के युग में, छात्र पुस्तकालय परिसर में एक मजबूत तकनीकी अवसंरचना की मांग करते हैं। इसमें उच्च गति की इंटरनेट कनेक्टिविटी, डिजिटल संग्रहों तक पहुँच, कंप्यूटर और मुद्रण सुविधाओं की उपलब्धता, और शैक्षणिक कार्य के लिए आवश्यक आधुनिक सॉफ़्टवेयर अनुप्रयोग शामिल हैं। स्मार्ट कक्षाओं, वर्चुअल लैब और मल्टीमीडिया केंद्रों की उपस्थिति शिक्षण वातावरण को और समृद्ध बनाती है। जो पुस्तकालय क्लाउड-आधारित सेवाओं और एआई-सहायता प्राप्त खोज उपकरणों जैसी उभरती प्रौद्योगिकियों को अपनाने में सक्रिय हैं, वे छात्रों की अपेक्षाओं को पूरा करने और संतुष्टि के स्तर में सुधार करने के लिए बेहतर स्थिति में हैं (सिमंड्स और एंडालिब, 2001)।[6]

4. पुस्तकालय कर्मचारियों का समर्थन और जवाबदेही

पुस्तकालय सेवाओं का मानवीय तत्व - पुस्तकालय कर्मचारी - उपयोगकर्ता अनुभव को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। छात्र मित्रवत, जानकार और सहानुभूतिपूर्ण पुस्तकालय कर्मचारियों को अत्यधिक महत्व देते हैं जो संसाधन मार्गदर्शन, शोध मार्गदर्शन और समस्या समाधान में समय पर सहायता प्रदान कर सकते हैं। शोध परामर्श, उद्धरण सहायता और उपयोगकर्ता शिक्षा कार्यक्रम जैसी व्यक्तिगत सेवाओं की उपलब्धता पुस्तकालयों द्वारा प्रदान की जाने वाली शैक्षणिक सहायता को बढ़ाती है। पुस्तकालय कर्मचारियों के बीच सेवा-उन्मुख रवैया एक स्वागत योग्य वातावरण को बढ़ावा देता है जो छात्र संतुष्टि को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है (इस्लाम, 2014)।[7]

5. वातावरण और अध्ययन वातावरण

पुस्तकालय का भौतिक वातावरण छात्र संतुष्टि को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण, अक्सर अनदेखा किया जाने वाला कारक है। प्रकाश व्यवस्था, बैठने की व्यवस्था, वायु-संचार, स्वच्छता और ध्वनि नियंत्रण जैसे तत्व एक अनुकूल अध्ययन स्थल के रूप में पुस्तकालय की प्रभावशीलता को सीधे प्रभावित करते हैं। आधुनिक छात्र भी लचीले अध्ययन वातावरण की तलाश करते हैं जो व्यक्तिगत और सामूहिक शिक्षण आवश्यकताओं को पूरा करते हों, जिसमें शांत क्षेत्र, सहयोगात्मक कार्यक्षेत्र और मनोरंजक पठन क्षेत्र शामिल हैं। ऐसे पुस्तकालय जो एर्गोनॉमिक डिज़ाइन को प्राथमिकता देते हैं और एक सुखद, कार्यात्मक वातावरण बनाए रखते हैं, छात्र उपयोगकर्ताओं को आकर्षित करने और बनाए रखने की अधिक संभावना रखते हैं (कौर और झाम्ब, 2013)।[8]

6. मूल्यवर्धित सेवाएँ और शैक्षणिक सहायता कार्यक्रम

पारंपरिक सेवाओं के अलावा, पुस्तकालयों से छात्रों के शैक्षणिक विकास में सहायता करने वाले मूल्यवर्धित कार्यक्रम प्रदान करने की अपेक्षा बढ़ती जा रही है। सूचना साक्षरता, साहित्यिक चोरी की रोकथाम, उद्धरण प्रबंधन, शोध विधियों और डिजिटल उपकरणों के उपयोग पर कार्यशालाएँ छात्रों को आवश्यक शैक्षणिक कौशल से सुसज्जित करती हैं। ऑनलाइन ट्यूटोरियल, सहायता मार्गदर्शिकाएँ और शैक्षणिक लेखन सहायता की उपलब्धता पुस्तकालय की एक सक्रिय शिक्षण भागीदार के रूप में भूमिका को और बढ़ाती है। ये पूरक सेवाएँ न केवल शिक्षण अनुभव को बेहतर बनाती हैं, बल्कि छात्रों और पुस्तकालय संसाधनों के बीच एक मज़बूत संबंध भी बनाती हैं, जिससे संतुष्टि में वृद्धि होती है (शर्मा और सिंह, 2016)।[9]

शोध साक्ष्य: छात्र संतुष्टि और पुस्तकालय सेवाएँ

कई अनुभवजन्य अध्ययनों ने पुस्तकालय सेवाओं और छात्र संतुष्टि के बीच संबंध का पता लगाया है:

1. अंदलीब और सिमंड्स (1998) ने पेंसिल्वेनिया के शैक्षणिक पुस्तकालयों में एक अध्ययन किया, जिसमें निष्कर्ष निकाला गया कि कर्मचारी सहायता और संसाधनों की उपलब्धता छात्र संतुष्टि के सबसे महत्वपूर्ण निर्धारक हैं।
2. कौर और झाम्ब (2013) ने भारतीय कॉलेज पुस्तकालयों के अपने सर्वेक्षण में पाया कि 70% से अधिक छात्र भौतिक संग्रहों की तुलना में डिजिटल संसाधनों की सुलभता को अधिक महत्व देते हैं, फिर भी सीमित दूरस्थ पहुँच विकल्पों के कारण असंतोष की सूचना दी।
3. इस्लाम (2014) ने इस बात पर ज़ोर दिया कि पुस्तकालयों द्वारा संचालित सूचना साक्षरता कार्यक्रम, विशेष रूप से शोध-गहन पाठ्यक्रमों में, छात्रों की सहभागिता और संतुष्टि को बढ़ाते हैं।
4. असेमी और रियाहिनिया (2007) ने पाया कि प्रौद्योगिकी और विज्ञान विषयों के छात्र ई-पत्रिकाओं और ऑनलाइन डेटाबेस की उपलब्धता को अधिक महत्व देते हैं, जो सीधे उनकी शैक्षणिक सफलता और संतुष्टि से संबंधित है।

छात्र संतुष्टि में सुधार की रणनीतियाँ

1. मज़बूत डिजिटल बुनियादी ढाँचा विकसित करना
   - हाई-स्पीड वाई-फ़ाई, डिजिटल कैटलॉग और उपयोगकर्ता-अनुकूल पुस्तकालय पोर्टल में निवेश करना।
   - ई-पुस्तकें, शैक्षणिक डेटाबेस और डिजिटल अभिलेखागार जैसे ई-संसाधनों का विस्तार करना।

2. उपयोगकर्ता अनुभव को बेहतर बनाना

- खोज और पहुँच प्रक्रियाओं को सरल बनाना।
- पुस्तकालय सेवाओं के लिए मोबाइल ऐप पेश करना।
- रीयल-टाइम ऑनलाइन चैट सहायता प्रदान करना।

3. भौतिक सुविधाओं में सुधार

- आधुनिक सुविधाओं के साथ लचीले अध्ययन स्थल बनाना।
- सहयोगात्मक क्षेत्र और शांत अध्ययन क्षेत्र शामिल करना।

4. पुस्तकालय कर्मचारियों का प्रशिक्षण और विकास

- उभरती प्रौद्योगिकियों और सॉफ्ट स्किल्स पर कर्मचारियों के लिए नियमित कार्यशालाओं का आयोजन।
- उपयोगकर्ता-केंद्रित सेवा दृष्टिकोण को बढ़ावा देना।

5. प्रतिक्रिया तंत्र और निरंतर सुधार

- नियमित उपयोगकर्ता संतुष्टि सर्वेक्षण आयोजित करना।
- फीडबैक-आधारित सेवा संवर्द्धन को लागू करना।

6. पुस्तकालय विपणन और जागरूकता

- छात्रों को नई सेवाओं, संसाधनों और सुविधाओं के बारे में सक्रिय रूप से सूचित करना।
- दृश्यता बढ़ाने के लिए सोशल मीडिया और कैंपस नेटवर्क का उपयोग करना।

निष्कर्ष

तकनीकी प्रगति और बदलती शैक्षणिक अपेक्षाओं के अनुरूप कॉलेज पुस्तकालयों की भूमिका में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। समकालीन शैक्षिक पारिस्थितिकी तंत्र में, पुस्तकालय केवल पुस्तक उधार देने के स्थान नहीं हैं, बल्कि ज्ञान प्रसार, डिजिटल शिक्षा और शैक्षणिक सहायता के गतिशील केंद्र भी हैं। पुस्तकालय सेवाओं की प्रभावशीलता के मूल्यांकन के लिए छात्र संतुष्टि एक महत्वपूर्ण मानदंड के रूप में उभरी है, जो दर्शाती है कि पुस्तकालय अपने प्राथमिक हितधारकों की बदलती आवश्यकताओं के साथ कितनी अच्छी तरह संरेखित होते हैं। आगे विकसित हो रहे महाविद्यालय पुस्तकालयों को प्रासंगिक और प्रभावशाली बने रहने के लिए रणनीतिक, नवीन दृष्टिकोण अपनाने होंगे। डिजिटल अवसंरचना में निवेश, भौतिक सुविधाओं का विस्तार, पुस्तकालय कर्मचारियों का निरंतर व्यावसायिक विकास और प्रतिक्रिया-आधारित सुधारों का कार्यान्वयन उत्कृष्टता की संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक रणनीतियाँ हैं। इसके अलावा, पुस्तकालयों को अपनी सेवाओं का सक्रिय रूप से विपणन करना चाहिए और संसाधनों के अधिकतम उपयोग के लिए छात्रों में जागरूकता पैदा करनी चाहिए। शैक्षणिक सफलता में सक्रिय भागीदार के रूप में स्वयं को स्थापित करके, पुस्तकालय यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि वे छात्रों की सीखने की यात्रा में अपरिहार्य बने रहें, इस प्रकार उच्च शिक्षा के संस्थागत ढांचे के भीतर उनके मूल्य को सुदृढ़ किया जा सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. Andaleeb, S. S., & Simmonds, P. L. (1998). Explaining user satisfaction with academic libraries: Strategic implications. College & Research Libraries, 59(2), 156-167.
2. Kaur, A., & Jhamb, M. (2013). User perception towards quality of library services: A case study of engineering colleges of Punjab. DESIDOC Journal of Library & Information Technology, 33(5), 439-443.
3. Islam, M. A. (2014). Factors affecting library usage and user satisfaction in public libraries in Bangladesh. Information Development, 30(2), 148-164.
4. Singh, J., & Kaur, T. (2015). User satisfaction in university libraries in Punjab: A study. International Journal of Library and Information Studies, 5(1), 24-33.
5. Singh, J., & Kaur, T. (2015). User satisfaction in university libraries in Punjab: A study. *International Journal of Library and Information Studies*, 5(1), 24-33.
6. Simmonds, P. L., & Andaleeb, S. S. (2001). Usage of academic libraries: The role of service quality, resources, and user characteristics. *Library Trends*, 49(4), 626-634.
7. Islam, M. A. (2014). Factors affecting library usage and user satisfaction in public libraries in Bangladesh. *Information Development*, 30(2), 148-164.
8. Kaur, A., & Jhamb, M. (2013). User perception towards quality of library services: A case study of engineering colleges of Punjab. *DESIDOC Journal of Library & Information Technology*, 33(5), 439-443.
9. Sharma, M., & Singh, J. (2016). Information literacy competency of undergraduate students: A study. *Annals of Library and Information Studies*, 63(1), 25-32